नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

भाग 6

सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

आगम - ४०

"आवश्यक" निर्युक्तिः एवं वृत्तिः [४]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब

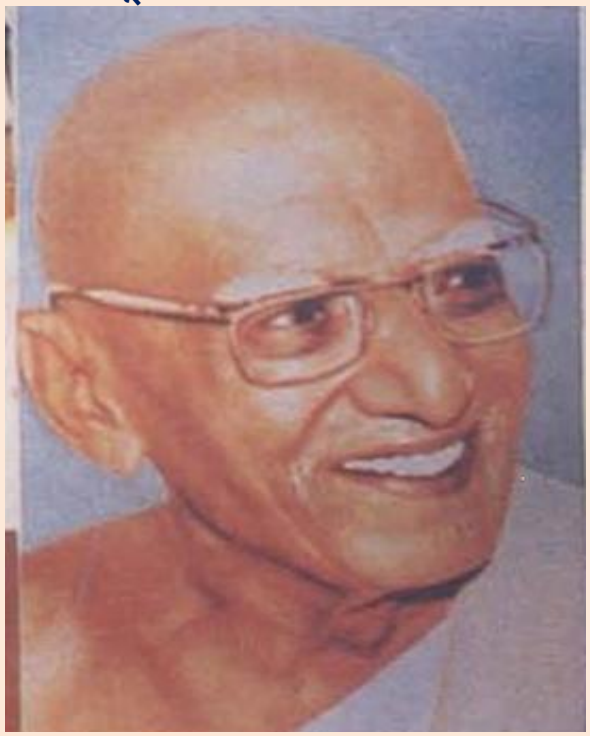

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू-भगवंत एवं साध्वी-महाराज के लिए उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक

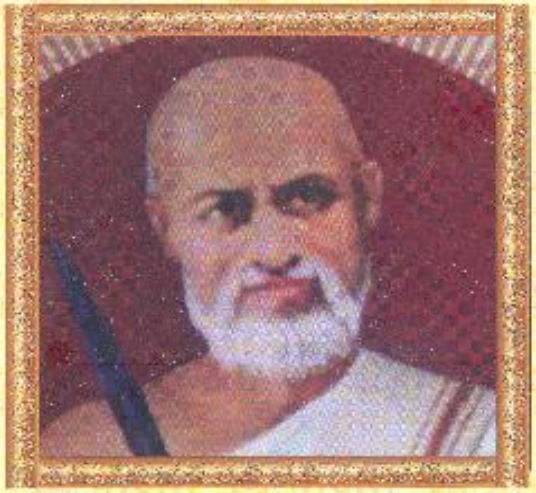

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

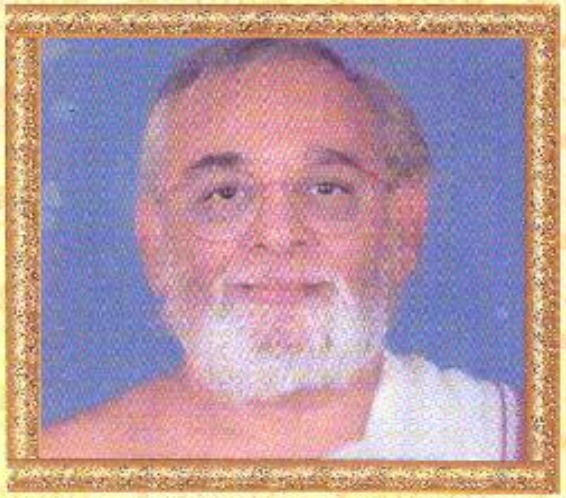

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

सवृत्तिक
भाग-6

[४०/४] श्री आवश्यक [मूल]सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

"आवश्यक" निर्युक्तिः एवं वृत्तिः

निर्युक्तिः ८३० से ११०० (अंत पर्यन्ताः)

[भद्रबाहुसूरि सूत्रिता निर्युक्तिः एवं मलयगिरिसूरि रचिता वृत्तिः]

[आद्य संपादकः - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता→ **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-श्रेणी भाग-6

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

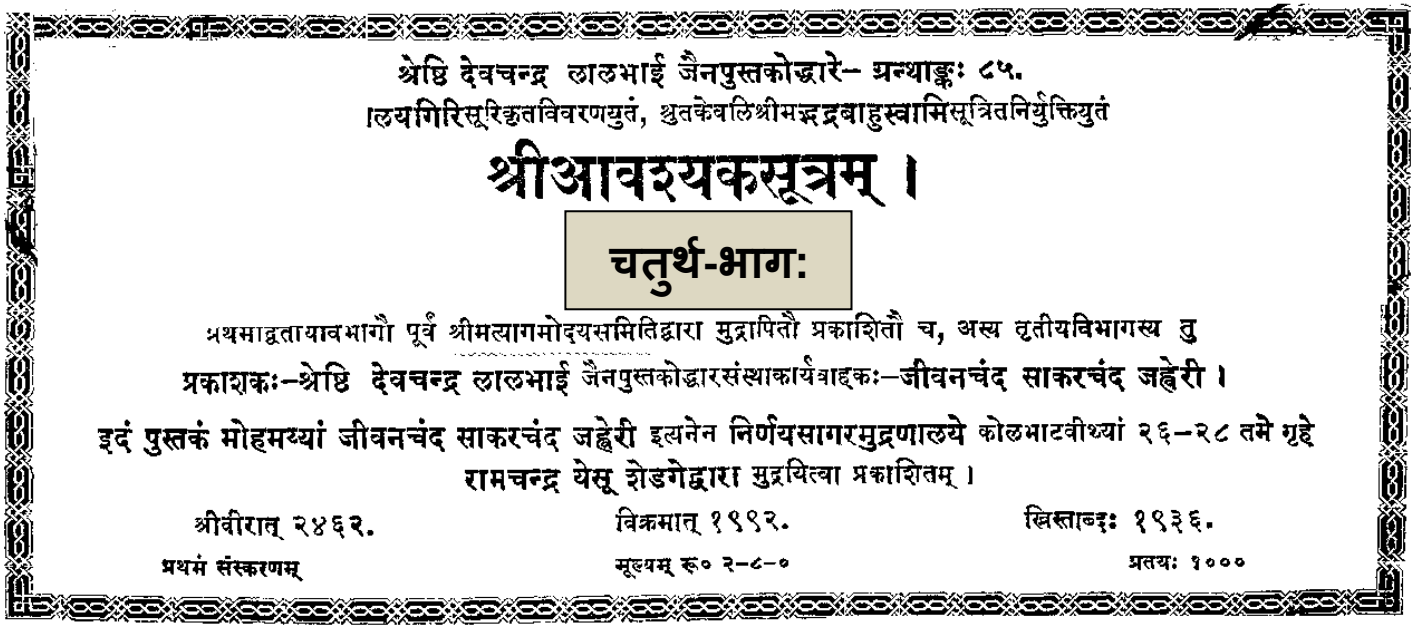

श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई जैनपुस्तकोद्धारे– ग्रन्थाङ्कः ८५.

लयगिरिसूरिकृतविवरणयुतं, श्रुतकेवलिश्रीमद्भद्रबाहुस्वामिसूत्रितनिर्युक्तियुतं

श्रीआवश्यकसूत्रम् ।

चतुर्थ-भागः

प्रथमाद्वितीयावभागौ पूर्वं श्रीमत्यागमोदयसमितिद्वारा मुद्रापितौ प्रकाशितौ च, अस्य तृतीयविभागस्य तु

प्रकाशकः–श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई जैनपुस्तकोद्धारसंस्थाकार्यवाहकः–जीवनचंद साकरचंद जव्हेरी ।

इदं पुस्तकं मोहमय्यां जीवनचंद साकरचंद जव्हेरी इत्यनेन निर्णयसागरमुद्रणालये कोलभाटवीथ्यां २६–२८ तमे गृहे रामचन्द्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

श्रीवीरात् २४६२.	विक्रमात् १९९२.	ख्रिस्ताब्दः १९३६.
प्रथमं संस्करणम्	मूल्यम् रू० २–८–०	प्रतयः १०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** मूल संपादकीय आवश्यकसूत्रस्य टाईटल-पेज

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अव चूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***.....मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

अनुदान दाता संस्था:- "श्री परम-आनंद श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ"

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठककर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब ५० साल पहेले <u>परम पूज्य स्व. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब</u> द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेंद्रसागरसूरीजी म०सा० ही है | इस संघमें पूज्य साधू भगवंत एवं साध्वीजीओ का उपाश्रय भी है जहा हर-साल चातुर्मास करवाके श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि भाग १ से ८ के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये सवृत्तिक-आगम-सुत्राणि-2" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई , उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे | समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

[आवश्यक- निर्युक्तिः एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

श्री भद्रभाहुस्वामिजी की निर्युक्ति पर मलयगिरिसूरिजी रचिता वृत्ति की प्रत सबसे पहले "श्री आवश्यकसूत्र" के नामसे सन १९२८ (विक्रम संवत १९८४) में आगमोदय समिति एवं देवचंद्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब | पूज्यपाद श्री हरिभद्रसूरिजीने भी आवश्यक-सूत्र पर एक विशाल वृत्ति की रचना कि है, जो हमारी "आगम सुत्ताणि सटीकं" एवं "सवृत्तिक आगम सूत्राणि" मे मुद्रित हुइ है |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर अध्ययन-निर्युक्ति-भाष्य-मूलसूत्र- आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, निर्युक्ति, भाष्य, सूत्र-आदि चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम दिया है, उसके साथ इसी प्रत का सूत्रक्रम और 'दीप अनुक्रम' देने की हमारी पद्धत्ति है मगर यहां तो मुख्य-तौर पे निर्युक्ति और भाष्य पर हि मलयगिरिजी रचिता वृत्ति है क्यों की ये वृत्ति सिर्फ़ १- अध्ययन तक ही प्राप्त हो रही है इसिलिए बायी तरफ़ सूत्रांक और दीप-अनुक्रमवाले विभाग कि कोइ उपयोगिता नहि रही|

यहां मूल संपादक कि बनायी हुइ एक अनुक्रमणिका भी पायी गई है, जो की तिनो [चारो] विभागो की एक साथ हि है, जिसमे निर्युक्ति, भाष्य आदि के क्रम, (प्रत के) पृष्ठांक सहित लिख दिये है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते निर्युक्ति एवं भाष्य तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है, जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

✣ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणासे और श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये "सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि_2" भाग-६ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.... मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [-]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

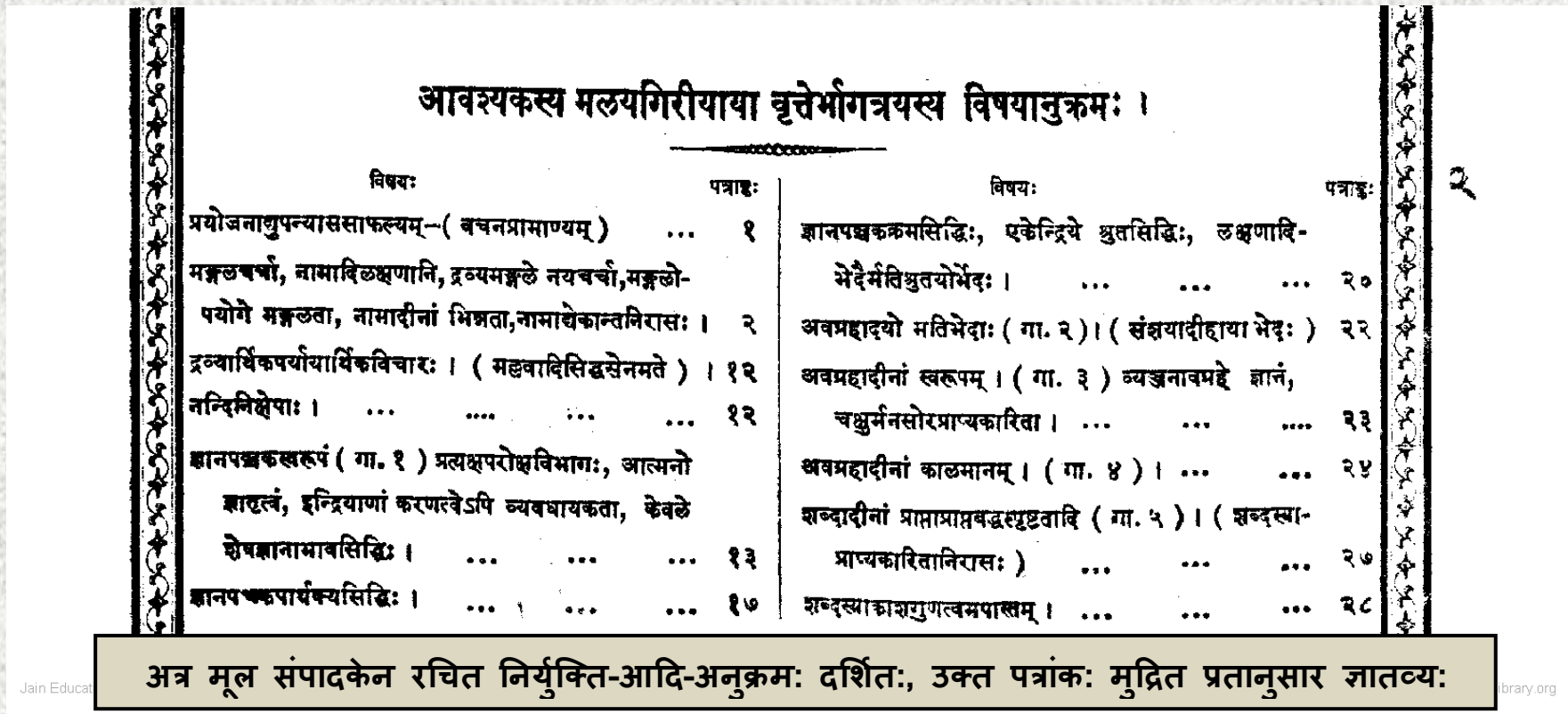

आवश्यकस्य मलयगिरीयाया वृत्तेर्भागत्रयस्य विषयानुक्रमः ।

विषयः	पत्राङ्कः
प्रयोजनाद्युपन्याससाफल्यम्–(वचनप्रामाण्यम्) ...	१
मङ्गलचर्चा, नामादिलक्षणानि, द्रव्यमङ्गले नयचर्चा, मङ्गलोपयोगे मङ्गलता, नामादीनां भिन्नता, नामादेकान्तनिरासः ।	२
द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकविचारः । (मल्लवादिसिद्धसेनमते) ।	१२
नन्दिनिक्षेपाः ।	१२
ज्ञानपञ्चकस्वरूपं (गा. १) प्रत्यक्षपरोक्षविभागः, आत्मनो ज्ञातृत्वं, इन्द्रियाणां करणत्वेऽपि व्यवधायकता, केवले शेषज्ञानाभावसिद्धिः ।	१३
ज्ञानपञ्चकपार्यन्यसिद्धिः ।	१७
ज्ञानपञ्चकक्रमसिद्धिः, एकेन्द्रिये श्रुतसिद्धिः, लक्षणादिभेदैर्मतिश्रुतयोर्भेदः ।	२०
अवग्रहादयो मतिभेदाः (गा. २) । (संशयादीहाया भेदः)	२२
अवग्रहादीनां स्वरूपम् । (गा. ३) व्यञ्जनावग्रहे ज्ञानं, चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारिता ।	२३
अवग्रहादीनां कालमानम् । (गा. ४) ।	२५
शब्दादीनां प्राप्ताप्राप्तबद्धस्पृष्टत्वादि (गा. ५) । (शब्दस्याप्राप्यकारितानिरासः)	२७
शब्दस्याकाशगुणत्वप्रकाशम् ।	२८

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

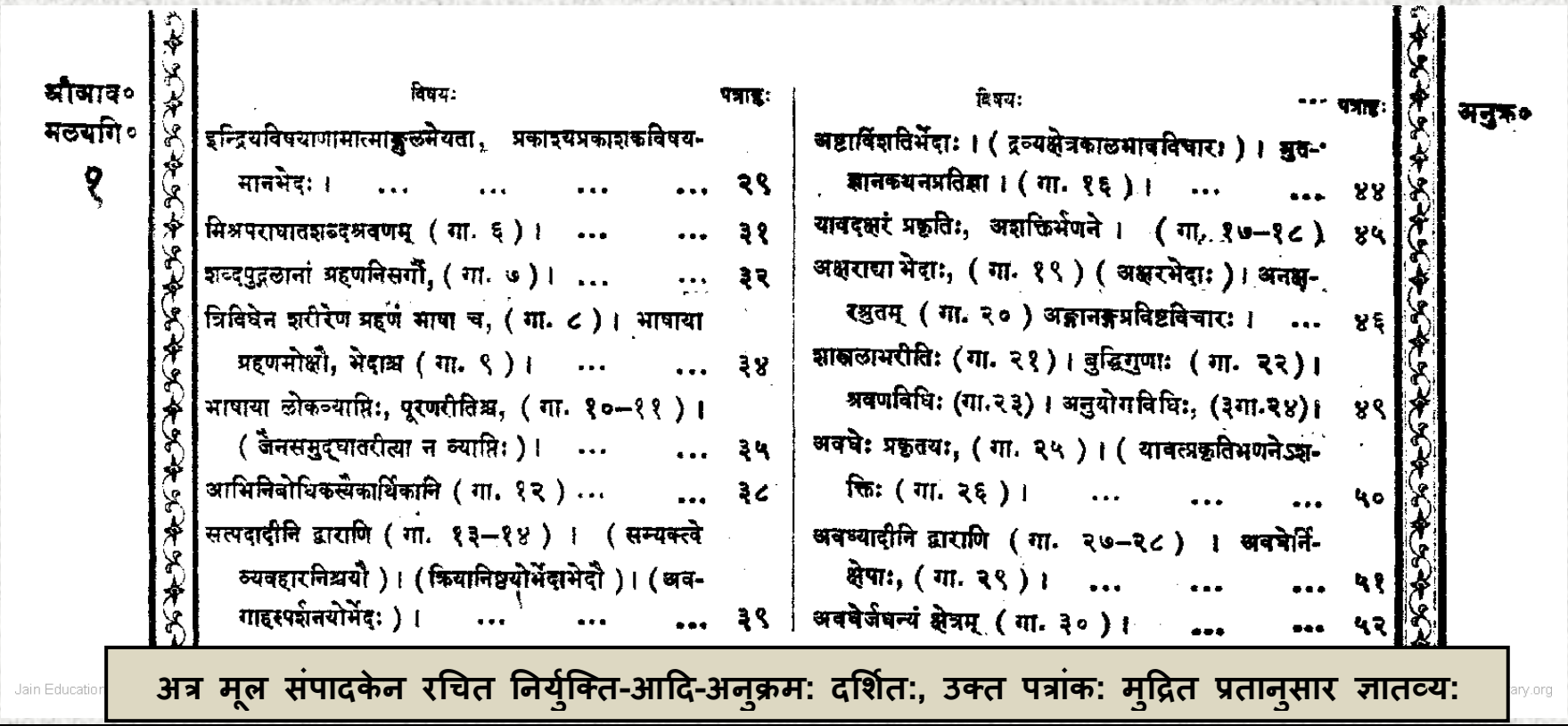

औआव० मलयगि० १	विषयः	पत्राङ्कः	विषयः	पत्राङ्कः	अनुक्र०
	इन्द्रियविषयाणामात्माङ्गुलमेयता, प्रकाश्यप्रकाशकविषयमानभेदः ।	२९	अष्टाविंशतिर्भेदाः । (द्रव्यक्षेत्रकालभावविचारः) । श्रुतज्ञानकथनप्रतिज्ञा । (गा. १६) ।	४४	
	मिश्रपराघातशब्दश्रवणम् (गा. ६) ।	३१	यावदक्षरं प्रकृतिः, अशक्तिर्भणने । (गा. १७–१८)	४५	
	शब्दपुद्गलानां ग्रहणनिसर्गौ, (गा. ७) ।	३२	अक्षराद्या भेदाः, (गा. १९) (अक्षरभेदाः) । अनक्षरश्रुतम् (गा. २०) अङ्गानङ्गप्रविष्टविचारः । ...	४६	
	त्रिविधेन शरीरेण ग्रहणं भाषा च, (गा. ८) । भाषाया ग्रहणमोक्षौ, भेदाश्च (गा. ९) ।	३४	शास्त्रलाभरीतिः (गा. २१) । बुद्धिगुणाः (गा. २२) । श्रवणविधिः (गा.२३) । अनुयोगविधिः, (३गा.२४) ।	४९	
	भाषाया लोकव्याप्तिः, पूरणरीतिश्च, (गा. १०–११) । (जैनसमुद्घातरीत्या न व्याप्तिः) ।	३५	अवधेः प्रकृतयः, (गा. २५) । (यावत्प्रकृतिभणनेऽशक्तिः (गा. २६) ।	५०	
	आभिनिबोधिकस्यैकार्थिकानि (गा. १२)	३८	अवध्यादीनि द्वाराणि (गा. २७–२८) । अवधेर्निक्षेपाः, (गा. २९) ।	५१	
	सत्पदादीनि द्वाराणि (गा. १३–१४) । (सम्यक्त्वे व्यवहारनिश्चयौ) । (क्रियानिष्ठयोर्भेदाभेदौ) । (अवगाहस्पर्शनयोर्भेदः) ।	३९	अवधेर्जघन्यं क्षेत्रम् (गा. ३०) ।	५२	

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

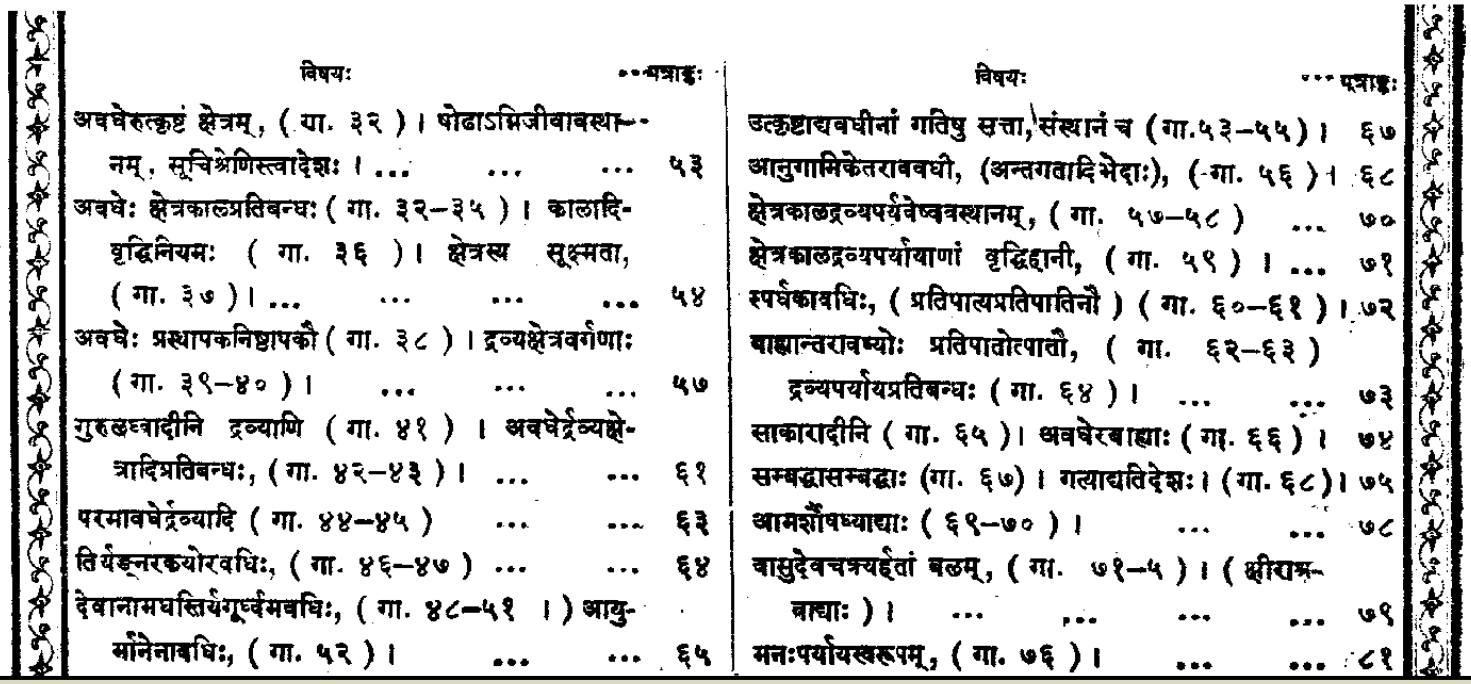

विषयः	पत्राङ्कः
अवधेरुत्कृष्टं क्षेत्रम्, (गा. ३२) । षोढाऽग्निजीवावस्था-नम्, सूचिश्रेणिस्त्वादेशः ।	५३
अवधेः क्षेत्रकालप्रतिबन्धः (गा. ३२–३५) । कालादि-वृद्धिनियमः (गा. ३६) । क्षेत्रस्य सूक्ष्मता, (गा. ३७) ।	५४
अवधेः प्रस्थापकनिष्ठापकौ (गा. ३८) । द्रव्यक्षेत्रवर्गणाः (गा. ३९–४०) ।	५७
गुरुलघ्वादीनि द्रव्याणि (गा. ४१) । अवधेर्द्रव्यक्षेत्रादिप्रतिबन्धः, (गा. ४२–४३) ।	६१
परमावधेर्द्रव्यादि (गा. ४४–४५)	६३
तिर्यङ्नरकयोरवधिः, (गा. ४६–४७)	६४
देवानामधस्तिर्यगूर्ध्वमवधिः, (गा. ४८–५१ ।) आयुर्मानेनावधिः, (गा. ५२) ।	६५

विषयः	पत्राङ्कः
उत्कृष्टाद्यवधीनां गतिषु सत्ता, संस्थानं च (गा.५३–५५) ।	६७
आनुगामिकेतरावधी, (अन्तगतादिभेदाः), (गा. ५६) ।	६८
क्षेत्रकालद्रव्यपर्यवेष्ववस्थानम्, (गा. ५७–५८) ...	७०
क्षेत्रकालद्रव्यपर्यायाणां वृद्धिहानी, (गा. ५९) । ...	७१
स्पर्धकावधिः, (प्रतिपात्यप्रतिपातिनौ) (गा. ६०–६१) ।	७२
बाह्यान्तरावधेः प्रतिपातोत्पातौ, (गा. ६२–६३) द्रव्यपर्यायप्रतिबन्धः (गा. ६४) ।	७३
साकारादीनि (गा. ६५) । अवधेरबाह्याः (गा. ६६) ।	७४
सम्बद्धासम्बद्धाः (गा. ६७) । गत्याद्यतिदेशः । (गा. ६८) ।	७५
आमर्शौषध्याद्याः (६९–७०) ।	७८
वासुदेवचक्रार्हतां बलम्, (गा. ७१–५) । (क्षीराश्रवाद्याः) ।	७९
मनःपर्यायस्वरूपम्, (गा. ७६) ।	८१

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

Jain Edu ... elibrary.org

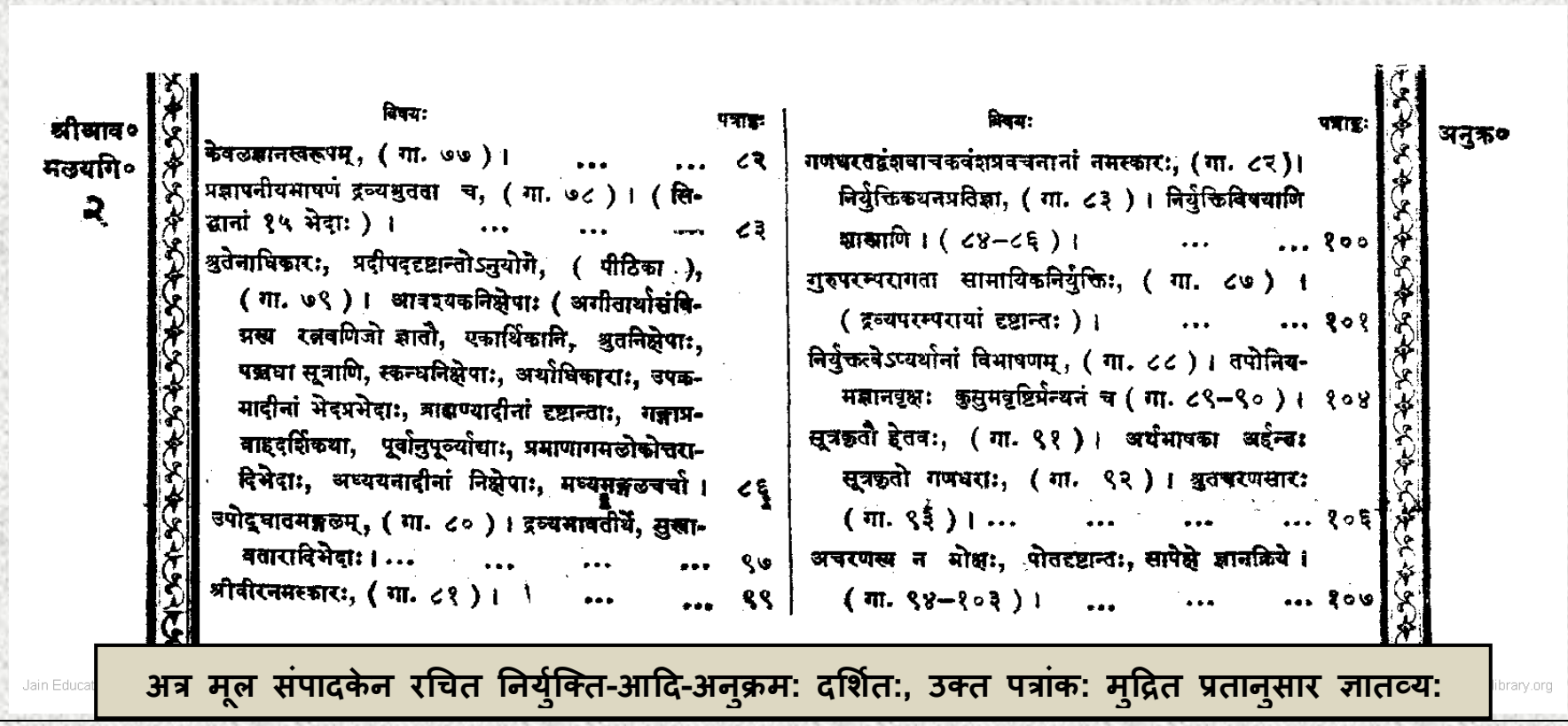

श्रीआव० मलयगि० २

विषयः	पत्राङ्कः
केवलज्ञानस्वरूपम्, (गा. ७७) ।	८२
प्रज्ञापनीयभाषणं द्रव्यश्रुतवा च, (गा. ७८) । (सिद्धानां १५ भेदाः) ।	८३
श्रुतेनाधिकारः, प्रदीपदृष्टान्तोऽनुयोगे, (पीठिका), (गा. ७९) । आवश्यकनिक्षेपाः (अगीतार्थसंविग्नस्य रत्नवणिजो ज्ञातौ, एकार्थिकानि, श्रुतनिक्षेपाः, पञ्चधा सूत्राणि, स्कन्धनिक्षेपाः, अर्थाधिकाराः, उपक्रमादीनां भेदप्रभेदाः, ब्राह्मण्यादीनां दृष्टान्ताः, गङ्गाप्रवाहदर्शिकथा, पूर्वानुपूर्व्यादयः, प्रमाणागमलोकोत्तरादिभेदाः, अध्ययनादीनां निक्षेपाः, मध्यमङ्गलचर्चा ।	८६
उपोद्घातमङ्गलम्, (गा. ८०) । द्रव्यभावतीर्थे, सुखावतारादिभेदाः ।	९७
श्रीवीरनमस्कारः, (गा. ८१) ।	९९
गणधरतद्वंशवाचकवंशप्रवचनानां नमस्कारः, (गा. ८२) । निर्युक्तिकथनप्रतिज्ञा, (गा. ८३) । निर्युक्तिविषयाणि द्वाराणि । (८४–८६) ।	१००
गुरुपरम्परागता सामायिकनिर्युक्तिः, (गा. ८७) । (द्रव्यपरम्परायां दृष्टान्तः) ।	१०१
निर्युक्तेरप्यर्थानां विभाषणम्, (गा. ८८) । तपोनियमज्ञानवृक्षः कुसुमवृष्टिर्मन्थनं च (गा. ८९–९०) ।	१०४
सूत्रकृतौ हेतवः, (गा. ९१) । अर्थभाषका अर्हन्तः सूत्रकृतो गणधराः, (गा. ९२) । श्रुतचरणसारः (गा. ९३) ।	१०६
अचरणस्य न मोक्षः, पोतदृष्टान्तः, सापेक्षे ज्ञानक्रिये । (गा. ९४–१०३) ।	१०७

अनुक्र०

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

विषयः पत्राङ्कः

क्षये केवलं, उत्कृष्टकर्मस्थितौ नैकमपि, कोटाकोट्यन्तर्लाभः। (गा. १०४–१०६)। १११

पल्यादयो दृष्टान्ताः, (गा. १०७)। (अल्पबहुबन्धचर्चा)। ११३

अनन्तानुबन्ध्यादयः, (गा. १०८–१११)। अतिचारे मूलच्छेदे च हेतवः, । (गा. ११२) ११६

चारित्रपञ्चकम्, (गा. ११३–१५)। (परिहारे २० द्वाराणि)। ११८

उपशमश्रेणिः, (गा. ११६)। सूक्ष्मसम्परायः। (गा. ११७)। १२३

कषायसामर्थ्यम्, (गा. ११८–२०)। १२५

क्षपकश्रेणिः, (गा. १२१–२३)। (गाथात्रयस्यासमीचीनता)। १२६

विषयः पत्राङ्कः

केवलस्याशेषविषयता, (गा. १२४)। जिनप्रवचनादीनि, (गा. १२५) एकार्थिकानि, (गा. १२६–१२८)। १२८

अनुयोगनिक्षेपाः, ७ (गा. १२९)। १३०

काष्ठादिदृष्टान्तैर्भाषकाद्याः, (गा. १३२)। ... १३८

व्याख्यानविधौ गवादिदृष्टान्ताः, (गा. १३३) ... १३९

शिष्यगुणदोषाः, शैलघनाद्या दृष्टान्ताः, (गा. १३४–६)। १४१

उद्देशादीनि उपोद्घातद्वाराणि २६। (गा. १३७–१३८)। १४६

उद्देशनिक्षेपाः ८ (गा. १३९)। निर्देशनिक्षेपाः (गा. १४०)। निर्देशे नयाः, (गा. १४१)। ... १४८

निर्गमनिक्षेपाः ६, (गा. १४२)। १५१

नयसारभवः, (गा. १४३–४४। १–२ मू० भा०)। १५२

कुलकरवक्तव्यता, हस्तिनो नीतयश्च (गा. १४५–१६६)। ३ मू० भा०)। १५३

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

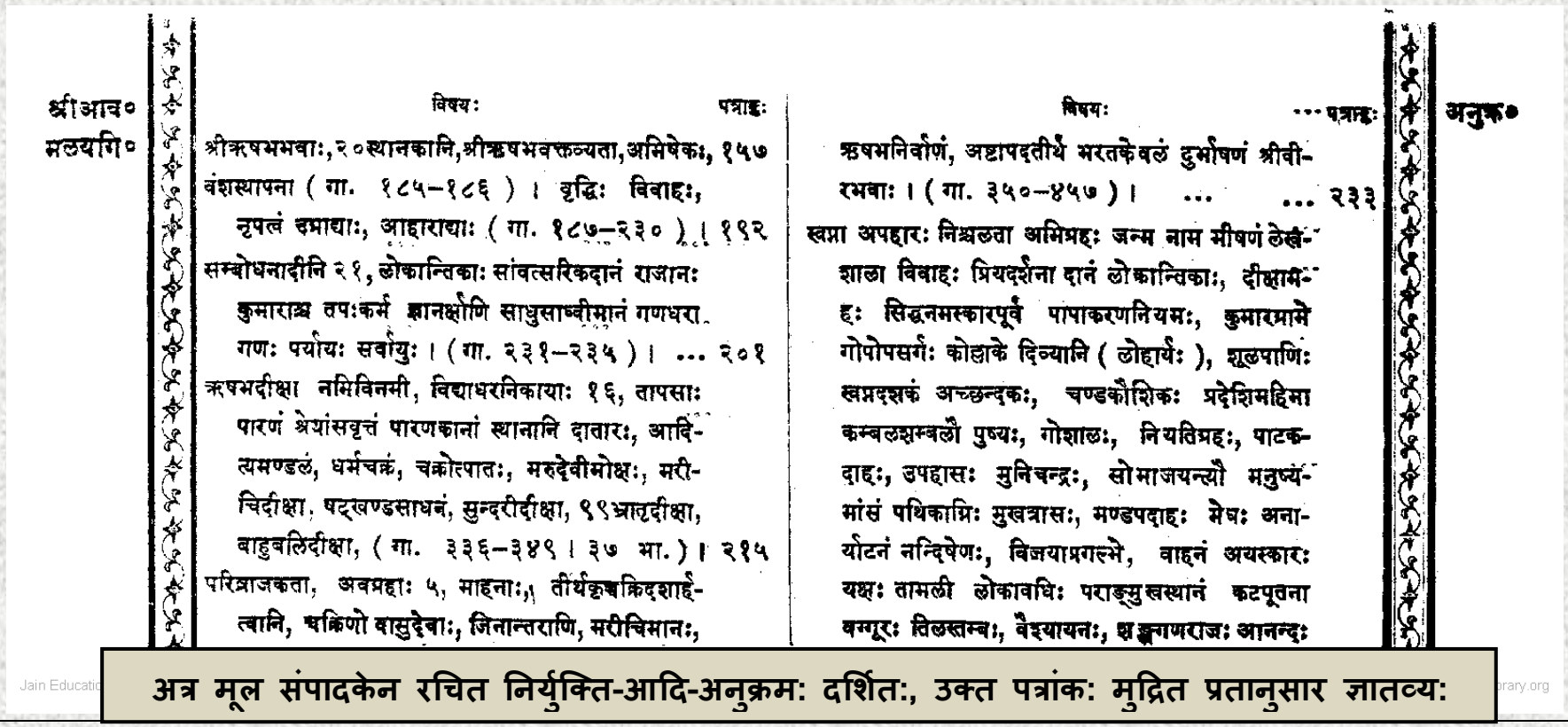

श्रीआव० मलयगि०

विषय: पत्राङ्कः

श्रीऋषभभवाः, २० स्थानकानि, श्रीऋषभवक्तव्यता, अभिषेकः, १५७
वंशस्थापना (गा. १८५–१८६) । वृद्धिः विवाहः,
नृपत्वं दण्डाद्याः, आहाराद्याः (गा. १८७–२३०) । १९२
सम्बोधनादीनि २१, लोकान्तिकाः सांवत्सरिकदानं राजानः
कुमाराश्च तपःकर्म ज्ञानक्षीणि साधुसाध्वीमानं गणधरा
गणः पर्यायः सर्वायुः । (गा. २३१–२३५) । ... २०१
ऋषभदीक्षा नमिविनमी, विद्याधरनिकायाः १६, तापसाः
पारणं श्रेयांसवृत्तं पारणकानां स्थानानि दातारः, आदि-
त्यमण्डलं, धर्मचक्रं, चक्रोत्पातः, मरुदेवीमोक्षः, मरी-
चिदीक्षा, षट्खण्डसाधनं, सुन्दरीदीक्षा, ९९भ्रातृदीक्षा,
बाहुबलिदीक्षा, (गा. ३३६–३४९ । ३७ भा.) । २१५
परिव्राजकता, अवग्रहाः ५, माहनाः, तीर्थकृच्चक्रिदशार्ह-
त्वानि, चक्रिणो वासुदेवाः, जिनान्तराणि, मरीचिभवः,

विषय: ... पत्राङ्कः

ऋषभनिर्वाणं, अष्टापदतीर्थं भरतकेवलं दुर्भाषणं श्रीवी-
रभवाः । (गा. ३५०–४५७) । २३३
स्वप्ना अपहारः निश्चलता अभिग्रहः जन्म नाम भीषणं लेख-
शाला विवाहः प्रियदर्शना दानं लोकान्तिकाः, दीक्षाग्र-
हः सिद्धनमस्कारपूर्वं पापाकरणनियमः, कुमारग्रामे
गोपोपसर्गः कोल्लाके दिव्यानि (लोहार्यः), शूलपाणिः
स्वप्नदृशकं अच्छन्दकः, चण्डकौशिकः प्रदेशिमहिमा
कम्बलशम्बलौ पुष्यः, गोशालः, नियतिग्रहः, पाटक-
दाहः, उपहासः मुनिचन्द्रः, सोमाजयन्त्यौ मनुष्य-
मांसं पथिकाग्निः मुखत्रासः, मण्डपदाहः मेघः अना-
र्योटनं नन्दिषेणः, विजयाप्रगल्भे, वाहनं अयस्कारः
यक्षः तामली लोकावधिः पराङ्मुखस्थानं कटपूतना
वग्गूरः तिलस्तम्बः, वैश्यायनः, शङ्खगणराजः आनन्दः

अनुक्र०

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

Jain Educatio ... brary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

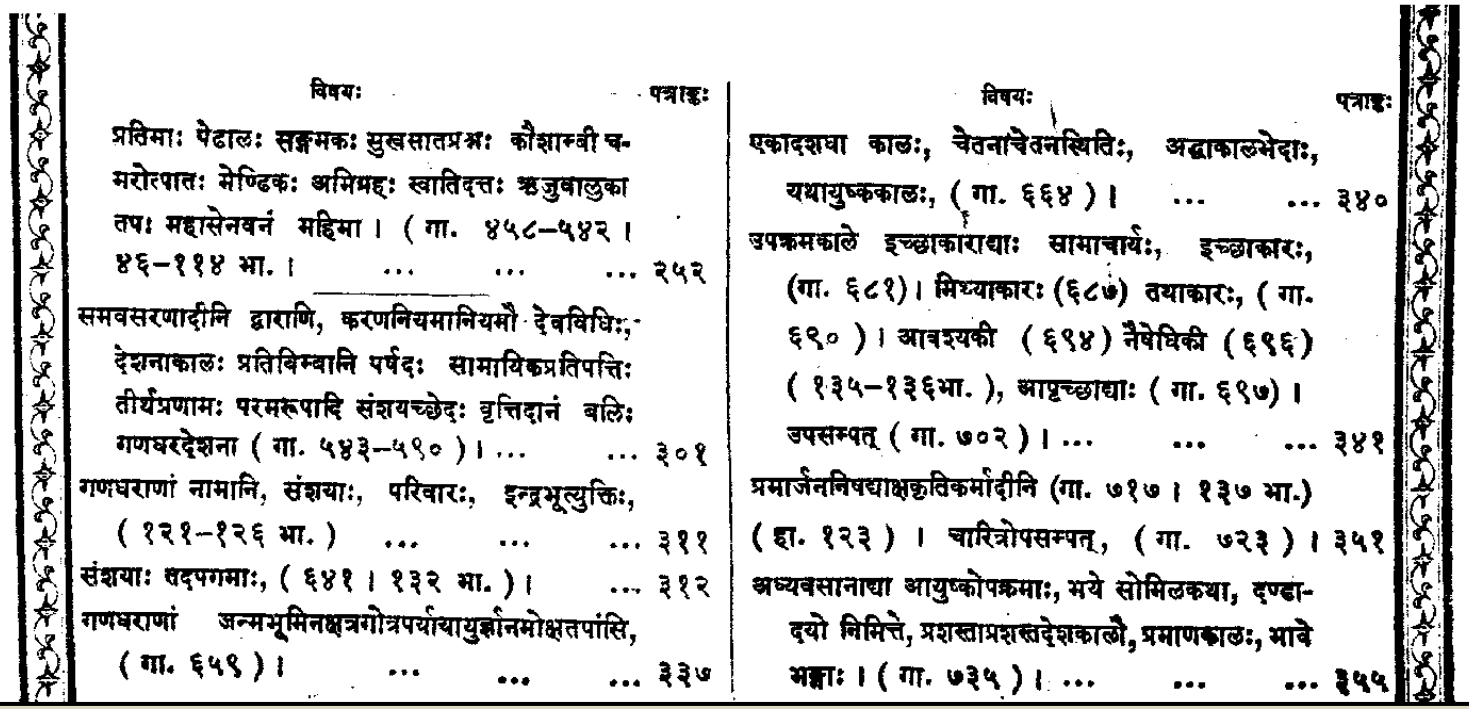

विषयः पत्राङ्कः

प्रतिमाः पेढालः सङ्गमकः सुखसातप्रश्नः कौशाम्बी चमरोत्पातः मेण्ढिकः अभिग्रहः स्वातिदत्तः ऋजुवालुका तपः महासेनवनं महिमा । (गा. ४५८–५४२ । ४६–११४ भा. । २५२

समवसरणादीनि द्वाराणि, करणनियमानियमौ देवविधिः, देशनाकालः प्रतिविम्बानि पर्षदः सामायिकप्रतिपत्तिः तीर्थप्रणामः परमरूपादि संशयच्छेदः वृत्तिदानं बलिः गणधरदेशना (गा. ५४३–५९०) । ३०१

गणधराणां नामानि, संशयाः, परिवारः, इन्द्रभूत्युक्तिः, (१२१–१२६ भा.) ३११

संशयाः तदपगमाः, (६४१ । १३२ भा.) । ... ३१२

गणधराणां जन्मभूमिनक्षत्रगोत्रपर्यायायुर्ज्ञानमोक्षतपांसि, (गा. ६५९) । ३३७

विषयः पत्राङ्कः

एकादशधा कालः, चेतनाचेतनस्थितिः, अद्धाकालभेदाः, यथायुष्ककालः, (गा. ६६४) । ३४०

उपक्रमकाले इच्छाकाराद्याः सामाचार्यः, इच्छाकारः, (गा. ६८१) । मिथ्याकारः (६८७) तथाकारः, (गा. ६९०) । आवश्यकी (६९४) नैषेधिकी (६९६) (१३५–१३६भा.), आपृच्छाद्याः (गा. ६९७) । उपसम्पत् (गा. ७०२) । ३४१

प्रमार्जननिषद्याक्षकृतिकर्मादीनि (गा. ७१७ । १३७ भा.) (हा. १२३) । चारित्रोपसम्पत्, (गा. ७२३) । ३५१

अध्यवसानाद्या आयुष्कोपक्रमाः, भये सोमिलकथा, दण्डादयो निमित्ते, प्रशस्ताप्रशस्तदेशकालौ, प्रमाणकालः, भावे भङ्गाः । (गा. ७३५) । ३५५

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

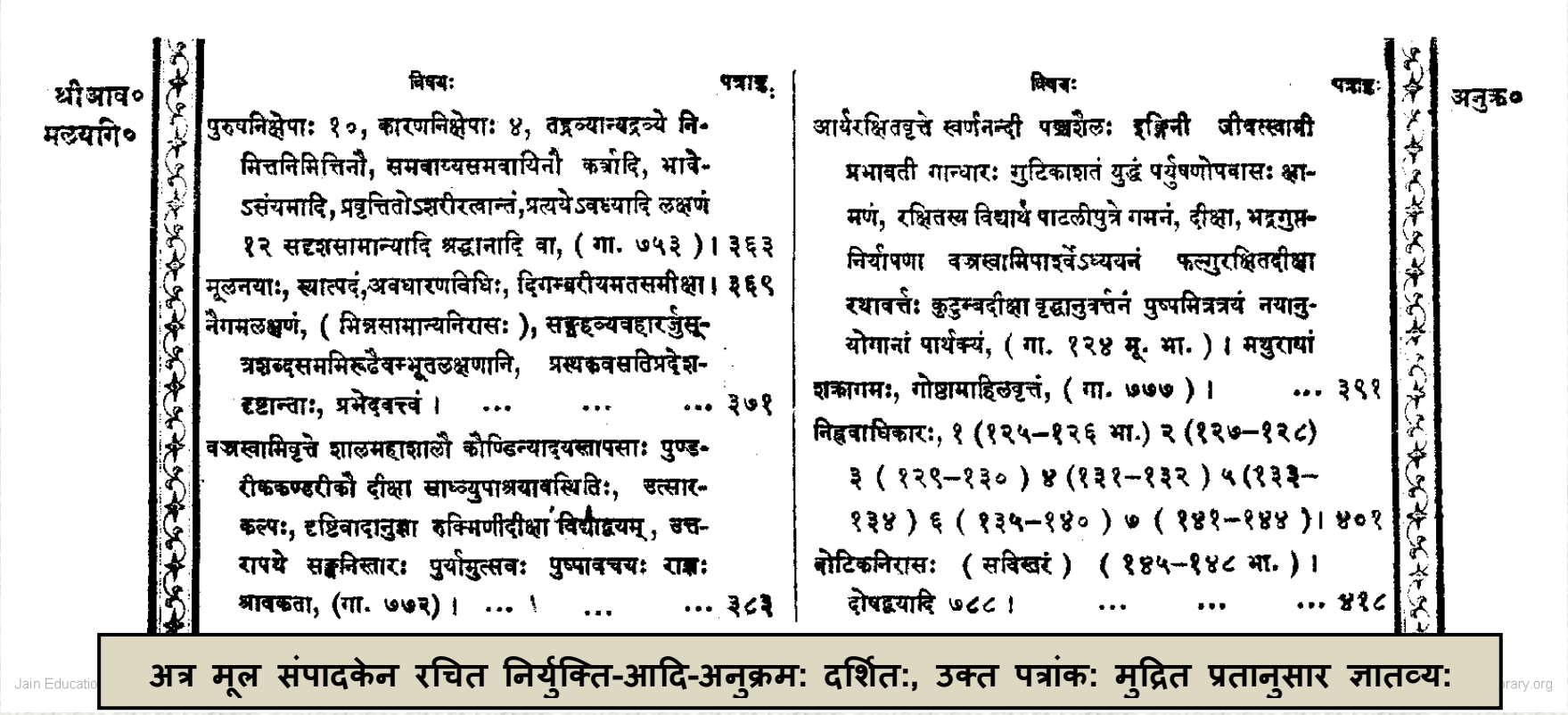

श्रीआव० मलयगि०

विषयः पत्राङ्कः

पुरुषनिक्षेपाः १०, कारणनिक्षेपाः ४, तद्द्रव्यान्यद्रव्ये निमित्तनिमित्तिनौ, समवाय्यसमवायिनौ कर्त्रादि, भावेऽसंयमादि, प्रवृत्तितोऽशरीरत्वान्तं, प्रत्ययेऽवध्यादि लक्षणं १२ सदृशसामान्यादि श्रद्धानादि वा, (गा. ७५३)। ३६३
मूलनयाः, स्यात्पदं, अवधारणविधिः, दिगम्बरीयमतसमीक्षा। ३६९
नैगमलक्षणं, (भिन्नसामान्यनिरासः), सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसममिरूढैवम्भूतलक्षणानि, प्रस्थकवसतिप्रदेशदृष्टान्ताः, प्रभेदवत्त्वं। ३७१
वज्रस्वामिवृत्ते शालमहाशालौ कौण्डिन्यादयस्तापसाः पुण्डरीककण्डरीकौ दीक्षा साध्व्युपाश्रयावस्थितिः, उत्सारकल्पः, दृष्टिवादानुज्ञा रुक्मिणीदीक्षा विद्याद्वयम्, उत्तरापथे सङ्घनिस्तारः पुर्यामुत्सवः पुष्पावचयः राज्ञः श्रावकता, (गा. ७७२)। ३८३

विषयः पत्राङ्कः

आर्यरक्षितवृत्ते स्वर्णनन्दी पञ्चशैलः इङ्गिनी जीवस्वामी प्रभावती गान्धारः गुटिकाशतं युद्धं पर्युषणोपवासः श्रामणं, रक्षितस्य विद्यार्थं पाटलीपुत्रे गमनं, दीक्षा, भद्रगुप्तनिर्यापणा वज्रस्वामिपार्श्वेऽध्ययनं फल्गुरक्षितदीक्षा रथावर्त्तः कुटुम्बदीक्षा वृद्धानुवर्त्तनं पुष्पमित्रत्रयं नयानुयोगानां पार्थक्यं, (गा. १२४ मू. भा.)। मथुरायां शक्रागमः, गोष्ठामाहिलवृत्तं, (गा. ७७७)। ... ३९१
निह्नवाधिकारः, १ (१२५–१२६ भा.) २ (१२७–१२८) ३ (१२९–१३०) ४ (१३१–१३२) ५ (१३३–१३४) ६ (१३५–१४०) ७ (१४१–१४४)। ४०१
बोटिकनिरासः (सविस्तरं) (१४५–१४८ भा.)। दोषद्वयादि ७८८। ४१८

अनुक्र०

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विषयः	पत्राङ्कः
अनुमते तपःसंयमादि, सामायिकस्यात्मादि लक्षणं, (गा. १४९–१५५)।	४२८
व्रतानां द्रव्येष्ववतारः, द्रव्यपर्यायापेक्षया सामायिकं। ...	४३१
सामायिकस्य भेदाः सम्यक्त्ववादीनां भेदाः (१५० भा.) गा. ७९५।	४३३
सन्निहितात्मादेः सामायिकम्, (गा. ८०३)। ...	४३५
सामायिकप्राप्तिहेतुक्षेत्रदिक्कालगत्यादीनि द्वाराणि अलङ्कारादिद्वारान्तानि, दिग्निक्षेपः, (गा. ८२९)। ...	४३६
द्रव्यपर्यायव्यापितावि चारः, (गा. ८३०)। ...	४५१
मनुजत्वादीनां दौर्लभ्ये चोल्लकादयो दृष्टान्ताः, (गा.८४०)।	४५१
आलस्याद्या धर्मविघ्नहेतवः, यानावरणादिरूपकम्, (गा. ८४३)।	४५५

विषयः	पत्राङ्कः
दृष्टानुभवादौ सम्यक्त्वं, (आनन्दादिश्रावकचरित्राणि) (गा. ८४४)।	४५६
वल्कलचीरिवृत्तम्।	४५७
अनुकम्पाद्या हेतवः, तद्दृष्टान्ताश्च वैद्यादयः, अभ्युत्थानादयः, (गा. ८४९)।	४६०
कालमानं, प्रतिपद्यमानादयः, अन्तरं, अविरहविरहौ आकर्षाः स्पर्शना भागः पर्यायाः, दमदन्ताद्या दृष्टान्ताः (गा. ८७९)।	४६९
इत्युपोद्घातनिर्युक्तिः।	
सूत्रस्य दोषा गुणाः, सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिनयानां सममनुगमः, (गा. ८८६)।	४८२
ब्रत्परत्यादिफलान्तं नमस्कारे, समुत्थानवाचनालङ्घितः स्वामी निक्षेपास्तेषु नयाः किमादिषट्द्वया सत्पदादि-	

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

Jain Educatio ... rary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

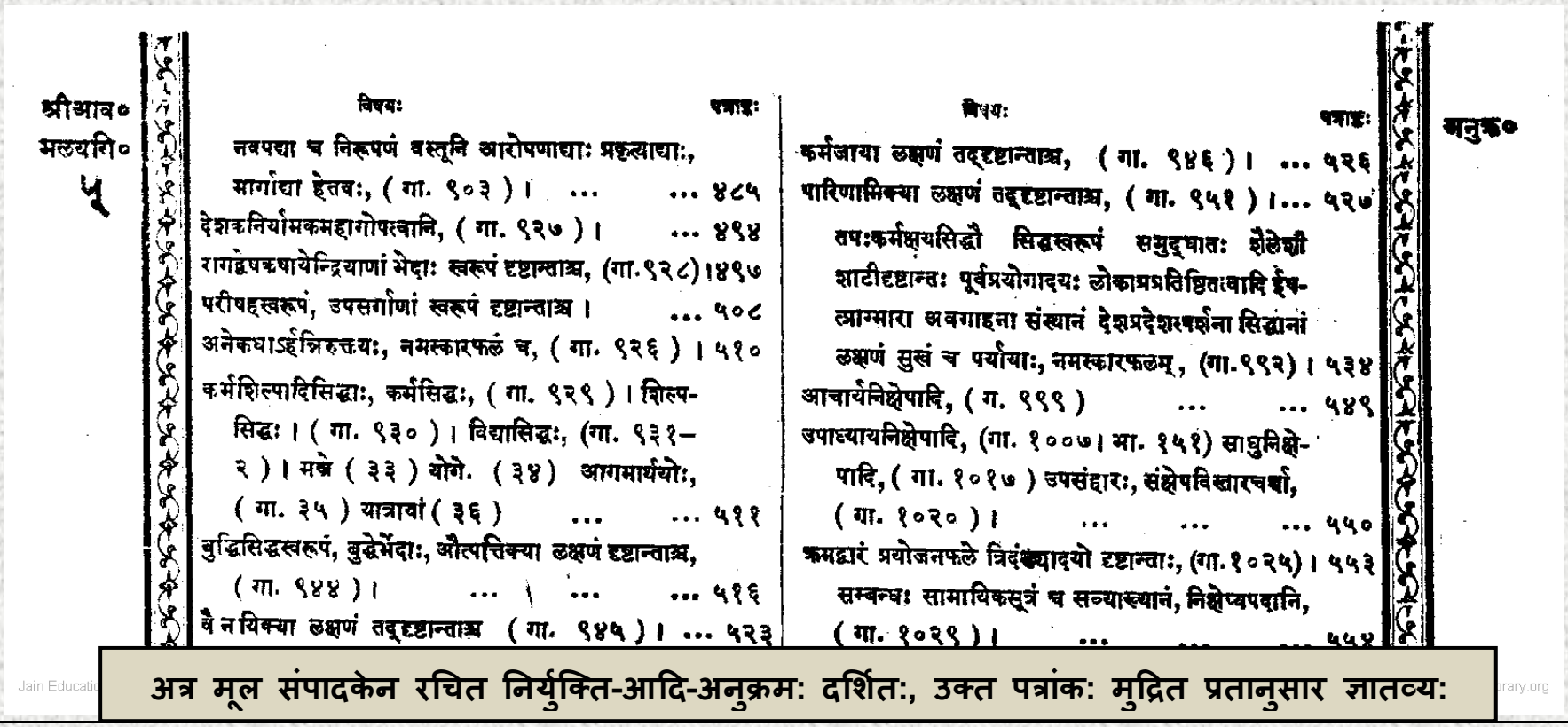

श्रीआव० मलयगि० ५

विषयः	पत्राङ्कः
नवपद्या च निरूपणं वस्तूनि आरोपणाद्याः प्रकृत्याद्याः, मार्गाद्या हेतवः, (गा. ९०३) ।	४८५
देशकनिर्यामकमहागोपत्वानि, (गा. ९२७) । ...	४९४
रागद्वेषकषायेन्द्रियाणां भेदाः स्वरूपं दृष्टान्ताश्च, (गा.९२८)।	४९७
परीषहस्वरूपं, उपसर्गाणां स्वरूपं दृष्टान्ताश्च । ...	५०८
अनेकधाऽर्हन्निरुक्तयः, नमस्कारफलं च, (गा. ९२६) ।	५१०
कर्मशिल्पादिसिद्धाः, कर्मसिद्धः, (गा. ९२९) । शिल्पसिद्धः । (गा. ९३०) । विद्यासिद्धः, (गा. ९३१–२) । मन्त्रे (३३) योगे. (३४) आगमार्थयोः, (गा. ३५) यात्रायां (३६)	५११
बुद्धिसिद्धस्वरूपं, बुद्धेर्भेदाः, औत्पत्तिक्या लक्षणं दृष्टान्ताश्च, (गा. ९४४) ।	५१६
वैनयिक्या लक्षणं तद्दृष्टान्ताश्च (गा. ९४५) । ...	५२३
कर्मजाया लक्षणं तद्दृष्टान्ताश्च, (गा. ९४६) । ...	५२६
पारिणामिक्या लक्षणं तद्दृष्टान्ताश्च, (गा. ९५१) । ...	५२७
तपःकर्मक्षयसिद्धौ सिद्धस्वरूपं समुद्घातः शैलेशी शाटीदृष्टान्तः पूर्वप्रयोगादयः लोकाग्रप्रतिष्ठितत्वादि ईषत्प्राग्भारा अवगाहना संस्थानं देशप्रदेशस्पर्शना सिद्धानां लक्षणं सुखं च पर्यायाः, नमस्कारफलम्, (गा.९९२) ।	५३४
आचार्यनिक्षेपादि, (ग. ९९९)	५४९
उपाध्यायनिक्षेपादि, (गा. १००७। भा. १५१) साधुनिक्षेपादि, (गा. १०१७) उपसंहारः, संक्षेपविस्तारचर्चा, (गा. १०२०) ।	५५०
क्रमद्वारं प्रयोजनफले त्रिदंडयादयो दृष्टान्ताः, (गा.१०२५) ।	५५३
सम्बन्धः सामायिकसूत्रं च सव्याख्यानं, निक्षेप्यपदानि, (गा. १०२९) ।	५५४

अनुक्र०

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

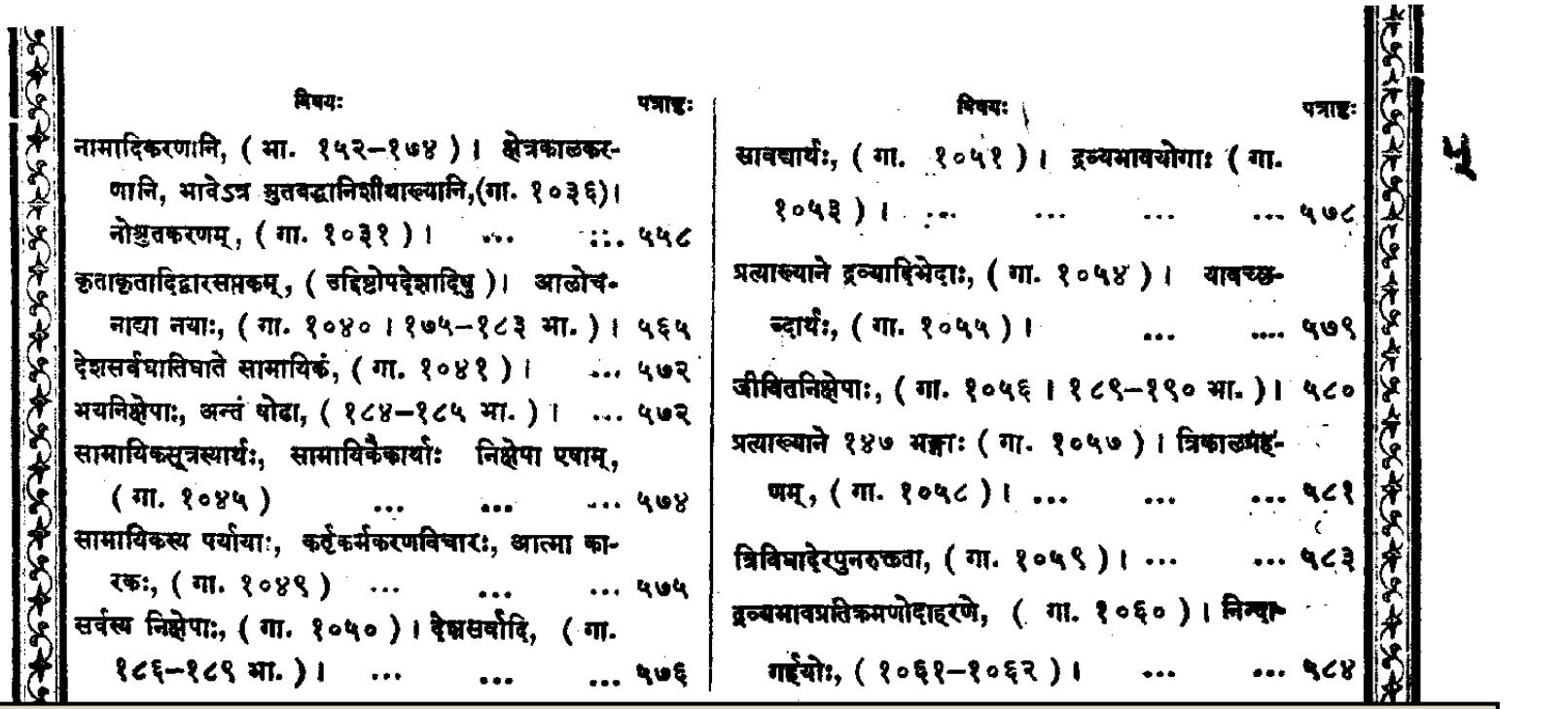

विषयः	पत्राङ्कः
नामादिकरणानि, (भा. १५२–१७४) । क्षेत्रकालकरणानि, भावेऽत्र श्रुतवद्वानिशीथाख्यानि,(गा. १०३६)। नोश्रुतकरणम्, (गा. १०३१) ।	५५८
कृताकृतादिद्वारसप्तकम्, (उद्दिष्टोपदेशादिषु) । आलोचनाद्या नयाः, (गा. १०४० । १७५–१८३ भा.) ।	५६५
देशसर्वघातिघाते सामायिकं, (गा. १०४१) । ...	५७२
भयनिक्षेपाः, अन्तं षोढा, (१८४–१८५ भा.) । ...	५७२
सामायिकसूत्रस्यार्थः, सामायिकैकार्थाः निक्षेपा एषाम्, (गा. १०४५)	५७४
सामायिकस्य पर्यायाः, कर्तृकर्मकरणविचारः, आत्मा कारकः, (गा. १०४९)	५७५
सर्वस्य निक्षेपाः, (गा. १०५०) । देशसर्वादि, (गा. १८६–१८९ भा.) ।	५७६

विषयः	पत्राङ्कः
सावद्यार्थः, (गा. १०५१) । द्रव्यभावयोगाः (गा. १०५३) ।	५७८
प्रत्याख्याने द्रव्यादिभेदाः, (गा. १०५४) । यावच्छब्दार्थः, (गा. १०५५) ।	५७९
जीवितनिक्षेपाः, (गा. १०५६ । १८९–१९० भा.) ।	५८०
प्रत्याख्याने १४७ भङ्गाः (गा. १०५७) । त्रिकालग्रहणम्, (गा. १०५८) ।	५८१
त्रिविधादेरपुनरुक्तता, (गा. १०५९) ।	५८३
द्रव्यभावप्रतिक्रमणोदाहरणे, (गा. १०६०) । निन्दागर्हयोः, (१०६१–१०६२) ।	५८४

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

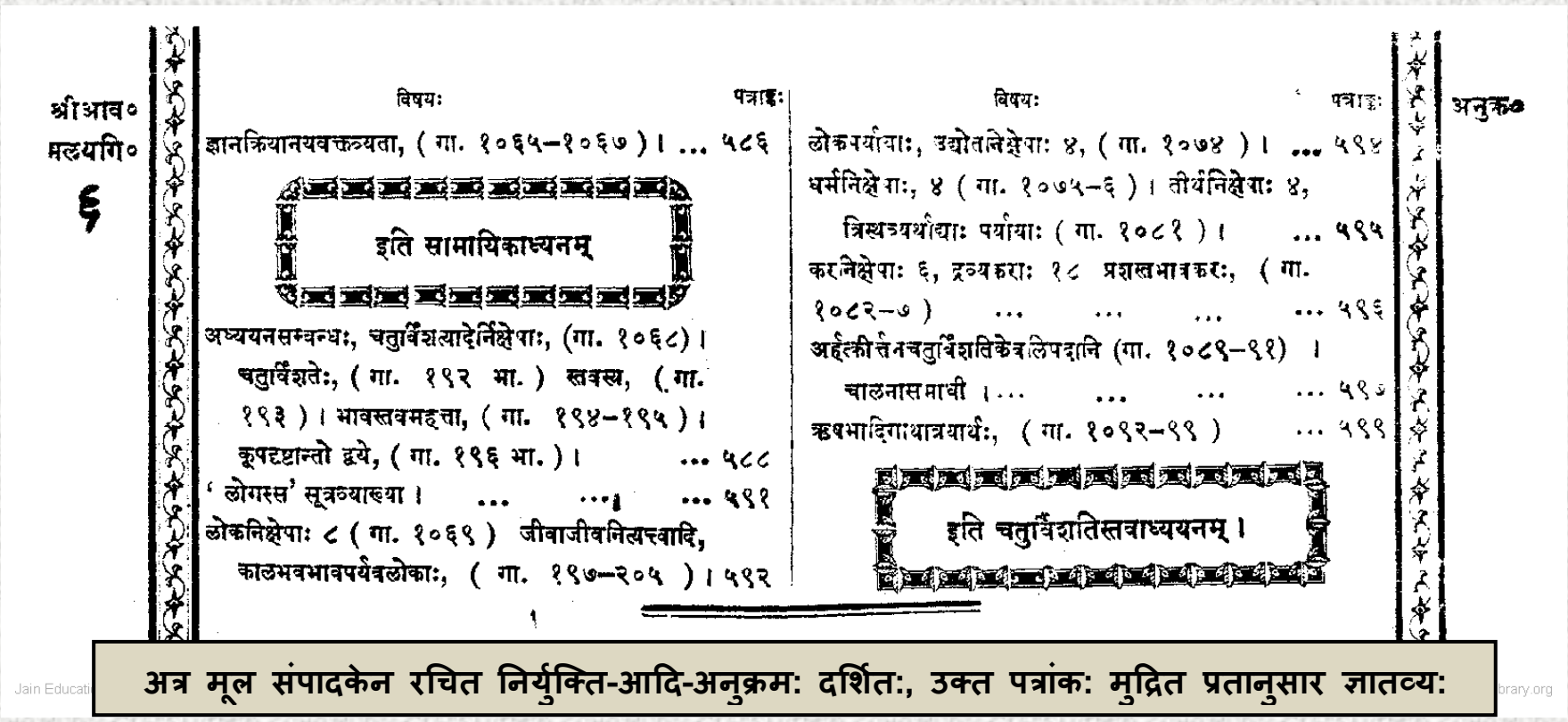

श्रीआव० मलयगि० ६

विषयः पत्राङ्कः

ज्ञानक्रियानयवक्तव्यता, (गा. १०६५–१०६७)। ... ५८६

इति सामायिकाध्ययनम्

अध्ययनसम्बन्धः, चतुर्विंशत्यादेर्निक्षेपाः, (गा. १०६८)। चतुर्विंशतेः, (गा. १९२ भा.) स्तवस्य, (गा. १९३)। भावस्तवमहत्ता, (गा. १९४–१९५)। कूपदृष्टान्तो द्वये, (गा. १९६ भा.)। ... ५८८

'लोगस्स' सूत्रव्याख्या। ५९१

लोकनिक्षेपाः ८ (गा. १०६९) जीवाजीवनित्यत्वादि, कालभवभावपर्यवलोकाः, (गा. १९७–२०५)। ५९२

विषयः पत्राङ्कः

लोकपर्यायाः, उद्योतनिक्षेपाः ४, (गा. १०७४)। ... ५९४

धर्मनिक्षेपाः, ४ (गा. १०७५–६)। तीर्थनिक्षेपाः ४, त्रिस्थत्र्यर्थाद्याः पर्यायाः (गा. १०८१)। ... ५९५

करनिक्षेपाः ६, द्रव्यकराः १८ प्रशस्तभावकरः, (गा. १०८२–७) ५९६

अर्हत्कीर्त्तनचतुर्विंशतिकेवलिपदानि (गा. १०८९–९१)। चालनासमाधी ।... ... ... ५९७

ऋषभादिगाथात्रयार्थः, (गा. १०९२–९९) ... ५९९

इति चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनम्।

अनुक्र०

अत्र मूल संपादकेन रचित निर्युक्ति-आदि-अनुक्रम: दर्शित:, उक्त पत्रांक: मुद्रित प्रतानुसार ज्ञातव्य:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीमलयगिरिसूरिसूत्रिताया आवश्यकवृत्तेरुपक्रमः ।

विपश्चितो विधाय कृपां समाददत्वेतद् मुद्रयित्वाऽप्यमाणमावश्यकीयं श्रीमलयागिर्याचार्यविहितं विवरणं । **अन्यविवरणानि**–यद्यपि विहितमत्र विवरणं व्याससमासाभ्यां सूरिपुरन्दरैः श्रीहरिभद्रैः, तत्र व्यासविवरणस्य श्रीमलयगिर्याचार्यसत्ताकालतः प्रागेव व्युच्छेदः, तथापि सार्धद्वाविंशतिसहस्रमानं लघु विवेचनं तु श्रीमलयगिरिसत्ताकालेऽपि वरिवर्त्तमानमभूदेव,'यद्यपि मया तथाऽन्यैः कृताऽस्य विवृतिः'इति श्रीहरिभद्रसूरिभिरावश्यकवृत्तेरारम्भे उक्तत्वात् अन्याचार्यवर्यविहितानि अभविष्यन् अस्य अन्यानि विवरणानि, तथापि श्रीमलयगिर्याचार्यसमये केवलं श्रीहरिभद्रसूरिकृतैव वृत्तिः प्रज्ञेति श्रीमलयगिरयोऽस्मिन्नेव २० पत्रे अस्यैवावश्यकस्य मूलटीकायां० ४३ पत्रे अस्य मूलटीकाकृत् इत्याद्युदाहार्षुः ।

आवश्यकस्य स्थानं–आद्यन्त्यजिनयतीनां प्रत्यहं नियमेन द्विर्विधानेन शेषाणामपि कारणे सति अवश्यकरणाद् श्रीमति शासने जैनेन्द्रे नावश्यकस्यानावश्यकं स्थानं, किंच–अभ्यासक्रमे आदावस्यैव स्थानमिति सामाइयमाइयाइं इक्कारसंगाइं अहिज्जइत्ति, सामाइयाइ बिन्दुसारपर्यंतमित्यादिकाः स्पष्टा उक्तयः, अत एव श्रुतकेवलिश्रीभद्रबाहुस्वामिभिरस्यैवादौ आरब्धा निर्युक्तिः ।

आवश्यकस्य कर्त्ता–यद्यपि चेदमावश्यकं भगवद्भिर्गणधरैरेव विहितमिति उपोद्घातनिर्युक्तिगतकारणप्रत्ययद्वारयोः श्रीअनुयोगद्वारगतस्यात्मागमादिप्रकरणस्य च दर्शनादवसीयते स्पष्टं,तथाऽप्यङ्गबाह्यतयेदं व्यवह्रियते, यतो नेदं उप्पन्नेइवेत्यादिनिषद्यात्रयकाले गणधरपदानुज्ञायाश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित अस्या वृत्ते: प्रास्ताविक-उपक्रम

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीआव० मलयगि० ॥ ३ ॥

प्राक् कृतं, किन्तु अनुज्ञाकालसायंकालयोर्मध्यभागे, आवश्यकं चावश्यकानुष्ठानं भगवतां गणधराणामपि, तथा चाङ्गबाह्यत्वेऽप्यस्य गणधरकृतताऽव्याहतैव, अत एव चानङ्गप्रविष्टश्रुतलक्षणे ४८ पत्रे एत एव सूरीन्द्राः 'गणधरकृतप्रश्नव्यतिरेकेण शेषकृतप्रश्नपूर्वकं वा भगवतो मुत्कलं व्याकरण'मिति स्पष्टितवन्तः, अङ्गबाह्यस्य सर्वथा गणधरेतरकर्तृकत्वे गणेत्याद्यविकल्पस्यैवाभावात्, यच्च कचिन् श्रीभद्रबाहुस्वामिप्रभृतिभिः स्थविरैः कृतमङ्गबाह्यमावश्यकादीत्युच्यते तद् आवश्यकनिर्युक्तिमावश्यकत्वेनाभिप्रेत्यैव, एवं च भगवद्भिः श्रीजिनभद्रक्षमाश्रमणैरावश्यकनिर्युक्तेर्व्याख्याने ऽपि 'आवासयाणुओगं' इत्यूचे, श्रीआचाराङ्गवृत्तौ लोकनिक्षेपाधिकारे च चतुर्विंशतिस्तवस्त्वारातीयेत्यादिना चतुर्विंशतिस्तवत्वेन तन्निर्युक्तिरेवाभिप्रेता, कचित्तु अङ्गबाह्यानां स्थविरकृतत्वनिदर्शने स्पष्टतयाऽऽवश्यकनिर्युक्तिरेवोच्यते यथाऽत्रैव ४८ 'तदनङ्गप्रविष्टं, तच्चावश्यकनिर्युक्त्यादि' ततश्चाङ्गप्रविष्टं गणधरकृतमेव स्थविरकृतं त्वङ्गबाह्यमेवेति निर्णेयं सुधीभिः, एवं चास्यावश्यकस्याङ्गबाह्यत्वे गणधरकृतत्वे च न कोऽपि विरोधः ।

अस्य सूत्रस्य प्रतिदिनमार्हतानां द्विरुपयोगित्वादस्याभ्यासक्रमे आदिस्थानात् अस्यैवादौ निर्युक्तिकरणाच्च महता विवरणेन परिवारितं पूज्यैः, अस्यैवोपरि निर्युक्तिमूलभाष्यभाष्यविशेषावश्यकभाष्यचूर्णिप्रभृतयो विवरणग्रन्थाः विहिता विपश्चिन्मूर्धन्यैः, एवं चाचार्यश्रीमलयगिरिभिरपि व्यधायि विवरणमस्य, परं केनापि हेतुनेदमपूर्णमेव श्रीकुन्थुनाथस्तवपर्यन्तं दृब्धं, यथा चैतदपूर्णमाचार्याणामेषां तथा श्रीबृहत्कल्पभाष्यविवरणमप्यपूर्णमेवास्ति, मुद्रणं त्वेतस्यैतावन्मात्रं व्यधायि, ततः शेषं विवरणं श्रीमत्या आगमोदयसमित्या प्राग् मुद्रितायाः श्रीहरिभद्रीयवृत्तेरवधेयं, अपूर्णस्यापि मुद्रणमस्योपयुक्तानेकविषयसमावेशात् विस्तृततया विवरणाच्च नानुपयुक्तम् ।

उपक्रमः ।

॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित अस्या वृत्ते: प्रास्ताविक-उपक्रम

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [-]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ग्रन्थकाराभिधानं–पूर्वं प्राचुर्येण साधुमहात्मनां नामानि गृहस्थपर्यायभावीन्येव प्रचारमापुः, प्रव्रज्यापर्यायेऽपि क्वचिदेव च श्रीसिद्धसेनदिवाकरकलिकालसर्वज्ञश्रीहेमसूर्यादीनामिव नाम्नः परावर्त्तोऽपि, अधुना तु षोडशशताब्दीतः सागरविजयविमलादिशाखानां प्रादुर्भावात् सर्वेषां परावर्त्तोऽभिधाने प्रव्रज्यादिने एव, परं श्रीमतामभिधानं तु पूर्वपर्यायाभिधानेनैव, न तु परावृत्तं, तेन गिर्याख्या काऽपि शाखा तदन्तर्गताश्चैते महात्मान इति न भ्रान्तव्यं भारतीभूषणैः, मलयगिरिवत् सर्वदा मनोहरत्वशीलसुगन्धित्वविनयवत्त्वशान्ततमत्वकु-मतातापनिर्णाशनादिकामनुपमां गुणगणततिमुपलभ्य पूज्यानां गौणं वाऽभिधानमेतत् रूढं स्यात्, यतो नेदमभिधानं संज्ञारूपं, किन्तूप-मारूपमिति विदुषां विश्रुतमेव ।

सत्तासमयः–यद्यपि पूज्यतमैर्ग्रन्था जगन्थिरेऽनेके तथापि न कुत्रापि स्वेषां सत्तासमयो मातापित्रोरभिधानं जन्मभूमिः यावत् पूज्यतमानां स्वगुरूणां गच्छस्यापि च नाम निर्दिष्टानि, पूज्यानां सर्वेष्वपि ग्रन्थेषु स्वरचितत्वं मात्रं दर्शितं प्रेक्ष्यते, नान्यत् किमपि गुरु-गच्छाभिधानादिकं, न च वाच्यं तदानींतने समये ग्रन्थावसाने गुरुगच्छदर्शनपरमैतिह्यं नैवाभूत्, यतः पूज्यप्रवराः कलिकालसर्वज्ञ-श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वराणां भ्रातरः शिष्याः शिष्यप्राया वा उपसम्पदादिनाऽभूवन्निति अस्मिन्नेव ११ पत्रे तथाचाहुः स्तुतिषु गुरव इत्युद्दिश्य गुरुत्वं श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरप्रणीतमन्ययोगव्यवच्छेदस्तुतिगतं काव्यमुल्लिखितं ततो निश्चीयते, कालिकालसर्वज्ञकाले तु परःशता ग्रन्था गुरुगच्छा-भिधानाद्यभिधानालङ्कृताः, अस्मादेव च निर्देशादेतदपि न शक्यं वक्तुमेतत् यदुत गुरुषु न ते तथाविधां भक्तिं बिभरांचक्रुरिति, एवं च यः कश्चिदोद्यवज्जुरेवं प्रालपत् यदुत श्रीहेमचन्द्रसूरीणां गुरुभ्रातर एते, श्रीहेमचन्द्रसूरिभ्य आचार्यपदं श्रीदेवचन्द्रैः परमगुरुभिर्दत्तमिति मन्युना 'वूढो गणहरसद्दो' इत्याद्युक्त्वा नन्द्यां श्रीदेवचन्द्राचार्य शशापेति तत् निरस्तं, यतः प्रस्तुतं नन्दीवृत्तिगतश्रीहारिभद्रीयं वचोऽपि तथैवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित अस्या वृत्ते: प्रास्ताविक-उपक्रम

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

न्यूनमिति तदनुसरतैवोक्तं श्रीमद्भिरपि, न च तथाविधानां महतामाशातना कार्यैवमुन्मार्गपोषकैरसूयामयैः वचनैः, श्रीमतामनेहसि श्रीमतां समन्तभद्राचार्याणामाद्यस्तुतिकारकतया प्रसिद्धिः, तत एव च श्रीमन्तः ११ पत्रे नयास्तव स्यात्पदेतिकाव्यमाद्यस्तुतिकारोऽप्यवोचदित्येवमादिश्यादिक्षन्, भगवन्तः श्रीहेमचन्द्राचार्या अपि स्वोपज्ञश्रीसिद्धहैमशब्दानुशासनेऽप्येतदेव काव्यं स्तुतिकारोऽप्याहेत्येवमुक्त्वोदाजहुः, एवं च यः कश्चन पारगतादितागममलिम्लुक्परकीयागमपटच्चरः श्रीमतां समन्तभद्राणां नग्नत्वं नादितवांस्तन्न प्रमाणास्पदमित्यवधेयं धीधनैः न चेदतः प्रज्ञो नग्नाटतादर्शकः पाठः, न च नग्नानां भवतां शुभवतां कथञ्चित्पक्षपातो भविष्यतीत्यपि नोद्यं, यतः श्रीमतां भगवतामर्हतां नमस्कारस्य प्रसंगे परिपहनामनप्रसंगे नग्नानां स्पष्टस्तिरस्कारः सयुक्तिकं विस्तरेण विहितः, नयप्रमाणविचारे चाकलङ्कीयं लघीयस्त्रयलङ्कारव्याख्यादिकं दूषितमतिशयेन,तथा च नैव भगवन्तः समन्तभद्रा दिगम्बराः,श्रीमतां च समये श्रीमतां समन्तभद्राणां श्वेताम्बरेषु स्तुतिकारकतया आद्यस्तुतिकारकतया च प्रसिद्धिः, तत एवोभयेषां कृतिद्वयेऽपि समान उल्लेखः, यद्यपि भगवन्तः श्रुतकेवलिदेशीयाः श्रीसिद्धसेनदिवाकरा अपि आद्यस्तुतिसूत्रकाः, उदाहृतं च श्रीहेमचन्द्रैराचार्यैरयोगव्यवच्छेदस्तुतिं चक्राणैः क सिद्धसेनस्तुतयो महार्था इत्यूचानैस्तेषामनुकरणं, तथापि विशेषतः वादिमुख्यतया तेषां प्रख्यातिः, वास्तवं चेदमभिधानं, यतस्तेषां स्तुतिवृन्दे शतशो वादस्थानान्यासूत्रितान्यवलोक्यन्तेऽवलोककैः, श्रीमन्तो मलयगिरयोऽपि अत्रैव १०५ पत्रे वादिमुख्यनाम्नैव सस्मरुस्तान् ।

पूज्यपादानां ग्रन्थाः–पूज्यपादाः श्रीमतामभयदेवसूरिवर्येभ्यः परतोऽभूवन्निति स्थानाङ्गादिसूत्राणां व्याख्याभ्योऽनु राजप्रश्नीयाद्युपाङ्गानां व्यधुर्व्याख्यां, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तेरभूत् भगवत्कृतिभूषिता वृत्तिः, परं नष्टाऽशेषैव सा शेमुषीमतां भाग्यहान्या, स्पष्टं चेदं श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तेः शान्तिचन्द्रीयायामपि वृत्तौ, इमे प्राप्यमाणाः ग्रन्थाः श्रीमतां—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित अस्या वृत्ते: प्रास्ताविक-उपक्रम

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

× १ राजप्रश्नीयवृत्तिः × २ जीवाभिगमवृत्तिः × ३ प्रज्ञापनावृत्तिः × ४ सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिः
* ५ चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः × ६ श्रीनन्दीसूत्रवृत्तिः × ७ श्रीआवश्यकवृत्तिः × ८ श्रीव्यवहारसूत्रवृत्तिः
× ९ षडशीतिवृत्तिः * १० श्रीमलयगिरिव्याकरणं ❀ ११ बृहत्कल्पसूत्रवृत्तिः × १२ कर्मप्रकृतिवृत्तिः
× १३ पञ्चसङ्ग्रहवृत्तिः × १४ धर्मसङ्ग्रहणिवृत्तिः

तदेवं परोलक्षाणां श्लोकग्रन्थानां विधातारः पूज्यपादा इति निश्चितं, तथा श्रीमतां पारगदितागमकर्मग्रन्थव्याकरणादिविविधवाङ्मय-पारीणतामपि दृष्ट्वा मनीषिमतां मस्तकधूननमेव भवति ।

मुद्रणेऽस्या वृत्तेः यद्यपि निर्युक्तिमूलभाष्यभाष्यगाथादीनामकारादिक्रमो विधेयः, परं श्रीनन्द्याद्यागमसप्तकानुक्रमे कृतत्वात्तस्य प्रायः समानोऽत्रैष इति नाहृतास्तत्र, अत एव च क्वचिदधिकन्यूनानां गाथानामङ्कव्यत्ययो नाकार्यत्र, शोधनदोषेणापि गाथाङ्कव्यत्ययादि जातमत्र तदपि मनीषिभिर्मर्षणीयमेव, मुद्रणं चास्याः श्रेष्ठिदेवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धारार्थकद्रव्यव्ययेन तत्संस्थाकार्यवाहकद्वारा विहितमिति स्वल्पमूल्यमहार्घपत्रसुन्दरमुद्रणालयमुद्रणादि स्यादेव ।

निवेदकाः–आनन्दसागराः
धेटी (पादलिप्तपुर) १९९२ माघशुक्ला २

* अपूर्णतासूचकं × मुद्रिततासूचकं ❀ मुद्र्यमानतासूचकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित अस्या वृत्ते: प्रास्ताविक-उपक्रम

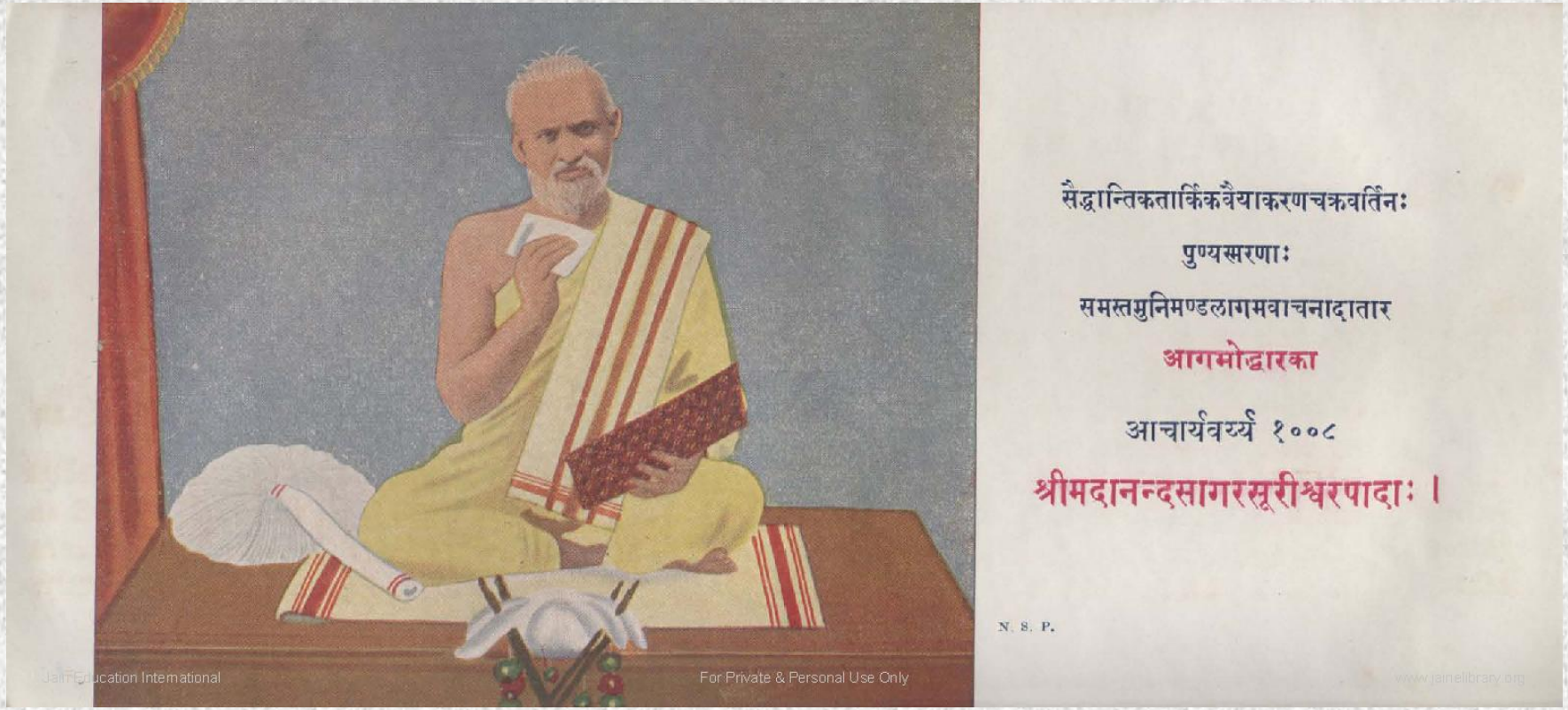

*** आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वराणां मूल प्रतिकृतिः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

॥ श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ चतुर्थ-भाग:

सम्प्रति केष्विति द्वारं व्याचिख्यासुराह—

सव्वगयं सम्मत्तं सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे । देसविरइं पडुच्चा दुण्हवि पडिसेहणं कुज्जा ॥ ८३० ॥

अथ केषु द्रव्येषु पर्यायेषु वा सामायिकमित्याशङ्कायामुक्तं–सर्वगतं सम्यक्त्वं, सर्वद्रव्यपर्यायरुचिलक्षणत्वात्तस्य, तथा श्रुते-श्रुतसामायिके चारित्रे–चारित्रसामायिके न सर्वे पर्याया विषयाः, श्रुतस्याभिलाप्यपर्यायविषयत्वात् द्रव्यस्य च अभिलाप्यानभिलाप्यपर्यायायुक्तत्वात्, चारित्रस्यापि 'पढमंमि सव्वजीवा' इत्यादिना सर्वद्रव्यासर्वपर्यायविषयतायाः प्रागेव प्रतिपादितत्वात्, देशविरतिं प्रतीत्य द्वयोरपि सकलद्रव्यपर्याययोः प्रतिषेधनं कुर्यात्, न सर्वद्रव्यविषयं नापि सर्वपर्याय-विषयं देशविरतिसामायिकमिति भावः, आह–अयं सम्यक्त्वविषयः किंद्वारे प्ररूपित एव ततः किं पुनरभिधान-मिति?, उच्यते, प्राग् विषयविषयिणोरभेदेन किं तदिति सामायिकस्य किंद्वार एव द्रव्यत्वगुणत्वनिरूपितस्य ज्ञेयभावेन विषयाभिधानमित्यदोषः । आह च भाष्यकृत्–नणु सामाइयविसओ किंदारंमिवि परूवितो पुवं । कह न पुणरुत्तदोसो होज्ज इहं? को विसेसो वा? ॥ २७५९ ॥ अत्रोत्तरम्–किं तंति जाइभावेण तत्थ इह नेयभावतोऽभिहियं । इह विसय-विसइभेओ तत्थाभेयोवयारोत्ति ॥ २७६० ॥ (विशे-) केष्विति गतं, सम्प्रति कथमिति द्वारं वक्तव्यं, कथं सामायिक-मवाप्यते इति, तत्र चतुर्विधमपि सामायिकं मनुष्यत्वादिस्थानावाप्तौ सत्यामवाप्यत इति तत्क्रमदुर्लभताख्यापनार्थमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र निर्युक्ति: (८३०) अष्ट शताधिक त्रिंशते: आवश्यक-मलयगिरे: वृत्ते: चतुर्थ एवं अंतिम भाग: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआवश्यकमलय० वृत्तौ उपोद्घाते ॥४५१॥

माणुस्स खित्त जाई कुल रूवारोग्गमाउअं बुद्धी । सवणुग्गह सद्धा संजमो अ लोगम्मि दुलहाइं ॥ ८३१ ॥

मानुष्यं–मनुजत्वं क्षेत्रम्–आर्यक्षेत्रं जातिः–मातृसमुत्था पितृसमुत्थं कुलं, रूपम्–अनूनांगता आरोग्यं–रोगाभावः आयुष्कं–जीवितं बुद्धिः परलोकप्रवणा श्रवणं धर्म्मसम्बद्धं अवग्रहो–धर्म्मश्रवणावधारणं अथवा श्रवणावग्रहः–साधूनामवग्रहः श्रद्धा–रुचिः संयमः–सम्यगनुष्ठानलक्षणः, एतानि स्थानानि लोके दुर्लभानि, एतदवाप्तौ च विशिष्टसामायिकलाभः, अथ चैतानि दुर्लभानि ।

इंदिअलद्धी निव्वत्तणा य पज्जत्ति निरुवहय खेमं । धायाऽऽरोग्गं सद्धा गाहग उवओग अट्ठो य ॥अन्यदीया॥(१९प्र.)

इन्द्रियलब्धिः निर्वर्त्तना इन्द्रियाणामेव पर्याप्तिः–स्वविषयग्रहणसामर्थ्यलक्षणा, 'निरुवहय'त्ति निरुपहतेन्द्रियता क्षेमं विषयस्य ध्रातं–सुभिक्षं आरोग्यं–नीरोगता श्रद्धा–भक्तिः ग्राहकः–कथयिता उपयोगः–तदभिमुखता 'अट्ठो य'इति अर्थः–अर्थित्वं धर्म्मविषये इति, भिन्नकर्तृकेयं किल गाथेत्यपौनरुक्त्यं ॥ तत्र मानुषत्वं यथा दुर्लभं तथा दशभिर्दृष्टान्तैः प्रतिपिपादयिषुराह—

चुल्लग १ पासग २ धन्ने ३ जूए ४ रयणे ५ अ सुमिण ६ चक्के ७ अ ।
चम्म ८ जुगे ९ परमाणू १० दस दिट्ठंता मणुअलंभे ॥ ८३२ ॥

मानुषत्वं सकृत् लब्ध्वा जीवः पुनस्तदेव दुःखेन लभते, अत्र दृष्टान्तः चोल्लको–ब्रह्मदत्तचक्रवर्त्तिमित्रब्राह्मणभोजनं, तथाहि– बंभदत्तस्स एगो कप्पडितो ओलग्गइ, बहूसु आवईसु अवत्थासु य सव्वत्थ सहायो आसि, बंभदत्तेण य पत्तं

केषुद्वारं कथंद्वारे मनुजत्वादि ॥४५१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र एका प्रक्षेपा गाथा वर्तते

*** अथ मनुष्यभवस्य दुर्लभत्वं दर्शने दश दृष्टांताः वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

रज्जं, तस्स य बारससंवच्छरिओ अभिसेओ, सो य कप्पडितो तत्थ अछियावंपि न लहइ, तओ णेण उवाओ चिंतितो–उवाहणाओ घए बंधिऊण धयवाहगेहिं समं पधावितो, रण्णा दिट्ठो, उज्जेणं अवगूहितो, अण्णे भणंति–तेण दारवाले सेवमाणेण वारसमे संवच्छरे राया दिट्ठो, ताहे राया तं दट्ठूण संभंतो, इमो सो वरागो मम सुहदुक्खसहायगो, एत्ताहे करेमि विचिं, ताहे भणइ–किं देमो ?, सो भणइ–देह घरे घरे करचोल्लए जाव सव्वंमि भरहे, जाहे निट्ठियं होज्जा ताहे पुणोऽवि तुज्झ घरे आढवेऊण भुंजामि, राया भणइ–किं ते एएण ?, देसं ते देमि तो सुहं छत्तछायाए हत्थिखंधवरगतो हिंडिहिसि, सो भणइ– किं मम एद्दहेण आहट्टेण ?, ततो से दिण्णतो चोल्लगो, ताहे पढमदिवसे राइणो घरे जिमितो, तेण से जुयलयं दीणारो य दिन्नो, एवं सो परिवाडीए सव्वेसु राउलेसु बत्तीसाए रायवरसहस्सेसु तेसिंपि जे भोइया तप्पभिईसु, तत्थ य नगरे अणेगातो कुलकोडीतो, ततो से नगरस्स कया अंतं काहिइ ?, ताहे गामाण, ततो भरहवासस्स, अवि सो वच्चेज्ज अंतं न य माणुसत्तणातो भट्ठो पुणो माणुसत्तणं लहइ १ ॥

पासगत्ति द्वितीयो दृष्टान्तः, चाणक्कस्स सुवण्णं नत्थि, ताहे चिंतेइ–केण उवाएण विद्धवेज्जा सुवण्णं ?, ततो जंतपासा कया, केई भणंति–वरदिण्णगा, ताहे एगो दक्खपुरिसो सिक्खाविओ, दीणाराणं थालं भरियं, सो भणइ–जइ मम कोइ जिणइ सो थालं गेण्हउ, अह अहं जिणामि तो एगं दीणारं, तस्स इच्छाए जंतं पडइ, ततो न तीरए जिणिउं, जहा सो न जिप्पइ एवं माणुसलंभोऽवि दुल्लहो, अवि नाम सो जिणेज्जा न य माणुसत्तणाओ भट्ठो पुणो माणुसत्तणं लभइ २ ॥

'धन्न'त्ति तृतीयो धान्यदृष्टान्तः, जत्तियाणि भरहखेत्ते धन्नाणि ताणि सव्वाणि पिंडियाणि, तत्थ पत्थो सरिसवाणं छूढो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ताणि सव्वाणि अदुयालियाणि, तत्थेगा जुण्णथेरी सुप्पं गहाय वीणेज्जा, सा किं पुणोऽवि पत्थयं पूरेउं चएज्जा ?, अवि सा देवयापसाएण पूरिज्जा, न य माणुसत्तणातो भट्ठो जीवो पुणो माणुसत्तणं लहइ ३ ॥

'जूए'त्ति द्यूतदृष्टान्तश्चतुर्थः, स एवं–एगो राया, तस्स सभा खंभसयसंनिविट्ठा, तत्थ अत्थाणियं देइ, एक्केक्को य खंभो अट्ठसयंसितो, तस्स रन्नो पुत्तो रज्जकंखी, चिंतेइ–थेरो राया मारेऊण रज्जं गिण्हामि, तं च अमच्चेण नायं, तेण रन्नो सिट्ठं, ततो राया तं पुत्तं सद्दावित्ता भणइ–अम्हं जो न सहइ अणुक्कमं सो जूयं खिलइ, जइ जिणइ रज्जं से दिज्जइ, किह पुण जिणियव्वं ?, तुज्झं एगो आओ, अवसेसा आया अम्हं, जइ तुमं एगेण आएणं सयपयत्तेणं अट्ठसयस्स खंभाणमेक्केक्कं अंसियं अट्ठसए वारा जिणसि तो तुज्झ रज्जं, अवि देवया० विभासा ४ ॥

'रयणे'त्ति पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः, स चैवं–एगो वाणियगो वुड्ढो, रयणाणि से अत्थि, तत्थ य महे महे अण्णे वाणियगा कोडिपडागाओ उब्भेंति, सो न उब्भेति, तस्स पुत्तेहिं थेरे पउत्थे ताणि रयणाणि नाणादेसियवाणियहत्थे विक्कीयाणि, वरं अम्हेवि कोडिपडागा उब्भवेमो, ते य वाणियगा समंतओ पडिगया पारसकूलादीणि, थेरो आगतो, सुयं जहा विक्कीयाणि, ततो ते अंबाडेइ–लहु रयणाणि आणेह, ताहे ते सव्वतो हिंडिउमारद्धा, किं ते सव्वरयणाणि पिंडिज्जा ? अविय देवयापभावेण विभासा ५ ॥

षष्ठः स्वप्नदृष्टान्तः, स चैवं–एगेण कप्पडिएण सुमिणए चंदो गिलिओ, तेण कप्पडियाण कहियं, तेहिं भणियं–संपुण्णचंदमंडलप्पमाणं पूयलियं अज्ज भिक्खापविट्ठो लब्भिहिसि, लद्धो य घरच्छायणियाए, अण्णेणवि दिट्ठो तारिसो चेव सुमिणो, ॥४५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सो ण्हाइऊण पुप्फफलाणि गहाय सुमिणलक्खणपाढगस्स कहेइ, तेण भणियं–राया भविस्ससि, इतो य सत्तमे दिवसे राया तत्थ अपुत्तो मतो, सो य निवण्णो अच्छइ, जा आसो अहिवासिओ आगतो, तेण तं दट्ठूण हेसियं पयक्खिणीकतो य, ततो विलइओ पडे, एवं सो राया जातो, ताहे सो कप्पडितो तं सुणेइ, जहा तेणवि एरिसो सुमिणो दिट्ठो, परं सो आएसफलेण राया जातो, सो चिंतेइ–वच्चामि जत्थ गोरसो तं पिबित्ता सुवामि, जेण पुणोऽवि तं सुमिणं पेच्छामि, अत्थि पुण सो सुविणं पेच्छेज्जा ?, अविय सो देवयापसाएण विभासा ६ ॥

सप्तमश्चक्रदृष्टान्तः, इंदपुरं नगरं, इंददत्तो राया, तस्स इट्ठाणं वराणं देवीणं बावीसं पुत्ता, अण्णे भणंति–एक्काए देवीए, ते सव्वे पुत्ता राइणो पाणसमा, अन्ना एक्का अमच्चधूया, सा परं परिणेंतेण दिट्ठिल्लिगा, सा अण्णया ण्हाया समाणी अच्छइ, रण्णा दिट्ठा, पुच्छिया य का एसत्ति ?, पासट्ठिएहिं कहियं–देव ! तुज्झं देवी एसा, ताहे ताए समं एक्कं रत्तिं वसितो, सा य रिउण्हाता, तीसे गब्भो लग्गो, सा य अमच्चेण पुव्वामेव भणिइल्लिया–जया ते गब्भो लग्गइ तया मम साहिज्जासि, ताए तस्स कहियं दिवसो मुहुत्तो जं च राएण उल्लवियं, तेण तं सव्वं पत्तए लिहियं, सो सारवेइ, नवसु मासेसु वोलीणेसु दारतो जातो, तस्स य चत्तारि दासचेडाणि तद्दिवसजायाणि, तंजहा–अग्गियओ पवयतो बहुलियो सागरो य, अमच्चेण सो कलायरियस्स उवणीतो, तेण लेहाइयातो गणियप्पहाणातो कलातो गहियातो, जाहे ते चेडे गाहेंति आयरिया ताहे ताणि कोहेंति विउल्लंति य पुव्वपरिचएण ताणि रोडेंति, ताणि न चेव तेण गणियाणि, न गहियातो पडिपुन्नातो कलातो, ते अन्ने बावीसं कुमारा गाहिज्जंता तं आयरियं अवयणाणि य भणंति, जइ सो आयरिओ पिट्ठेइ ताहे गंतूण माऊणं साहेंति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ताहे ताओ तं आयरियं खिंसंति–कीस आहणासि ?, किं सुलभाणि पुत्तजम्माणि ?, ततो ते न सिक्खिया । इतो य महुराए पव्वयओ राया, तस्स सुया निहुई नाम दारिया, अण्णे भणंति–जियसत्तू राया, तस्स सुया सिद्धिया नाम, सा रण्णो अलंकिया माऊए उवणीया, ताहे राया भणइ–जो तुह रोयइ सो तुह भत्तारो, ताए नायं–जो सूरो वीरो विक्कंतो सो मम भत्ता भवउ, सो पुण रज्जं देज्जा, ताहे सा पभूयं बलवाहणं गहाय गया इंदपुरं नगरं, तत्थ किल इंददत्तस्स रण्णो बहवे पुत्ता इति, इंददत्तो तुट्ठो चिंतेइ–नूणमहं अण्णेहिं राईहिंतो लद्धो आगमितो, ततो णेण ऊसियपडागं नगरं कारियं, सेसा बहवे अप्पाणुगा रायाणो दूयं पेसिऊण आवाहिया, तहा एगंमि अक्खे अट्ठ चक्काणि कारवियाणि, तेसिं पुरतो ठिया धिउल्लिया, सा अच्छिमि विंधेयव्वा, ततो इंददत्तो राया सन्नद्धो सह पुत्तेहिं निग्गतो, ताहे सा कण्णा सव्वालंकारविभूसिया एगंमि पासे अच्छइ, सो रंगो ते रायाणो ते य भडभोइया जहा दोवइए सयंवरमंडवे तहा भाणियव्वा, तत्थ रण्णो सिरिमालीनाम कुमारो, सो भणिओ–पुत्त ! एसा दारिया रज्जं च घेत्तव्वं एयं राहावेहं विंधेऊण, तो विंध एयं पुत्तलियंति, एवं भणितो सो उक्करिसिओ–नूणमहं सव्वेहिंतो लट्ठओ, सो य वराओ अकयकरणो तस्स समूहस्स मज्झेणं धणुं चेव गिण्हिउं न तरइ, किहवि अणेण गहिअं, तो जतो वच्चइ ततो वच्चउत्ति मुक्को सरो, सो चक्केसु अप्फिडिऊण भग्गो, एवं कस्सइ एगं अरगं वोलीणो, कस्सइ दुण्णि, कस्सइ तिण्णि, अन्नेसिं बाहिरं चेव निग्गयं, ताहे राया अधितिं चेव पगतो–अहो अहं एएहिं पुत्तेहिं धरिसिओत्ति, ततो अमच्चेण भणियं–देव! कीस अद्धितिं करेसि ?, राया भणइ–एएहिं अप्पहाणो कओ, अमच्चो भणइ–अत्थि अण्णो तुब्भ पुत्तो मम धूयाए तणओ सुरिंददत्तो नामेणं सो कयकरणो समत्थो विंधिउं, ताहे राया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पुच्छइ–कतो मम पुत्तो?, ताहे से अभिण्णाणाणि सिट्ठाणि, ततो राया तुट्ठो भणइ–कहिं सो ?, अमच्चेण दरिसिओ सुतो, राइणा उवबूहिऊण भणिओ–सेयं तव एए अट्ठ चक्के भेत्तूण पुत्तलियं अच्छिमि विंधिउं रज्जसुहं निब्बुइदारियं च संपावित्तए, ततो कुमारो जहा आणवेहत्ति भणिऊण रण्णो उवज्झायाणं च पणामं करेत्ता ठाणं ठाऊण धणुं गेण्हइ, लक्खाभिमुहं सरं सज्जेइ, ताणि य दासरूवाणि चउद्दिसिं ठियाणि रोडंति, अण्णे य दो पुरिसा राइणा भणिया, ततो पासं गहियखग्गा चिट्ठंति, जइ कहवि लक्खस्स चुक्किहिसि तो सीसं छिंदियव्वंति, सो य से उवज्झाओ पासे ठिओ भयं देइ–मारिज्जासि जइ चुक्किहिसि, ते बावीसंपि कुमारा एस विंधिस्सइत्ति सविसेसमुल्लंठाणि भणंता विग्घाणि करेंति, ततो तेण चत्तारि दासरूवाणि ते य दो पुरिसे ते य बावीसं कुमारे अगणंतेणं ताणं रहचक्कन्तराण समंताणमंतरं जाणिऊण तम्मि अरके निरुद्धाए दिट्ठीए अन्नत्थ मणं अकुणमाणेण सा धिउल्लिया वामे अच्छिमि विद्धा, ततो लोगेण उक्किट्ठसीहनायकलयलमिस्सो साहुकारो कतो, जहा तं चक्कं दुक्खं भेत्तुं एवं माणुसत्तणंपि० ७ ॥

अष्टमश्चर्मदृष्टांतः, स चैवं–जहा एगो दहो जोयणसहस्सविच्छिन्नो चम्मावणद्धो, एगं से मज्झे छिद्दं जत्थ कच्छवगीवा मायइ, तत्थ एगो कच्छवो सो वाससए२ गीवं पसारेइ, तेण कहमवि गीवा पसारिया, जाव तेण छिद्देण निग्गयो, तेण कोमुईए जोइसचक्कं दिट्ठं पुप्फफलाणि य, सो गतो सयणिज्जाणं दाएमित्ति, ततो सयणवग्गं आणेत्ता सव्वतो पलोएइ, ण उ पेच्छइ, अविय सो देवयाए पसाएण पेच्छेज्जा न य माणुसत्तणाओ भट्ठो पुणो माणुसत्तणं लहइ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

नवमो युगदृष्टान्तः, तत्प्रतिपादनार्थमाह—

पुव्वंते होज्ज जुगं अवरंते तस्स होज्ज समिला उ । जुगछिद्दंमि पवेसो इय संसइओ मणुयलंभो ॥ ८३३ ॥

स्वयम्भूरमणाख्यस्य जलनिधेः पूर्वान्ते युगं भवेत्, अपरान्ते तस्य युगस्य भवेत् समिला, एवं व्यवस्थिते सति यथा युगच्छिद्रे समिलायाः प्रवेशः संशयित इति—एवं संशयितो मनुजलाभः—मनुष्यत्वलाभः, दुर्लभ इत्यर्थः ।

जह समिला पब्भट्ठा सागरसलिले अणोरपारंमि । पविसिज्जा जुगछिड्डं कहवि भमंती भमंतंमि ॥८३४॥

यथा सागरसलिले स्वयम्भूरमणसमुद्रे इमीसे(मा सा)अणोरपारंमित्ति देशीवचनं प्रचुरार्थे उपचारत आराद्भागपरभागरहिते युगात् समिला प्रभृष्टा भ्रमन्ती कथमपि भ्रमति युगे युगच्छिद्रे प्रविशेत् एवं मानुषत्वात् प्रभृष्टः कथमपि मानुषत्वं लभते ।

सा चंडवायवीईपणोल्लिया अवि लभेज्ज जुगछिड्डं । न य माणुसाओ भट्ठो जीवो पडिमाणुसं लभइ ॥८३५॥

सा समिला चण्डवातवीचिप्रेरिता सती अपिः संभावने लभते युगच्छिद्रं, न च मानुष्यात्—मानुषत्वात् परिभृष्टो जीवः प्रतिमानुष्यं—भूयो मनुजत्वं लभते इति ९ ॥

दशमः परमाणुदृष्टान्तः—जहा एगो खंभो महप्पमाणो, सो देवेण चुण्णिऊण अविभागिमाणि खंडाणि कतो, ततो नलियाए पक्खित्तो, पच्छा मंदरचूलाए ठिएण फूमिओ, ताणि अविभागिमाणि खंडाणि नट्ठाणि, अत्थि पुण कोई जो तेहिं चेव पुग्गलेहिं तमेव खंभं निव्वत्तेज्जा ?, एस अभावो, एवं माणुसत्तणाओ भट्ठो जीवो नो पुण पाएण माणुसत्तणं लहइ ॥ अहवा इमो परमाणुदिट्ठंतो—सभा अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा, सा कालंतरेण झामिया पडिया, अत्थि पुण कोई जो तेहिं चेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पुग्गलेहिं करेइ ?, नो इणमट्ठे समट्ठे, एवं माणुसत्तणं दुल्लहं,१०॥'दस दिट्ठंता मणुयलंभे'त्ति एते दश दृष्टान्ता मानुष्यलाभे॥

इय दुल्लहलंभं माणुसत्तणं पाविऊण जो जीवो । न कुणइ पारत्तहियं सो सोयइ संकमणकाले ॥ ८३६ ॥

एवं–उक्तप्रकारेण मानुषत्वं दुर्लभलाभं प्राप्य यो जीवः परत्रहितं धर्मं न करोति, पारत्तत्ति दीर्घत्वमलाक्षणिकं, स संक्रमणकाले–मरणकाले शोचति–शोकं करोति ॥ क इवेत्याह–

जह वारिमज्झ छूढोव्व गयवरो मच्छउव्व गलगहिओ । वग्गुरपडिओ य मओ संवट्टइओ जहा पक्खी ॥८३७॥

सो सोयइ मच्चुजरासमुच्छुओ तुरियनिद्दपक्खित्तो । तायारमविंदंतो कम्मभरपणोल्हितो जीवो ॥ ८३८ ॥

यथेत्युपप्रदर्शने, यथा शोचति तथा दर्श्यत इति भावः, वारिमध्यक्षिप्तो गजवरो, मत्स्य इव वा गलगृहीतः, यदिवा मृग इव वा वागुरापतितः, संवर्त्त–जालं तमितः–प्राप्तो यथा वा पक्षी, 'सो सोयइ' इत्यादि, सोऽकृतपुण्यः मृत्युजरासमवस्तृतः—मृत्युजराक्रान्तः त्वरितनिद्राप्रक्षिप्तः–मरणनिद्रया अभिभूतः त्रातारम् अविंदानः–अलभमानः कर्मभरप्रणोदितः–कर्मभरप्रेरितो जीवः शोचति, ही न कृतं किमपि जन्मान्तरसुखनिबन्धनं सुकृतमिति शोकं करोति ॥ स चेत्थं मृतः सन्

काऊणमणेगाइं जम्ममरणपरियट्टणसयाइं । दुक्खेण माणुसत्तं जइ लहइ जहिच्छियं जीवो ॥ ८३९ ॥

कृत्वा अनेकानि जन्ममरणपरिवर्त्तनशतानि दुःखेन–महता कष्टेन यदि कथमपि लभते जीवो मानुषत्वं, कुशलपक्षकारी पुनः सुखेन मृत्वा सुखेनैव लभते मानुषत्वम् ॥

तं तह दुल्लभलंभं विज्जुलयाचंचलं च मणुयत्तं । लद्धूण जो पमायइ सो काउरिसो न सप्पुरिसो ॥ ८४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ततु–मानुषत्वं तथा–पूर्वोक्तप्रकारेण दुर्लभलाभं–दुष्प्रापलाभं विद्युल्लतावच्चञ्चलं लब्ध्वा यः प्रमाद्यति–प्रमादं करोति स कापुरुषो, न सत्पुरुषः, इत्यलं प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुमः। तत्र यथा दशभिर्दृष्टान्तैर्मानुषत्वं दुर्लभं तथा आर्यक्षेत्रादीन्यपि स्थानानि, ततः सामायिकमपि दुष्प्रापम्, अथवा मानुषत्वे लब्धेऽप्येतैः कारणैः दुर्लभं सामायिकमिति प्रतिपादयन्नाह—

आलस्स मोहऽवण्णा थंभा कोहा पमाय किविणत्ता । भय सोगा अन्नाणा वक्खेव कुतूहला रमणा ॥८४१॥

एएहिं कारणेहिं लद्धूण सुदुल्लहंपि माणुस्सं । न लहइ सुइं हियकरिं संसारुत्तारिणिं जीवो ॥ ८४२ ॥

आलस्यात् न साधुसकाशं गच्छति (शृणोति) वा १ तथा मोहात्–गृहकर्तव्यताव्याकुलत्वात् २, तथा अवज्ञातः–किमेते जानन्तीत्येवंरूपायाः ३ स्तम्भात्–जात्याद्यभिमानात्, उत्तमजातीयोऽहं कथमेतेषां भिक्षाचराणां हीनजातीयानां पार्श्वे गच्छामीत्यादिलक्षणात् ४, क्रोधात्, तथा च कोऽपि साधुदर्शनादेव कुप्यति ५, तथा प्रमादात्–मद्यादिप्रसक्तिरूपात् ६, कृपणत्वात्–नूनं गतैस्तेभ्यः किमपि दातव्यं भविष्यतीत्येवंरूपात् ७ तथा भयात्, साधवो हि नरकादिभयं गतेभ्यो वर्णयन्तीति ८ शोकाद्वा इष्टवियोगजात् ९, अज्ञानात् कुदृष्टिजनितात् कुबोधात् १० व्याक्षेपात्–अन्यान्यबहुप्रयोजनकरणतः आत्मनो व्याकुलीभावसम्पादनात् ११, तथा कुतूहलात्–नटादिविषयात् १२ तथा रमणात्–नानाविधकुक्कुटयोधनादिक्रीडाप्रसक्तिरूपात् १३, एभिः कारणैरालस्यादिभिः सुदुर्लभमपि मानुष्यं लब्ध्वा न लभते हितकरीं संसारोत्तारिणीं श्रुतिमिति ॥ व्रतादिसामग्रीयुक्तस्तु कर्म्मरिपुं विजित्याविकलचारित्रसामायिकलक्ष्मीमवाप्नोति, ज्ञानादिगुणयुक्तयोध इव जयलक्ष्मीं, तथा चाह—

जाणावरणपहरणे जुद्धे कुसलत्तणं सनीई य । दुक्खत्तं ववसाओ सरीरमारोग्गया चेव ॥ ८४३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** मनुष्यभव प्राप्तौऽपि आलस्य-आदि कारणात् धर्म-श्रवणस्य दुर्लभत्वं

यानं हस्त्यादि, आवरणं–कवचादि प्रहरणं–खड्गादि यानावरणप्रहरणानि, तथा युद्धे कुशलत्वं–सम्यक् तज्ज्ञता नीतिश्च–निर्गमप्रवेशरूपा दक्षत्वम्–आशुकारिता व्यवसायः–शौर्यं शरीरमविकलम् अरोगता–व्याधिवियुक्तता, एतावद्गुणसामग्री-समन्वित एव योधो जयश्रियमाप्नोति, एष दृष्टान्तः, दार्ष्टान्तिकयोजना त्वियम्–जीवो जोहो जाणं वयाणि आवरणमुत्तमा खंती । झाणं पहरणमिट्ठं गीयत्थत्तं च कोसलं ॥ १ ॥ दव्वादिजहोवायाणुरूवपडिवत्तिवत्तिया नीई । दक्खत्तं किरियाणं, जं करणमहीण कालंमि ॥ २ ॥ करणं सहणं च तवोवसग्गदुग्गावतीए ववसातो । एएहिं सुणिरोगो कम्मरिउं जिणइ सव्वेहिं ॥ ३ ॥ कर्म्मरिपुविजयपक्षे जीवो योधो, महाव्रतानि–प्राणातिपातविरमणादीनि यानम्, उत्तमा क्षान्तिरावरणं, ध्यानं–धर्म्म-ध्यानमिष्टं प्रहरणं, कौशलं सम्यग्गीतार्थता, द्रव्यादिषु–द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु यथोपायं–श्रुतोक्तोपायानतिक्रमेण याऽनुरूप-प्रतिपत्तिर्वर्त्तिता, यथा साधूनामेतद् द्रव्यादि एतेनोपायेन देशकालाद्युचितेन कर्त्तव्यं, नैतेनेति, सा नीतिः, तथा क्रियाणां-प्रत्युपेक्षणवैयावृत्त्यादीनां यत् काले–स्वस्वप्रस्तावे अहीनं–परिपूर्णं करणं तद् दक्षत्वं, तथा करणं तपसो द्वादशप्रभेदस्य उपलक्षणमेतत् संयमस्य च, सहनं च उपसर्गेषु समापतत्सु, यदिवा दुर्गापदि समागतायां, एष व्यवसायः, एभिर्यानादिभिः सहितो जीवो योधः सुनीरोगः कर्मरिपुं जयति, विजित्य च समग्रसामायिकश्रियमासादयतीति गाथार्थः ॥ अथवा अनेन प्रकारेणासाद्यते इति—

दिट्ठे सुयमणुभूए कम्माण खए कए उवसमे य । मणवयणकायजोगे पसत्थे लब्भए बोही ॥ ८४४ ॥

दृष्टे भगवत्प्रतिमादौ सामायिकमवाप्यते, यथा स्वयंभूरमणसमुद्रमत्स्येन प्रतिमासंस्थितान् मत्स्यान् प्रतिमासंस्थितानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

पद्मानि वा दृष्ट्वा सामायिकमवाप्यते, स्वयंभूरमणे हि मत्स्यानां पद्मानां च सर्वाण्यपि संस्थानानि सम्भवन्ति मुक्त्वैकं बल-यसंस्थानं, श्रुते चावाप्यते सामायिकं, यथाऽऽनन्दकामदेवाभ्यामवाप्तम्, अत्र कथानकम्–वाणियगामं नगरं, जियसत्तू राया, तत्थ आणंदे नाम गाहावती धणकणगसमिद्धे, तस्स सिवानंदा नाम भारिया, तस्स णं वाणियगगामस्स नयरस्स अदू-रसामंते उत्तरपुरच्छिमदिसीभागे कालए नाम संनिवेसे, तत्थ आणंदस्स बहुओ मित्तनातिवग्गो परिवसति, अन्नया समणे भयवं महावीरे वाणियग्गामे नयरे दूइपलासे चेइए समोसढे, जियसत्तुप्पमुहा परिसा निग्गया भयवंतं पज्जुवासइ, तए णं से आणंदे बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं निसम्म ण्हाए परमसुइभूए पायविहारेण गंतूण भयवंतं तिपयाहिणीकरेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ २ पज्जुवासइ, ततो णं सामी तीसे महइमहालियाए परिसाए आणंदस्स य धम्मं परिकहेइ, परिसा निग्गया, आणंदे धम्मं सोच्चा हट्ठतुट्ठे सामिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं०, किंतु जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए राईसरादओ सव्वं रज्जहिरण्णाइयं परिचज्ज पव्वयंति, नो खलु (तहा) अहं संचाएमि, अहं णं दुवा-लसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि, भयवया भणियं–अहासुहं देवाणुप्पिया!, मा पडिबंधं करेह, ततो सामी तस्स साव-गधम्मं तहाविहं उवदंसेइ जहा उवासगदसासु, ततो सो सावगधम्मं पडिवज्जइ, इच्छापरिणामे चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्तातो चत्तारि हिरण्णकोडीतो वुड्ढिपउत्तातो चत्तारि हिरण्णकोडीतो सेसववहारपउत्तातो वज्जिऊण सेसं हिरण्ण-विहीं चत्तारि नियत्तणसतियाइं हलसयाइं मोत्तूण सेसाणि हलाणि चत्तारि दाससयाइं चत्तारि दासीसयाणि चत्तारि दस-गोसहस्सपमाणाइं पवराइं गोकुलाइं चत्तारि भंडीसयाइं दिसाजत्तियाइं चत्तारि भंडीसयाइं संवहणियाइं चत्तारि पवहण-

॥४५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** धर्म-श्रवणात् सामायिकस्य लाभे आनंद गाथापते: दृष्टांत:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

सयाइं वज्जिऊण सेसदासदासीगोकुलभंडीपवहणाणि जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, एवं तस्स सावगधम्मेण अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दसवासाइं अतिक्कंताइं, पच्छा एक्कारसउवासगपडिमातो फासेइ, इक्कारसमं पडिमं ठियस्स ओहिनाणमुप्पण्णं, तेण पुव्वदक्खिणपच्छिमासु दिसासु पंच पंच जोयणसयाणि खेत्ततो पासइ, उत्तरेण चुल्लहिमवंतं, उड्ढं जाव सोहम्मो कप्पो अहे जाव लोलुयच्चयं नरगं चुलसीवाससहस्सठिइगं जाणइ पासति, एवं से आणंदे समणोवासगे उत्तमेहिं अणुव्वयसिक्खावएहिं अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाणि समणोवासगपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालं किच्चा सोहम्मावतंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेण अरुणे विमाणे देवत्ताए उववण्णे चउपलिओवमट्ठिईए, ततो चुए महाविदेहे सिज्झिहिइ ॥

इदानीं कामदेवस्य कथानकम्—चंपा नयरी, पुण्णभद्दे चेइए, जियसत्तू राया, कामदेवे गाहावई, तस्स भद्दा भारिया, अन्नया पुणभद्दे चेइए सामी समोसढो, एवं जहा आणंदे तेणेव कमेण सावगधम्मं पडिवज्जइ, नवरं सो छ हिरण्णकोडीतो वड्ढिपउत्तातो छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ छ हिरण्णकोडीतो सेसववहारपउत्तातो छ हलसयाइं नियत्तणसयाइं छ दाससयाइं छ दासीसयाइं छ दसगोसहस्सपमाणाइं पवराइं गोकुलाइं छ भंडीसयाइं दिसाजत्तियाइं छ भंडीसयाइं संवहणियाइं छप्पवहणसयाइं वज्जिऊण सेसाइं हिरण्णहलदासदासीवग्गगोकुलभंडीपवहणाइं जावज्जीवाए पच्चक्खाति. तहेव बारसवरिसाणंतरं एक्कारस उवासगपडिमातो फासेइ, एक्कारसमं पडिमं पडिवन्नस्स एगेण देवेण पिसायहत्थिपण्णगरूवेहिं बहू उवसग्गा कया, ते सम्मं तेण अहियासिया, सामी समणे आमंतित्ता एवं वयासी—जइ ताव अज्जो ! काम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र कामदेव श्रावकस्य कथानकं प्रस्तूयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

देवेणं समणोवासगेण उवसग्गा समं सहिया ता अज्जो ! समणेणं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेणं० समणीए वा दढं अहियासेयव्वा. तए णं ते समणा निग्गंथा तं उवदेसं सम्मं विणएणं पडिसुणेंति, कामदेवोऽवि सामिवंदओ आगतो संतो सामिणा उवबूहितो–धण्णे सि णं तुमं कामदेवा ! जस्स तव निग्गंथे पावयणे इमा एयारूवा पडिवत्ती, तए णं से कामदेवे हट्ठतुट्ठे वंदित्ता नमंसित्ता पडिगते, एवं जहा आणंदे तहेव जाव सिज्झिहिइ, नवरं अरुणाभे विमाणे इति वक्तव्यं, शेषं तथैव ॥ तथा अनुभूते क्रियाकलापे सत्यवाप्यते, यथा–वल्कलचीरिणा पितुरुपकरणं प्रत्युपेक्षमाणेन, अत्र कथानकम्–

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपाए नयरीए सुहम्मसामी गणहरो समोसट्ठो, कोणितो राया वंदिउं आगतो, कयप्पणामो जंबुणामरूवदंसणविम्हितो गणहरं पुच्छति–भयवं ! इमीसे महतीए परिसाए एस साहू धयसित्तपावगोव्व दित्तो मणोहर-सरीरो य किं मण्णे एएण सीलं सेवियं तवो वा चिन्नो दाणं वा दिन्नं जतो एरिसी सरीरे तेयसंपया ? इति, ततो भयवया भणियं–सुणाहि रायं ! जहा तव पिउणा सेणिएण रण्णा पुच्छिएण भगवया महावीरेण कहियं–तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए सामी समोसरितो, सेणिओ राया तित्थयरवंदणासमुस्सुतो निज्जाइ, तस्स अग्गाणीए दुवे पुरिसा कुडुंबसंबद्धकहं कहेमाणा पस्संति एगं साहुं एगचलणपरिट्ठियं समूसवियबाहुजुयलं आयावेन्तं, तत्थेक्केण भणियं–अहो ! एस महप्पा रिसी सूराभिमुहे तप्पइ, एयस्स सग्गो मोक्खो य हत्थगतोत्ति, बिइएण पच्चभिन्नातो, ततो भण-ति-किं ! न याणसि ! एस राया पसन्नचंदो, कतो एयस्स धम्मो ?, पुत्तोऽणेण बालो रज्जे ठवितो, सो मंतीहिं रज्जातो मोइज्जइ सोऽणेण विणासितो, अंतेउरंपि न नज्जइ किं पाविहिइ ?, तं च से वयणं झाणवाघाइयं करेमाणं सुइपहमुव-

॥ ४५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र वल्कलचिरे: विस्तृत कथानकं प्रस्तूयते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

गयं, ततो सो चिंतिउं पवत्तो–अहो ! ते अणज्जा अमच्चा निच्चं मया संमाणिया पुत्तस्स मे विप्पडिवन्ना, जइ अहं होंतो तो एवं ते चिट्ठंते सुसासिए करेंतो, एवं से संकप्पयंतस्स तं कारणं वट्टमाणमिव जायं, ततो तेहिं समं जुद्धं मणसा चेव काउमारद्धो, पत्तो य एत्थंतरे तं पएसं सेणिओ राया, तेण सो वंदिओ विणएणं, पेच्छइ णं झाणनिच्चलच्छं, अहो ! अच्छरियं एरिसं तवस्स सामत्थं रायरिसिणो पसन्नचंदस्स, एवं चिंतयंतो पत्तो तित्थयरसमीवं, वंदिऊण विणएण पुच्छइ–भयवं ! पसन्नचंदो अणगारो जंमि समए मया वंदितो जइ तंमि समए कालं करेज्जा का से गई भवइ ?, भगवया भणियं–सत्तमा पुढवी, ततो चिंतेइ–साहूणं कहं नरगगमणं ?, पुणो पुच्छइ– भयवं ! पसन्नचंदो जइ इयाणिं कालं करेइ तो कं गतिं वच्चेज्जा ?, भयवया भणियं–सव्वट्ठसिद्धं महाविमाणं, ततो भणइ–कहमिमं दुविहं वागरणं ?, नरगदेवलोगेसु तवस्सिणो (गमणे)त्ति, भगवया भणियं–झाणविसेसेण तंपि य, इमंमि समए एरिसी तस्स झाणसंपया होत्था जेण असायसायकम्मादाणमिति, सो भणइ–कहं ?, भगवया भणियं–तव अग्गाणीयपुरिसमुहनिग्गयं पुत्तपरिभववयणं सोऊण उज्झियपसत्थज्झाणो तुमे वंदिज्जमाणो मणसा भिच्चपराणीएण समं जुज्झइ, ततो सो तंमि समए अहरगतिजोग्गो आसि, तुमंमि य अवगते जायकरण (खीणजाणपहरण) सत्ती सीसावरणेण पहरामि परंति लोइए सीसे हत्थं पक्खिवंतो पडिबुद्धो–अहो ! अकज्जं अहो अकज्जं, रज्जं पयहिऊण परत्थे जइजणविरुद्धं मग्गमवतिन्नोत्ति चिंतिऊण निंदणगरिहणं करेंतो ममं पणमिऊण तत्थ गतो चेव आलोइयपडिक्कंतो पसत्थज्झाणो संवुत्तो, ततो णेण पसत्थज्झाणेण संपयं तं सव्वं कम्ममसुभं खवियं पुण्णमज्जियं, तेण कालविभागेण दुविहाए गतीए निद्देसो कओ, ततो कोणितो पुच्छइ–कहं भयवं ! बालं कुमारं ठवेऊण पसन्नचंदो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

राया पव्वइओ ? एयं सोउमिच्छामि, ततो भणइ सुहम्मसामी–पोयणपुरे नयरे सोमचंदो राया, तस्स धारिणी देवी, सा कयाइ तस्स रण्णो ओलोयणगयस्स केसे रएति, पलियं दट्ठूण भणति–सामी ! दूतो आगतोत्ति, रण्णा दिट्ठी पसारिया, न य पस्सइ अपुव्वं जणं, ततो भणइ–देवि ! ते दिव्वं चक्खू, तीए पलियं दंसियं, धम्मदूतो एसत्ति, तं च दट्ठूण दुम्माणसितो राया, तं नाऊण देवी भणइ–लज्जह बुद्धभावेण ?, निवारिज्जिहि जणो पडहदाणेण, ततो भणइ–देवि ! न एवं, बालो कुमारो असमत्थो पयापालणे इति मे मण्णु जायं, पुव्वपुरिसाणुचिण्णेण मग्गेण न गतोऽहंति विचारो, पसन्नचंदं कुमारं तुमं सारक्खमाणी अच्छतु, देवी नेच्छइ, ततो निच्छियागमणे पुत्तस्स रज्जं दाऊण धाइदेविसहितो दिसापोक्खियतावसत्ताए दिक्खं पवन्नो, चिरसुन्ने आसमपए ठितो, देवीए पुव्वाहुत्तो गब्भो परिवड्ढइ, पसन्नचंदस्स चारपुरिसेहिं निवेदितो, पुन्नसमए पसूया कुमारं, सो वक्कलेसु ठवितोत्ति वक्कलचीरीति नामेण पसिद्धिं गतो, देवी विसूइयारोगेण मया, धाईए वणमहिसीदुद्धेण कुमारो वड्ढाविज्जइ, थोवेण कालेण सावि धाई कालगया, रिसी कढिणेण वहइ वक्कलचीरिं, एवं सो परिवड्ढइ, पसन्नचंदो राया तस्स पउत्तिं निच्चमेव चारपुरिसेहिंतो पुच्छइ, परिवड्ढितो चित्तकरेहिं लिहिऊण दंसितो, ततो पसन्नचंदेण राइणा सिणेहेण गणियादारिया रिसिरूवधारिणीतो पेसियातो, खंडमयविविहफलेहिं वयणेहिं सरीरफासेण य लोभेहत्ति, ततो गयातो, ततो णं तातो रिसिं पच्छन्नं फलेहिं वयणेहिं सुकुमालपीणुन्नयथणसंपीलणेहि य लोभंति, ततो सो लुद्धो गमणे कयसमवायो (संगारो) जाव अतिगतो तावसभंडं संठवेउं ताव रुक्खारूढेहिं चारपुरिसेहिं तासिं संना दिण्णा–रिसी आगतोत्ति, तातो दुयमवक्कंतातो, सो तासिं वीहिमणुसज्जमाणो तातो अपस्समाणो अन्नतो गतो, अडवीए परिभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मंतो रहगयं पुरिसं दट्ठूण–ताय ! अभिवादयामित्ति भणइ, रहिणा पुच्छितो–कुमार ! कत्थ गंतव्वं ?, सो भणइ–पोयणं नाम आसमपयं तत्थ, रहियपुरिसस्स कत्थ गंतव्वं ?, ततो भणइ–अहंपि तत्थ वच्चामि, तेण समं वच्चमाणो रहिणो भारियं तायेति आलवइ, तीए भणियं–को इमो उवयारो ?, रहिणा भणियं–सुंदरि ! इत्थिविरहिते आसमपए पवड्ढितो, न याणइ विसेसं, न से कुप्पियव्वंति, तुरगे य भणइ–किं इमे मिगे तात ! वाहिज्जंति ?, रहिणा भणिओ–कुमार ! एए एयंमि कज्जे उवउज्जंति, न एत्थ दोसो, तेणवि से दिन्ना मोयगा, सो भणइ–पोयणासमवासीहिं मे कुमारेहिं एयारिसाणि चेव फलाणि दत्तपुव्वाणि, वच्चंताण य से एक्केण चोरेण सह जुद्धं जायं, रहिणा गाढप्पहारो कओ, ततो सो सिक्खागुणपरितोसितो भणइ–सूर ! मे अत्थि विउलं धणं तं मे गिण्हसुत्ति, तेहिं तिहिवि जणेहिं रहो भरितो, कमेण पत्ता पोयणं, मोल्लं समप्पिऊण वक्कलचीरी विसज्जितो, उदयं मग्गसुत्ति, सो भमंतो गणियाघरे पविट्ठो, गणियं भणइ–ताय ! अभिवादयामि, देहि इमेण मोल्लेण उदगंति, गणियाए भणितो–दिज्जइ निवेसत्ति, तीए कासवतो सद्दावितो, सो नेच्छइ नहपरिकम्मं, अवणीयाणि वक्कलाणि, ण्हाविउमाढत्तो, सो भणइ–मा मे रिसिवेसं अवणेह, ततो ताहिं भन्नइ–जे उदगत्थी इहमागच्छंति तेसिं एरिसो उवयारो कीरइ, ततो ण्हाविओ, पवराइं वत्थाइं परिहाविओ, विभूसिओ आभरणाईहिं, गणियादारियाए पाणिं गाहितो, ततो ताओ गणियाओ बहूवरं उवगायमाणीतो चिट्ठंति ! इतो य जो कुमारविलोभणनिमित्तं रिसिवेसो पेसितो जणो सो आगतो, तेण रण्णो कहियं–कुमारो अडविं अतिगतो, अम्हे रिसिस्स भएण न तिण्णा सद्दावेउं, ततो राया विसण्णचित्तो भणइ–अहो अकज्जं, न य पिउसमीवे जातो नय इहं, न नज्जइ किं पत्तो होहिइत्ति चिंतापरो अच्छइ, सुणइ य मुइंगसद्दं, तं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सुइपहदूमणं जायं, भणइ–मए दुक्खिते को मन्ने सुहितो जो एवं गंधव्वेण रमइत्ति ?, एयं गणियाए हिएण जणेण कहियं, सा आगया, पायवडिया रायं पसन्नचंदं विन्नवेइ–देव ! निमित्तसंदेसो मे जातो जो तावसरूवो तरुणो अमुगदिवसे अमुगवेलाए गिहं आगच्छेज्जा तस्स तस्समयमेव दारियं देज्जासि, सो उत्तमपुरिसो, तं संसिया विउलसोक्खभागिणी होहिति, सो य जहा भणिओ निमित्तिणा अज्ज मे गिहमागतो, तं च संदेसं पमाणं करेंतीए दत्ता से मया दारिया, तन्निमित्तं ऊसवो, न याणं पुण कुमारं पणट्ठं, एत्थ मे अवराहं मरिसेहत्ति, रण्णा संदिट्ठा मणुस्सा, जेहिं आरामे कुमारो दिट्ठपुव्वो तेहिं गएहिं पच्चभिन्नातो, निवेदितं रण्णो पियं, ततो राया सयमेव गणियाघरं गतो, दिट्ठो कुमारो चंदोव्व सोमलेसो, ततो परमपीइमुव्वहंतेण वहुसहितो सगिहमाणीतो, सरिसकुलरूवजोव्वणगुणाण य रायकण्णाण पाणिं गाहितो, कयरज्जसंविभागो य जहासुहमभिरमइ, रहिगो य चोरदत्तं दव्वं विकिणंतो रायपुरिसेहिं चोरोत्ति गहितो, वक्कलचीरिणा मोइतो पसन्नचंदविदितं, सोमचंदोऽवि रायरिसी आसमे कुमारं अपस्समाणो सोगसागरावडितो जातो, ततो पसन्नचंदसंपेसिएहिं पुरिसेहिं अम्हेहिं वक्कलचीरी पोयणपुरे रायसमीवे दिट्ठोत्ति निवेदितेहिं कहवि संठवितो, तहावि निच्चमेव पुत्तमणुसंभरंतो अंधो जातो, रिसीहिं साणुकंपेहिं कयफलसंविभागो तत्थेव आसमे निवसइ, गएसु य बारससु संवच्छरेसु अड्ढरत्ते पडिबुद्धो पियरं चिंतेउमारद्धो–किह मन्ने तातो मया निग्घिणेण विरहितो अच्छइ ? इति, पिउदंसणसमूसुगो पभाए पसन्नचंदसमीवं गंतूण विण्णवेइ–देव ! विसज्जेह मं उक्कंठितो तायस्स, तेण भणियं–समगं वच्चामो, गया आसमपयं, निवेइयं रिसिणो–पसन्नचंदो पणमइत्ति, चलणोवगतो य अणेण पाणिणा परामट्ठो, पुत्त ! निरामतोसित्ति ?, वक्कलचीरी पुणो अवयासितो, चिरका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

लधरियं च से बाहंसुयं पवूढं, ततो उम्मिल्लियाणि तस्स नयणाणि, पस्सइ ते दोवि जणे परमतुट्ठो, पुच्छइ य सव्वं गयं कालं, वक्कलचीरीवि कुमारो उडवं अतिगतो पस्सामि ताव तायस्स तावसभंडयं अणुवेक्खिज्जमाणं केरिसं जायंति ?, ततो तावसभंडयं उत्तरीयंतेण पडिलेहिउमारद्धो जइविव पत्तं पायकेसरियाए, ततो कत्थ मन्ने मया एरिसं करणं कयपुव्वंति विधिमणुसरंतस्स तयावरणकम्मक्खयोवसमेण पुव्वजाइस्सरणं जायं, सुमरइ य देवमाणुसभवे सामण्णं च पुराकयं, संभरिऊण वेरग्गमग्गसमोइण्णो धम्मज्झाणविसयातीतो विसुज्झमाणपरिणामो बिइयसुक्कज्झाणभूमिमइक्कंतो निद्दुवियनाणदंसणचरणमोहंतराओ केवली जातो, ततो उडवातो निग्गंतूण पिउणो पसन्नचंदस्स य रण्णो जिणप्पणीतो धम्मो परिकहितो, दोऽवि लद्धसम्मत्ता केवलिणो सिरेहिं पणया भणंति–सुट्ठु मे दंसितो मग्गोत्ति, वक्कलचीरी पत्तेयबुद्धो पियरं गहेऊण वद्धमाणसामिणो पासं गतो, पसन्नचंदो य नियपुरं, जिणो य भयवं महावीरो सगणो विहरमाणो पोयणपुरे मणोरमे उज्जाणे समोसरितो, पसन्नचंदो वक्कलचीरिवयणजणियवेरग्गो परममणहरतित्थयरभासियामयवड्ढिउच्छाहो बालं पुत्तं रज्जे ठविऊण पव्वइतो, अहिगयसुत्तत्थो तवसंजमभावियमती मगहपुरमागतो, तत्थ य आयावंतो सायरं सेणिएणं वंदितो, एवं निक्खंतो। इतो य भयवं नरगामरगतीसु उक्कोसट्ठिइजोग्गयं झाणपच्चयं पसन्नचंदस्स वण्णेइ, ताव देवा तंमि पदेसे ओवइया, पुच्छितो य अरहा सेणिएण–किंनिमित्तो एस देवसंपातो इति ?, सामिणा भणियं–पसन्नचंदस्स अणगारस्स नाणुप्पत्तीहरिसिया देवा उवागयत्ति, ततो पुच्छइ–भयवं ! एयं केवलनाणं कम्मि वोच्छिज्जिहिइ ?, तंमि समए बंभलोगदेविंदसामाणितो विज्जुमाली देवो दुद्धरिसतेजो उज्जोवंतो तेएण दस दिसातो वंदिउमुवागतो, सो दंसितो भयवया, एवमादि जहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीआव-श्यकमल-य० वृत्तौ उपोद्घाते ॥४६०॥

वसुदेवहिंडीए तहा भाणियव्वं, अत्र पुनर्वल्कलचीरिणोऽधिकारः । तथा कर्म्मणां क्षये सति प्राप्यते सामायिकं, यथा— प्राप्तं चंडकौशिकेन, उपशमे सत्यवाप्यते यथा अङ्गर्षिणा, तथा मनोवाक्काययोगे प्रशस्ते लभ्यते बोधिः—सामायिकमिति गाथार्थः ॥ अथवाऽनुकम्पादिभिरवाप्यते सामायिकं, तथा चाह—

अणुकंप १ ऽकामनिज्जर २ बालतवो ३ दाण ४ विणय ५ विब्भंगे ६ ।
संजोग विप्पओगे ७ वसणू ८ सव ९ इड्ढि १० सक्कारे ११ ॥ ८४५ ॥
वेज्जे १ मिंठे २ इंदयनागय ३ कयपुन्न ४ पुप्फसालसुए ५ ।
सिव ६ दुमहुर वणि ७ भाउय ८ आभीर ९ दसन्नि १० लापुत्ते ११ ॥ ८४६ ॥

अनुकम्पाप्रवणचित्तो जीवः सामायिकं लभते, शुभपरिणामयुक्तत्वात्, वैद्यवत् १, हेतुः सर्वत्रायमेव परिभावनीयः, प्रतिज्ञादृष्टान्तान्यत्वं तु प्रतियोगं भणिष्यामः, अकामनिर्जरावान् जीवः सामायिकं लभते शुभपरिणामयुक्तत्वात् मेण्ठवत् २, तथा लभते कोऽपि बालतपोयुक्तोऽपि सामायिकं शुभपरिणामत्वादिन्द्रनागवत् ३, तथा सुपात्रप्रयुक्तयथा-शक्तिश्रद्धादानो लभते सामायिकं कृतपुण्यवत् ४, आराधितविनयो लभते सामायिकं पुष्पशालसुतवत् ५, अवाप्तविभं-गोऽपि लभते कोऽपि सामायिकं शिवराजर्षिवत् ६, दृष्टद्रव्यसंयोगविप्रयोगो लभते कश्चित् सामायिकं मथुराद्वयवासिवणि-ग्द्वयवत् ७, अनुभूतव्यसनो लभते कोऽपि सामायिकं भ्रातृद्वयशकटचक्रव्यापादितउछुंडीलब्धमानुषत्वस्त्रीगर्भजातप्रियद्वे-ष्यापुत्रद्वयवत् ८, अनुभूतोत्सवोऽपि लभते कोऽपि सामायिकमाभीरवत् ९, दृष्टपरमर्द्धिकोऽपि लभते कश्चित्सामा-

क्षयादिषु अनुकम्पा-दिषु दृष्टान्ताः

॥ ४६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अनुकंपादि कारणात् सामायिक-प्राप्ते: द्रष्टांता:

यिकं दशार्णभद्रराजवत् १०, सत्कारकाङ्क्षणेऽप्यलब्धसत्कारः कोऽपि लभते सामायिकमिलापुत्रवत् ११ ॥ इयमक्षरगमनिका । साम्प्रतमुदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते—

बारमती नगरी, तत्थ कण्हो वासुदेवो, तस्स दो वेज्जा–धन्नंतरी वेयरणी य, धन्नंतरी अभवितो, वेयरणी भवितो, सो साहूण गिलाणाण पिएण साहइ, जस्स जं कायव्वं तस्स तं फासुएण पडोयारेण साहइ, जइ अप्पणो संति ओसहाणि तो देइ, धन्नंतरी पुण जाणि सावज्जाणि ताणि साहइ, असाहुप्पओग्गाणि, ततो साहुणो भणंति–अम्हं कत्तो एयाणि ?, ताहे भणइ–न मए समणाणं अट्ठाए अज्झाइयं वेज्जसत्थं, ते दोऽवि महारंभा महापरिग्गहा य सवाए बारवतीए तिगिच्छं करेंति, अण्णया कण्हो वासुदेवो तित्थयरं पुच्छति–एए बहूणं ढंकादियाणं वहं काउं कहिं गमिस्संति ?, ताहे सामी भणइ–एस धन्नंतरी अप्पइट्ठाणे नरए उववज्जिहिति, एस पुण वेयरणी कालंजरवत्तिणीए गंगाए महानईए विंझस्स य अंतरा वानरत्ताए पच्चायाहिति, ताहे सो वयपत्तो सयमेव जूहवइत्तणं काहिति, तत्थऽण्णया साहुणो सत्थेण समं विईवइस्संति, एगस्स य साहुस्स पाए सल्लो लग्गिहिति, ताहे ते भणंति–अम्हे पडिच्छामो, सो भणइ–सबे मरामो, वच्चह तुज्झे, अहं भत्तं पच्चक्खामि, ताहे निब्बंध काउं ठितो, सोऽवि न तीरइ सल्लो नीणेउं, पच्छा थंडिलं पावितो छायं च, ताहे सो वानरजूहवई तं पएसं एइ जत्थ सो साहू, जाव तं पुरिलेहिं दट्ठूण किलिकिलाइयं, ततो तेण जूहाहिवेण तेसिं किलिकिलाइयं सद्दं सोऊण रूसितेणागंतूण दिट्ठो सो साहू, तस्स तं साहुं दट्ठूण ईहापोहा, कहिं मए एरिसो दिट्ठोत्ति ?, सुभेण परिणामेण तयावरणिज्जकम्मक्खओवसमतो जाई संभरिया, बारवतिं संभरइ, ताहे तं साहुं वंदइ, तं च से सल्लं पासइ, ताहे सो तिगि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

च्छं सव्वं संभरइ, ततो सो गिरिं विलग्गिऊण सल्लुद्धरणिं संरोहणिं च ओसहिं गहाय आगतो, ताहे सल्लुद्धरणिं पाए अल्लियावेति, ततो सल्लो एगंते पडितो, संरोहणीए पउणावितो, ताहे तस्स साहुस्स पुरतो अक्खराणि लिहइ–जहाऽहं वेयरणीणाम वेज्जो पुव्वभवे वारवईए आसि, तेहिवि सो सुयपुव्वो, ताहे सो साहू धम्मं कहेइ, ततो सो भत्तं पच्चक्खाइ, तिन्नि राइंदियाणि जीवित्ता सहस्सारं गतो। एतदेवाह—

सो वानरजूहवई कंतारे सुविहियाणुकंपाए। भासुरवरबोंदिधरो देवो वेमाणिओ जाओ ॥ ८४७ ॥

सोऽनुकम्पाकारित्वेन भगवदरिष्टनेमिकथिततया वाऽतिप्रसिद्धो वानरयूथपतिः कान्तारे सुविहितस्य–सुसाधोरनुकम्पया परमभक्त्यपरपर्यायया भास्वरवरबोंदिधरो देवो वैमानिको जातः। सहस्सारं देवलोगं गतो य ओहिं पउंजइ जाव पेच्छइ तं सरीरगमप्पणो तं च साहुं, ताहे आगंतूण साहुस्स देवड्ढिं दाएइ, भणइ य–तुम्ह पसाएण देविड्ढी लद्धा, ततो तेण सो साहू साहरितो तेसिं साहूणं सगासे, ते पुच्छंति किहमागतो सि?, ताहे साहइ, एवं तस्स वानरस्स सम्मत्तसामाइयसुयसामाइयचरित्ताचरित्तसामाइयाण अणुकंपाए लाभो, इहरा निरयपाउग्गाणि कम्माणि करेत्ता निरयं गतो होंतो, ततो चुयस्स चारित्तसामाइयं भविस्सइ भविस्सइ सिद्धी य ॥

अकामनिज्जराए वसंतपुरे नयरे एगा इब्भवहुगा नदीए ण्हाइ, अन्नो य तरुणो तं दट्ठूण भणइ–सुण्हायं ते पुच्छइ एस नदी मत्तवारणकरोरू। एए य नदीरुक्खा वयं च पाएसु ते पणया ॥ १ ॥ साऽवि तं पइ भणई–सुभगा होंतु नदीतो चिरं च जीवंतु जे नदीरुक्खा। सुण्हायपुच्छगाणं घत्थीहामो पियं काउं ॥ २ ॥ प्रियं कर्त्तुं यतिष्यामहे इत्यर्थः, ताहे सो तीए घरं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वारं वा न याणइ, चिंतेइ–अन्नपानैर्हरेद्बालान्, यौवनस्थान् विभूषया। वश्यां स्त्रीमुपचारेण, वृद्धान् कर्कशसेवया ॥ १ ॥ तीसे विइज्जगाणि चेडरूवाणि रुक्खे पलोएन्ताणि अच्छंति, तेण तेसिं पुप्फाणि फलाणि दिन्नाणि, पुच्छियाणि य–का एसा ? कस्स वा ?, ताणि भणंति–अमुगस्स सुण्हा, ताहे सो चिंतेइ–केण उवाएण तीए समं संपओगो हवेज्जा ?, ताहे एगा चरिगा भिक्खट्ठाए सव्वत्थ अडंती दिट्ठा अवलोइया, चिंतियं कुसुंभसदृशप्रभं तनुसुखं पटं प्रावृता, नवागुरुविलेपना शरदि चन्द्रलेखा इव। यथा हसति भिक्षुकी सुललितं विटैर्वन्दिता, ध्रुवं सुरतगोचरे चरति गोचरान्वेषिणी ॥ १ ॥ ततो तं ओलग्गइ, सा तुट्ठा भणइ–किं करेमि ?, अमुगस्स सुण्हं संपादेहि, सा गया तीए समासं, भणिया य–जहा अमुगो एवंगुणजाइओ ते पुच्छइ, तीए रुट्ठाए पत्तुल्लुगाणि धोवंतीए मसिलित्तेण हत्थेण पट्ठीए आहया, पंचंगुलीतो जायातो, वारेण य निच्छूढा, सा आगया साहइ–नामंपि न सहइ, तेण नायं जहा कालपंचमीए अहं हक्कारितो, ताहे पंचमीदिवसे पुणरवि पट्ठविया पवेसजाणणानिमित्तं, ताहे सलज्जाए आहणिऊणं असोगवणियाछिड्डियाए निच्छूढा, सा आगया साहइ–जहा नामंपि न सहइ, आहणित्ता अवदारेण धाडिया, तेण णाओ पवेसो, तेणेव अवदारेण सो अतिगतो, असोगवणियाए सुत्ताणि, ससुरेण दिट्ठाणि, तेण नायं जहा न मम पुत्तोत्ति, पच्छा से पायाओ णेउरं गहियं, चेइयं च तीए, भणिओ सो अणाए–नास लहुं सहायकिज्जं करेज्जासु, पच्छा इयरी गंतूण भत्तारं भणइ–धम्मो एत्थं, असोगवणियं जामो, गयाणि, सुत्ताणि य, जाहे सो सुत्थं सुत्तो ताहे उट्ठवित्ता भणति–तुज्झ एयं कुलाणुरूवं ? जं मम पायातो ससुरो नेउरं गेण्हइ, सो भणइ–सुयाहि पभाए लभिहिसि, थेरेण सिट्ठं, सो रुट्ठो भणति–विवरीओ सि थेरा!, सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणइ–मए अन्नो दिट्ठो, ताहे विवादे सा भणति–अहं अप्पाणं सोहेमि, एवं करेहि, ताहे ण्हाया जक्खघरं गया, तत्थ जो कारी सो दोण्हं जंघाणं अंतरेण वोलंततो लग्गइ, अकारी मुच्चइ, जक्खघरं गच्छंती य तेण पुरिसेण पिसायरूवं काऊण अंतरा अवगूहिता, ततो सा तत्थ गंतूण जक्खं भणइ–जा मम मायापिईहिं दिण्णिल्लतो तं च पिसायं मोत्तूण जइ अण्णं जाणामि तो मे तुमं जाणसित्ति भणंती झडत्ति अंतरेण वोलीणा, जक्खो विलक्खो चिंतेइ–पेच्छ केरिसं जायं ?, अहयंपि वंचितोऽणाए, नत्थि सतित्तणं धुत्तीए, लोगेण उक्किट्ठिकलयलो कतो सुद्धा सुद्धा एमत्ति थेरो सद्देण लोगेण हीलितो, तस्स ताए अद्धितीए निद्दा नट्ठा, एवं रण्णा परंपरएण सुयं जहा थेरो न सुयइ, ततो हक्कारेऊण अंतेउरपालओ कतो, अभिसेक्कं च हत्थिरयणं रण्णो वासघरस्स हेट्ठा वद्धं अच्छइ, देवी य हत्थिमेंठे आसत्तिया, नवरं रत्तिं हत्थिणा हत्थो पसारितो सा ओयरिया, पुणरवि पभाए पडिविलइया, एवं वच्चइ कालो, तंमि दिणे अतिचिरं जायंति हत्थिमेंठेण हत्थिसंकलाए आहया, सा भणइ–सो पुरिसो न सुयइ मा रूसह, तं थेरो पेच्छइ, सो चिंतेइ–जइ एयातोवि एरिसीतो किंनु तातो अतिभद्दियातो इति निच्चिंतो सुत्तो, पभाए सद्दो लोगो उट्ठितो, सो न उट्ठेइ, रण्णो सिट्ठं, राया भणइ–सुवउ, सत्तमे दिवसे उट्ठितो, रण्णा पुच्छितो, कहियं जहा एगा देवी. न याणामि कयरत्ति, सा एवं ववहरइ, ततो रण्णा भिंडमयो हत्थी कारावितो, सद्दातो अंतेउरियाओ भणियातो–एयस्स अच्चणियं करेत्ता उल्लंडेह, सद्दाहिं उल्लंडितो, सा नेच्छइ, भणइ–अहं बीहेमि, ताहे राइणा उप्पलेण आहया, मुच्छिया किल पडिया, ताहे से उवगयं जहा एसा कारित्ति, भणिया य मत्तगयमारुहंतीए भिंडमयस्स गयस्स बीहंतीए। इह मुच्छिय उप्पलाहया तत्थ न मुच्छिय संकलाहया ॥१॥ जा पिट्ठी से निभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया जाव संकलप्पहारा दिट्ठा, ताहे रण्णा सा देवी हत्थी मिंठो य तिण्णिवि छिन्नकडए विलइयाणि, मेंठो भणिओ–एत्थ अप्पतइओ गिरिप्पवायं देहि, हत्थिस्स दोहिवि पासेहिं वेलुग्गाहा ठविया, जाव एगो पादो आगासे कतो ताव जणो भणइ–किं एस तिरिओ जाणइ ?, एयाणि मारेयव्वाणि, तहावि राया रोसं न मुयइ, ततो दो पाया आगासे कया, तइयवाराए तिण्णि पाया आगासे कया, एगेण पाएण ठिओ, लोगेण अक्कंदो कतो–किं एयं हत्थिरयणं विणासेह य ?, रण्णो चित्तं ओलियं, आर्द्रं जातमित्यर्थः, भणितो–तरसि नियत्तेउं ?, भणइ–जइ अभयं देह, दिन्नं, तेण नियत्तितो अंकुसेण, जहा भमित्ता थले ठितो, ताणि ओयारित्ता निव्विसयाणि कयाणि, एगत्थ पच्चंतगामे सुण्णघरे ठियाणि । तत्थ य गामेल्लयपारद्धो चोरो तं सुण्णघरं अतिगतो, ते भणंति–वेढिउं अच्छामो, मा कोइ पविसउ, गोसे घेत्थामो, सोऽवि चोरो लुक्कंतो, किहवि तीसे फासो वेइतो, सा हुक्का भणइ–को सि तुमं ?, सो भणइ–चोरोऽहं, तीए भणियं–तुमं मम पती होहि जेण एयं साहामो, जहा एस चोरोत्ति, तेण पडिवन्नं, पभाए लोगेण मेंठो गहितो, सूलाए भिन्नो, सा चोरेण समं वच्चइ जाव अंतरा नदी, सा तेण भणिया–एत्थ सरत्थंबे अच्छ जाव अहं एयाणि वत्थाणि आभरणाणि य उत्तारेमि, सो गतो, उत्तिन्नो पधावितो, सा भणइ–पुण्णा नदी दीसइ कायपेज्जा, सव्वं पियाभंडग तुज्झ हत्थे । जहा तुमं पारमतीतुकामो, धुवं तुमं भंड गहाउकामो ॥ १ ॥ सो भणइ–चिर संथुतो वाऽलिअसंथुएण, मेलेवि तावं धुव अद्धुवेण । जाणप्पि तुज्झ प्रकृतिस्वभावं, अन्नो नरो को तुह वीससेज्जा ? ॥ १ ॥ सा भणइ–किं जाहि ?, सो भणइ–जहा एसो मारावितो एवं ममंपि कहंचि मारावेहिसि ? । इयरोऽवि मेंठो तत्थ सूलाए विद्धो उदगं मग्गइ, तत्थेगो सड्ढो, सो भणइ–जइ नमोक्कारं करसि तो देमि, सो उदगस्स अट्ठाए गतो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव तंमि अपत्ते चेव सो नमोक्कारं करेंतो कालगतो वाणमंतरो जातो, सड्ढोऽवि आरक्खियपुरिसेहिं गहितो, सो देवो ओहिं पउंजइ, पेच्छइ सरीरगं सड्ढं च बद्धं, ताहे सो सिलं विउव्वित्ता मोएइ, तं च पेच्छइ देविं सरत्थंबे विलुक्कं, ताहे से घिणा उप्पन्ना, सियालरूवं विउव्वित्ता मंसपेसीए गहियाए दगतीरेण बोलेइ जाव नदीतो मच्छो उच्छलिऊण तडे पडितो, ततो सो मंसपेसिं मोत्तूण मच्छस्स पहावितो, सो पाणिए पडितो, मंसपेसीवि सेणेण गहिया, ताहे सियालो झायइ, ताए भन्नइ–मंसपेसिं परिच्चज्ज, मच्छं पत्थेसि जंबुया !। चुक्को मंसं च मच्छं च, कलुणं झायसि कोल्हुया ! ॥ १ ॥ तेण भण्णइ–पत्तपुडपडिच्छण्णे, सरत्थंबेण पाउए !। चुक्का पतिं च जारं च, कलुणं झायसि बंधकी ॥ १ ॥ एवं भणिया विलक्खा जाया, ताहे सो सयं रूवं दंसेइ पन्नवेइ य–धुत्ता ! पवयाहि, सा भणइ–पमज्जेह अवण्णं, ताहे सो राया तज्जिओ, तेण पडिवन्ना, सक्कारेण निक्खंता, देवलोगं गया, एवं अकामनिज्जराए मेंठस्स २ ॥

बालतवेणं–वसंतपुरं नगरं, तत्थ सेट्ठिघरं मारीए उच्छाइयं, तत्थ इंदनागो नाम दारओ, सो गिलाणो पाणियं मग्गइ, जाव सवाणि मयाणि पेच्छइ, बारंपि लोगेण कंटियाए घट्टियं, ताहे सो सुणयच्छिड्डुंतेण निग्गंतूण तंमि नगरे खप्परेण भिक्खं हिंडइ, लोगो से देइ भूयपुव्वोत्तिकाउं, एवं सो वड्ढइ । इत्तो य–एगो सत्थवाहो रायगिहं जाउकामो घोसणं घोसावेइ, तेण सुयं, सत्थेण समं पत्थितो, तत्थ तेण सत्थे कूरो लद्धो, सो जिमितो, न जिण्णो, बितियदिवसे अच्छइ, सत्थवाहेण दिट्ठो, चिंतेइ–नूणं एस उववासितो, सो य अवत्तलिंगी, बिइयदिवसे हिंडिंतस्स सेट्ठिणा बहुं निद्धं च दिन्नं, सो तेण दुवे दिवसे अजिण्णेण अच्छइ, सत्थवाहो जाणइ–एस छट्ठेण खमइ, तस्स महती आस्था जाता, सो तइयदिवसे हिंडन्तो सत्थवाहेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सद्दाविंतो–कीस कलं नागतो ?, तुण्हिक्को अच्छइ, जाणइ–जहा छट्ठं कएल्लयं, ताहे से दिण्णं, तेणवि अण्णे दो दिवसे अच्छाविंतो, लोगोऽवि पणतो, अण्णस्स निमंतंतस्सवि न गेण्हइ, अण्णे भणंति–एसो एगपिंडितो, तेण तं अट्ठपयं लद्धं, सत्थवाहेण भणितो–मा अण्णस्स खणं गेण्हिज्जासि, जाव नगरं गम्मइ ताव अहं देमि, गया नगरं, तेण से णियघरसरीवे मढो कतो, ताहे सीसं मुंडावेइ, कासायाणि चीवराणि गेण्हइ, ताहे जद्दिवसं से पारणयं तद्दिवसं लोगो आणेइ भत्तं, एगस्स पडिच्छइ, ततो लोगो न याणइ–कस्स पडिच्छियंति, ताहे लोगेण जाणणानिमित्तं भेरी कया, जो देइ सो ताडेइ, ताहे लोगो पविसइ, एवं वच्चइ कालो, सामी समोसरितो, ताहे साहू संदिसावंता भणिया–मुहुत्तं अच्छह, अणेसणा, तंमि जिमिए भणिया–ओयरह, गोयमो भणिओ–मम वयणेणं भणिज्जासि–भो ! अणेगपिंडिया एगपिंडितो ते दहुमिच्छइ, ताहे गोयमसामिणा भणितो रुट्ठो, तुज्झे अणेगाणि पिंडसयाणि आहारेह, अहं एगं पिंडं भुंजामि, अहं चेव एगपिंडितो, मुहुत्तंतरेण उवसंतो चिंतेइ–न एए मुसं वयंति, किह होज्जा ?, लद्धा सुती, होमि अणेगपिंडितो, जद्दिवसं मम पारणगं तद्दिवसं अणेगाणि पिंडसयाणि करेंति, एए पुण अकयकारिअं भुंजंति, सच्चं भणंति, एवं चिंतेंतेण जाई संभरिया, पत्तेयबुद्धो जातो, अज्झयणं भासइ 'इंदणागेण अरहा वुत्तं०' सिद्धो य, एवं बालतवेण सामाइयं लद्धं तेण ३ ॥

दाणेण जहा–एगाए वच्छवालीए पुत्तो, लोगेण ओसवे पायसी उक्खडिया, तत्थासन्नघरे दारगरूवाणि पायसं जेमंताणि पासइ, ताहे सो मायरं वड्डेइ–ममवि पायसं रंधेहि, ताए भणिओ सो–णत्थित्ति, सा अड्ढिईए परुण्णा, ताओ सयज्झियाओ पुच्छंति, निब्बंधे कहियं, ताहिं अणुकम्पयाए अण्णाएवि अण्णाएवि आणियं खीरं सालि तंदुला य, ताहे थेरीए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

पायसो रद्धो, ततो तस्स दारगस्स ण्हायस्स घयमहुसंजुत्तं थालं भरेऊण घट्टियं, परिवेषितमित्यर्थः, साहू य मासक्खमणपारणए आगतो, जाव थेरी अंतो वाउला ताव तेण धम्मोऽवि मे होउत्ति तस्स पायसस्स तिभागो दिन्नो, पुणो चिंतियं–अतिथोवं, बिइओ भागो दिन्नो, पुणोऽवि अणेण चिंतियं–एत्थ जइ अण्णं अंबक्खलगाइ छुब्भइ तो विणस्सइ, ताहे तइतो भागो दिन्नो, ततो तेण तस्स दव्वसुद्धेण दायगसुद्धेण गाहगसुद्धेण तिविहेण तिकरणसुद्धेण भावेण देवाउयं निबद्धं, ताहे माया से जाणइ–जिमितो, पुणरवि भरियं, अतीव रंकत्तणेण पोट्टं पडिपुन्नं भरियं, ताहे रत्तिं विसूइयाए मतो, देवलोगं गतो, ततो चुतो रायगिहे नयरे पहाणस्स धणावहस्स सेट्ठिस्स पुत्तो भद्दाए भारियाए जातो, लोगो य गब्भगए भणति–कयपुण्णो जीवो जो उववण्णो, ततो से जायस्स नामं कयं कयपुन्नोत्ति, वड्ढितो, कलातो गाहितो, परिणीतो, मायाए दुल्लहियगोट्ठीए समप्पितो, तेहिं गणियाघरं पावितो, बारसहिं वरिसेहिं निद्धणं कुलं कयं, तोऽवि न निग्गच्छइ, मायापियाणि से मयाणि, भज्जा य से आभरणाणि चरमदिवसे पेसेइ, गणियामायाए नायं–निस्सारो कतो, ताहे ताणि अण्णं च सहस्सं पडिविसज्जियं, गणियं माया भणइ–निच्छुभउ एसो, सा नेच्छइ, ताहे चोरियं नीणिओ, घरं सज्जिज्जइ, तहावि स उइण्णो बाहिं अच्छइ, दासीए भण्णइ–निच्छूढोऽवि अच्छसि?, ताहे नियघरं गतो, तं च सडियपडियं पासइ, ताहे सा भज्जा ससंभमेण उट्ठिया, ततो से सव्वं तीए कहियं, सोगेण अप्फुण्णो, भणइ–अत्थि किंचि जेण अन्नहिं गमित्ता ववहरामि?, ताहे जाणि आभरणाणि गणियामाऊए सहस्सं च कप्पासमोल्लं दिण्णं ताणि से दंसियाणि, सत्थो य तंमि दिवसे चलितो, सो तं भंडमोल्लं गहाय तेण सत्थेण समं पधावितो, बहिं देउलियाए खट्टं पाडिऊण सुत्तो, अण्णस्स य वाणियगमायाए सुयं, जहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तव पुत्तो वहणे भिन्ने मतो, तीए तस्स दव्वं दिन्नं, मा कस्सइ कहेज्जासि, तीए चिंतियं–मा दवजायं राउले पविसिहिइ मे अपुत्ताए, ततो रत्तिं तं सत्थं एइ, जा कंचि अणाहं पवेसेमि, ताहे तं पासइ, पडिबोहित्ता पवेसितो, ताहे घरं नेऊण रोवेइ–चिरनट्ठगत्ति पुत्ता !, सुण्हाणं चउण्हं ताणं कहेइ–एस देवरो चिरनट्ठतो, तस्स लाइयातो, तत्थवि बारस वरिसाणि अच्छइ, तत्थ एक्केक्काए चत्तारि चेडरूवाणि जायाणि, थेरीए भणियं–एत्ताहे निच्छुब्भउ, तातो न तरंति धरिउं, ताहे ताहिं संबलमोयगा कया, अंतो रयणाण भरिया, चिरं से एयं पाउग्गं होउ, ताहे वियडं पाएत्ता ताए चेव देउलियाए ऊसीसए संबलं ठवित्ता पडिगया, सोऽवि सीयलएणं पवणेणं संबुद्धो पभायं च, सोऽवि सत्थो तद्दिवसमागतो, इमाएवि गवेसतो पेसितो, ताहे उट्ठवित्ता घरं नीतो, भज्जा से संभमेण उट्ठिया, संबलं गहियं, पविट्ठो, अब्भंगादीणि कारइ, पुत्तो य से तदा गब्भिणीए जातो, सो एक्कारसवरिसो, लेहसालाए आगतो, रोवइ–देहि मे भत्तं मा उवज्झाएण हम्मिहामित्ति, ततो संबलथगियातो मोयगो पणामितो, खायंतो तत्थ रयणं पासइ, लेहचेडएहिं दिट्ठं, तेहिं कंचुइयस्स दिण्णं दिवे दिवे अम्ह पोलियातो देहित्ति, इमावि से भज्जा जिमिए मोदगे भिंदइ, तेण दिट्ठाणि, भणइ–सुंकभएण कयाणि, तेहिं तहेव पवित्थरितो ॥ सेयणतो गंधहत्थी नदीए तंतुएण गहितो, राया अद्दण्णो, अभओ भणइ–जलकंतो अत्थि तो छुट्टइ, सो य रायउले अइबहुयत्तणतो रयणाणं चिरेण लब्भइत्तिकाऊण पडहतो निप्फेडितो–जो जलकंतं देइ तस्स राया रज्जस्स अद्धं धूयं च देइ, ताहे अपूपिएण दिन्नो, नीतो उदगसगासं, उदगं पगासियं, तंतुओ जाणइ–थलं नीतो, मुक्को, नट्ठो, राया चिंतेइ–कतो कंदुयस्स जलकंतरयणसंपत्ती ?, पुच्छइ–कतो एस जलकंतो तुज्झ ?, निब्बंधेण सिट्ठं–कयपुन्नगपुत्तेण दिन्नो, राया तुट्ठो, कस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

अन्नस्स होहिइ ?, रण्णा सद्दावेऊण कयपुन्नगो धूयाए विवाहावितो, विसओ य से दिन्नो, भोगं भुंजइ, गणियावि आगया, भणइ–एच्चिरकालं अहं वेणीबंधेण अच्छिया, सव्वट्ठाणाणि तुमंअट्ठाए गवेसावियाणि, एत्थं सि दिट्ठोत्ति ॥ कयपुण्णगो अभयं भणइ–एत्थ मम चत्तारि महिलातो सचेडरूवाओ, तं घरं च न याणामि, ताहे चेइयघरं कयं, लेप्पगजक्खो य कयपुन्नगसरिसो कतो, तस्स अच्चणिया घोसाविया, दो य दाराणि कयाणि, एगेण पवेसो एगेण निप्फेडो, तत्थ अभओ कयपुन्नगो य एगत्थ बारब्भासे आसणवरगया अच्छंति, ताहे कोमुदी आणत्ता, जहा अज्ज पडिमापवेसोत्ति अच्चणियं करेह, नयरे य घोसावियं–सव्वमहिलाहिं सचेडरूवाहिं आगंतव्वं, ताहे लोगो एइ, तातोऽवि आगयातो, चेडरूवाणि बप्पोत्ति उच्छंगे निवेसंति, एवं तातो नायातो, थेरी अंबाडिया अभएणं, तातोऽवि आणीयातो, पच्छा जहासुहं भोगे भुंजइ सत्तहिवि सहितो । वद्धमाणसामी समोसरितो, कयपुन्नगो सामिं वंदिऊण पुच्छइ अप्पणो संपत्तिं विपत्तिं च, भगवया कहियं पायसदाणं, संवेगेण पव्वइतो, एवं दाणेण सामाइयं लब्भइ ४ ॥

इदाणीं बिणएणं, जहा मगहाविसए गोब्बरगामे पुप्फसालो गाहावती, भद्दा भारिया, पुत्तो से पुप्फसालसुतो, सो मायापियरं पुच्छइ–को धम्मो ?, तेहिं भण्णइ–दो चेव देवयाओ माया पियरो य जीवलोगम्मि । तत्थवि पिया विसिट्ठो जस्स वसे वट्टई माया ॥ १ ॥ ताहे सो ताण पायमुहधोवणाइं विभासा, देवयाणि व सुस्सूसइ, अन्नया गामभोइओ आगतो, ताणि संभंताणि पाहुण्णं करेंति, सो चिंतेइ–एयाणवि एस देवयं, एवं पूएमि तो धम्मो होहिइ, तस्स सुस्सूया पकया, अन्नया तस्स भोइयस्स अन्नो महल्लो दिट्ठो जाव सेणितो राया, तं ओलग्गिउमारद्धो, सामी समोसट्ठो, सेणिओ इड्ढीए गंतूण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वंदइ, ताहे सो सामीं भणइ–अहं तुब्भे ओलग्गामि?, सामिणा भणियं–अहं रयहरणपडिग्गहमायाए ओलग्गिज्जामि, ताणं सुणणाए सुबुद्धी, एवं विणएणं सामाइयं लब्भइ ५ ॥

विब्भंगेण जहा–हत्थिणाउरे नगरे सिवो नाम राया, तस्स धारिणी देवी, सिवभद्दे नामं पुत्ते, तस्स णं सिवस्स रण्णो अण्णया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि रज्जधुरं चिंतेमाणस्स इमे एयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था–अत्थि मे पुराकयाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे जेणं हिरण्णेणं वड्ढामि, एवं रज्जेणं रट्ठेणं धणेणं धन्नेणं जाव पुत्तेहिं वड्ढामि, ता किं अहं पुणोऽवि पुन्नं न करेमित्ति कलिऊण बीयदिवसे विपुलं भोयणं सबजणजोग्गं कारावियं, लोगो जेमावितो, दाणं च दिण्णं, महयाए इड्ढीए सिवभद्दो पुत्तो रज्जे ठवितो, ततो लोहीलोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडयं भिक्खाभायणप्पभिई घडावित्ता तं गहाय दिसापोक्खियतावसत्ताए तावसो जातो, छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहातो पगिज्झिय २ सूराभिमुहमायावेमाणे जावज्जीवाए विहरइ, तत्थ पढमछट्ठपारणदिवसे य आयावणभूमीतो पच्चोरुहइ, ततो नियत्थवक्कलवत्थे जेणेव सए उडवे तेणेवागंतूण तंबियं भायणं गिण्हइ, तत्थ उदगं घेत्तूण पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, भणति य–पुरत्थिमाए दिसाए सोमो महाराया सो पत्थाणपत्थियं सिवं रायरिसिं अभिरक्खउ, जाणि य तत्थ कट्ठाणि मूलाणि जाव हरियाणि अणुजाणउत्तिभणिऊण पुरत्थिमं दिसिं पसरइ, ततो कंदाईणि गिण्हइ, दब्भे य समिद्धातो य, ततो सयमुडवमुवगच्छइ, तत्थ उवलेवणसंमज्जणं करेइ, ततो आयंते चोक्खे दब्भसगब्भकलसहत्थगते उदगं गेण्हइ, ताहे दब्भेहिं वालुयाए य वेदिं रएइ, रइत्ता अरणिं महिऊण अग्गिं पाडेइ, तत्थ समिहाकट्ठा पक्खिवति, महुणा घएण य तंदुलेहिं अग्गिम्मि हुणति, बलिं विस्सदेवं करेइ अतिथि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

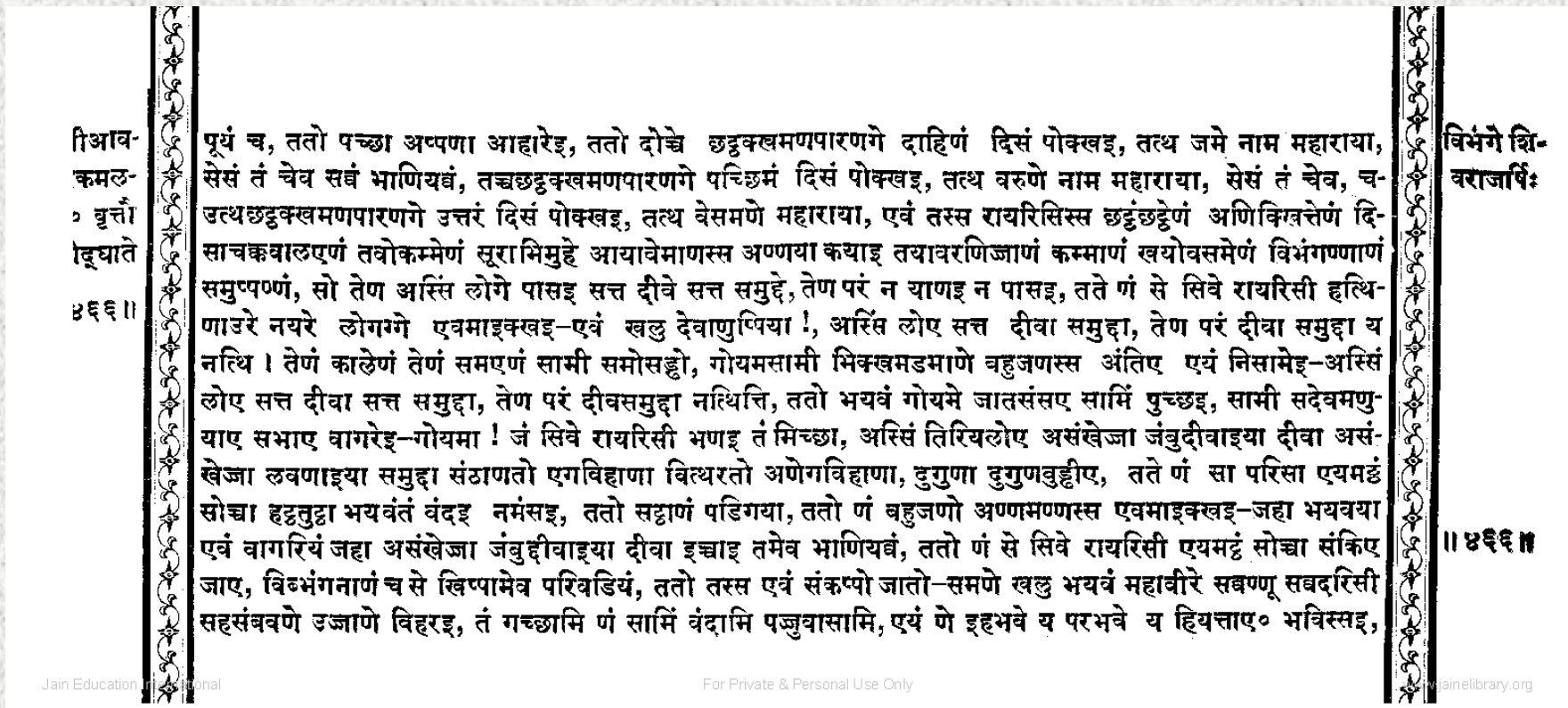

ाआव-
कमल-
० वृत्तौ
ादुद्घाते

४६६॥

पूर्वं च, ततो पच्छा अप्पणा आहारेइ, ततो दोच्चे छट्ठक्खमणपारणगे दाहिणं दिसं पोक्खइ, तत्थ जमे नाम महाराया, सेसं तं चेव सव्वं भाणियव्वं, तच्चछट्ठक्खमणपारणगे पच्छिमं दिसं पोक्खइ, तत्थ वरुणे नाम महाराया, सेसं तं चेव, चउत्थछट्ठक्खमणपारणगे उत्तरं दिसं पोक्खइ, तत्थ वेसमणे महाराया, एवं तस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालएणं तवोकम्मेणं सूराभिमुहे आयावेमाणस्स अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खयोवसमेणं विभंगणाणं समुप्पण्णं, सो तेण अस्सिं लोगे पासइ सत्त दीवे सत्त समुद्दे, तेण परं न याणइ न पासइ, तते णं से सिवे रायरिसी हत्थिणाउरे नयरे लोगग्गे एवमाइक्खइ–एवं खलु देवाणुप्पिया !, अस्सिं लोए सत्त दीवा समुद्दा, तेण परं दीवा समुद्दा य नत्थि । तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढो, गोयमसामी भिक्खमडमाणे बहुजणस्स अंतिए एयं निसामेइ–अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं दीवसमुद्दा नत्थित्ति, ततो भयवं गोयमे जातसंसए सामिं पुच्छइ, सामी सदेवमणुयाए सभाए वागरेइ–गोयमा ! जं सिवे रायरिसी भणइ तं मिच्छा, अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा जंबुदीवाइया दीवा असंखेज्जा लवणाइया समुद्दा संठाणतो एगविहाणा वित्थरतो अणेगविहाणा, दुगुणा दुगुणवुड्ढीए, तते णं सा परिसा एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठा भयवंतं वंदइ नमंसइ, ततो सट्ठाणं पडिगया, ततो णं बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ–जहा भयवया एवं वागरियं जहा असंखेज्जा जंबुद्दीवाइया दीवा इच्चाइ तमेव भाणियव्वं, ततो णं से सिवे रायरिसी एयमट्ठं सोच्चा संकिए जाए, विब्भंगनाणं च से खिप्पामेव परिवडियं, ततो तस्स एवं संकप्पो जातो–समणे खलु भयवं महावीरे सव्वण्णू सव्वदरिसी सहसंबवणे उज्जाणे विहरइ, तं गच्छामि णं सामिं वंदामि पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियत्ताए० भविस्सइ,

विभंगे शिवराजर्षिः

॥ ४६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

एवं संकप्पिऊण सव्वं भंडोवगरणं गहाय जेणेव भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, भयवंतं वंदइ नमंसइ, धम्मं सोच्चा जाय-परमसंवेगो उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागमवक्कमिऊणं सव्वं भंडोवगरणं एडेइ, ततो सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, ततो भय-वतो समीवे गंतूण चारित्तं पडिवज्जइ, एक्कारस अंगाइं पढइ, ततो विसुद्धपरिणामस्स केवलनाणं समुप्पण्णं सिद्धो य ६ ॥

संयोगवियोगतोऽवि लब्भइ, जहा दो महुरातो–दाहिणा उत्तरा य, तत्थुत्तरातो वाणितो दक्खिणं गतो, तत्थ एगो वाणियगो तप्पडिमो, तेण से पाहुण्णं कयं, ताहे निरंतरं ते मित्ता जाया, अम्हं थिरतरा पीती होउत्ति जइ अम्हं पुत्तो धूया य जायइ तो संजोगं करिस्सामो, ताहे दक्खिणेण उत्तरस्स धूया वरिया, दिन्ना, एत्थंतरे दक्खिणमहुरावाणितो मतो, पुत्तो से तंमि ठाणे ठितो, अण्णया सो ण्हाइ, चउद्दिसिं चत्तारि सोवन्निया कलसा ठविया, ताण बाहिं रुप्पिया, ताण बाहिं तंबिया, ताण बाहिं मट्टिया, अण्णया ण्हाणविही रइया, ततो तस्स पुरतो पुव्वाए दिसाए सोवन्निओ कलसो नट्ठो, एवं चउद्दिसिं सव्वे नट्ठा, उट्ठियस्स ण्हाणपीढमवि नट्ठं, अद्धिती जाया, जाव घरं पविट्ठो, ताहे भोयणविही उवट्ठविया, ताहे सोवण्णियरुप्पमयाणि थालाणि रइयाणि, तत्थ एक्केक्कं भायणं नासेउमारद्धं, सो य पेच्छइ नासंते जाव से मूलपत्ती-वि णासिउमारद्धा, ताहे तेण गहिया, जत्तियं गहियं तत्तियं ठियं, सेसं नट्ठं, ततो गतो सिरिघरं जोएइ जाव तंपि रित्तयं पेच्छइ, जंपि निहाणपउत्तं तंपि नट्ठं, जंपि आभरणं तंपि नत्थि, जेसिंपि वड्ढिपउत्तं तेवि भणंति–तुमं न याणामो, जो दासीवग्गो सोऽवि नट्ठो, ताहे चिंतेइ–अहो अहं अहन्नो, ततो चिंतेइ–पव्वयामि, पव्वइतो, सामाइयाईणि एक्कारस अंगाणि पढइ, ततो तेण खंडेण हत्थगएण कोउहल्लेण हिंडइ जइ पेच्छेज्जामि, विहरंतो उत्तरमहुरं गतो, ताणिवि रयणाणि ससुर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआवश्यकमल० वृत्तौ उपोद्घाते ॥ ४६७ ॥

कुलं गयाणि, ते य कलसा, तहाहि–सो उत्तरमाहुरो वाणितो उवगिज्जंतो अन्नया कयाइ मज्जइ, तस्स मज्जमाणस्स ते कलसा आगया, ततो सो तेहिं चेव मज्जितो, भोयणवेलाए तं सव्वं भोयणभंडं उवट्ठियं, सोऽवि साहू भिक्खं अडंतो तं घरं पविट्ठो, तत्थ सत्थवाहस्स धूया पढमजोव्वणे वट्टमाणी बीयणयं गहाय अच्छइ, ताहे सो साहू तं भोयणभंडं पेच्छइ, सत्थवाहेण भिक्खा नीयाविया, दिण्णेऽवि अच्छइ, ताहे पुच्छइ–किं भयवं! एयं चेडिं पलोवेह ?, ताहे सो भणइ, न मम चेडीए पओयणं, एयं भोयणभंडगं पलोएमि, ततो पुच्छइ–कतो ते एयस्स आगमो ?, सो भणइ–अज्जयपज्जयागयं, तेण भणियं–सब्भावं साह, तेण भणियं–मम ण्हायंतस्स एवं चेव ण्हाणविही उवट्ठिया, एवं सव्वोऽवि जेमणवेलाए भोयणविही, सिरिघराणिवि भरियाणि दिट्ठाणि, अदिट्ठपुव्वा य वाणियगा आणेत्ता देंति, ताहे सो भणइ–एयं सव्वं मम आसि, सो पुच्छइ–किह ?, ताहे साहू कहेइ ण्हाणादि, जइ न पत्तियसि भोयणपत्तीखंडं पेच्छ जाव ढोइयं, झडत्ति लग्गं, पिउणो नामं साहइ, ताहे नायं एस सो जामाउओ, ताहे सो उट्ठित्ता अवयासेऊण परुण्णो, पच्छा भणइ–एयं सव्वं तव तदवत्थं अच्छइ, एसा ते पुव्वदिन्ना चेडी, पडिच्छसु णंति, सो भणइ–पुरिसो वा पुव्वं कामभोगे विप्पजहइ, कामभोगा वा पुरिसं पुव्वं विप्पजहेंति, ताहे सोऽवि संवेगमावन्नो, ममंपि एमेव विप्पजहिस्संतित्ति, पव्वइतो, तत्थ एगेण विप्पओगेण सामाइयं लद्धं, एगेण संजोगेण लद्धंति ७ ॥

इयाणिं वसणेणं, दो भाउया सगडेण वच्चंति, तत्थ चक्कवुंडा सगडवट्टाए लोलइ, महल्लेण भणियं–वत्तेह भंडिं, इयरेण वाहिया भंडी, सा सन्नी सुणेइ, ताहे चक्केण छिन्ना, मया, इत्थी य जाया हत्थिणउरे नगरे, सो महल्लतरागो पुव्वं मरित्ता

संयोगविओगे मथुरावणिजौ ॥ ४६७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसे पोट्टे आयातो, पुत्तो जातो, इयरोऽवि मतो, तीसे चेव पोट्टे आयातो, जंचेव सो उववण्णो तंचेव सा चिंतेइ–सिलं व हाविज्जामि, गब्भपाडणेहिवि न पडइ, एवं सो जातो ताहे दासीए हत्थे दिन्नो, छड्डेहि, सो सिट्ठिणा दिट्ठो निज्जंतो, तेण घेत्तूण अन्नाए दासीए दिन्नो, सो तत्थ संवड्ढइ, तत्थ महल्लगस्स नामं रायमिलितो, इयरस्स गंगदत्तो, सो महल्लो जं जं किंचि लब्भइ तत्तो तस्सवि देइ, माऊए पुण अणिट्ठो, जहिं पेच्छइ तहिं कट्ठेण व पत्थरेण वा आहणइ, अन्नया इंदमहो जातो, ताहे पियरेण अप्पसागारियं आणेऊण आसंदस्स ओहाडियतो कतो जेमाविज्जइ, तीए कहवि दिट्ठो, ततो हत्थं घेत्तूण कड्ढितो, चंदणियाए पक्खित्तो, ताहे सो रुयइ, पिउणा पहाविओ, एत्थंतरे साहू भिक्खट्ठमतिगया, सेट्ठिणा पुच्छिया–भयवं ! माऊए पुत्तो अणिट्ठो हवइ ?, हंता हवइ, कहिं पुण ?, ताहे भणंति–"यं दृष्ट्वा वर्द्धते क्रोधः, स्नेहश्च परिहीयते । स विज्ञेयो मनुष्येण, एष मे पूर्ववैरिकः ॥ १ ॥ यं दृष्ट्वा वर्द्धते स्नेहः, क्रोधश्च परिहीयते । स विज्ञेयो मनुष्येण, एष मे पूर्वबान्धवः ॥ २ ॥ " ताहे सो भणइ–भयवं पव्वावेह ?, बाढंति, विसज्जितो, पव्वइओ, तेसिं आयरियाण सगासे भावावि सिणेहाणुरागेण पव्वइतो, ते साहू जाया, ईरियासमिया०, अणिस्सियं तवं करेंति, ताहे सो तत्थ नियाणं करेइ–जइ अत्थि इमस्स तवस्स नियमस्स संजमस्स य फलं तो आगमिस्से य काले जणमणनयणाणंदो भवामि, घोरं च तवं करेत्ता देवलोगं गओ, ततो चुतो वसुदेवपुत्तो वासुदेवो जातो, इयरो बलदेवो, एवं गंगदत्तेण वसणेण सामाइयं लद्धं ८ ॥

ऊसवे जहा एगंमि पच्चंतियग्गामे आभीराणि, ताणि साहूण पासे धम्मं सुणंति, ताहे देवलोगं भणंति, एवं तेसिं अत्थि धम्मे बुद्धी, अन्नया कयाइ इंदमहे वा अन्नंमि वा ऊसवे नगरं गयाणि, जारिसा बारवती, तत्थ लोगं पेच्छंति मंडियप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

साहियं सुगंधिविचित्तनेवत्थं, ताणि तं दट्ठूण भणंति–एस देवलोगो जो से तया साहूहिं वन्नितो, एत्ताहे जइ वच्चामो तो सुंदरतरं करेमो जेण अम्हेवि देवलोगे उववज्जामो, ताहे ताणि गंतूण साहूण साहेंति–जो तुब्भेहिं अम्हं कहितो देवलोगो सो पच्चक्खो अम्हेहिं दिट्ठो, साहू भणंति–न तारिसो देवलोगो, अतो अण्णारिसो अणंतगुणो, ततो ताणि अब्भहियजायविम्हयाणि पव्वइयाणि, एवं ऊसवेण सामाइयलंभो ९ ॥

'इड्ढि'त्ति, दसन्नपुरे नगरे दसन्नभद्दो राया, तस्स पंच देवीसयाणं अंतेउरं, एवं सो रूवेण जोव्वणेण बलेण वाहणेण य पडिबद्धो, एरिसं नत्थि अण्णस्सत्ति चिंतेइ, दसन्नकूडे पव्वए सामी समोसरितो, ताहे सो चिंतेइ–तहा कलं वंदामि जहा न अन्नेण वंदियपुव्वो, तं च अब्भत्थियं सक्को नाऊण चिंतेइ–वरागो अप्पाणं न याणइ, ततो राया महया समुदएण निग्गतो, वंदितो सविड्ढीए, सक्को य देवराया एरावणं विलग्गो, तस्स अट्ठ मुहे विउव्वइ, मुहे मुहे अट्ठ अट्ठ दंते, दंते दंते अट्ठ अट्ठ पुक्खरिणीतो, एक्केक्काए पुक्खरिणीए अट्ठ अट्ठ पउमे, पउमे पउमे अट्ठ अट्ठ पत्ते विउव्वइ, एक्केक्कंमि पत्ते अट्ठ अट्ठ बत्तीसइपत्तवद्धाणि दिव्वाणि नाडगाणि विउव्वइ, एवं सो सविड्ढीए उवगिज्जमाणो आगतो, ततो एरावणं विलग्गो चेव तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, ताहे सो हत्थी अग्गपाएहिं भूमीए ठितो, ताहे तस्स हत्थिस्स दसन्नकूडे पव्वए देवयाए पभावेण पायाणि उट्ठियाणि, ततो से नामं खायं–गयग्गपदगोत्ति, ताहे सो दसन्नभद्दो चिंतेइ–एरिसा कतो अम्हाणं इड्ढी ?, अहो कएल्लतो अणेण धम्मो, अहमवि करेमि, ताहे सो सव्वं छड्डेऊण पव्वइतो, एवं इड्ढीए सामाइयं लहइ १० ॥

इयाणिं सक्कारेण, एगो धिज्जाइतो तहारूवाणं थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा पव्वतिओ समहिलिओ, उग्गं पवज्जं करेंति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवरमवरोप्परं पीती न ओसरइ, महिला मणागं धिज्जाइणीति गव्वमुवहइ, मरिऊण देवलोगं गयाणि, जहाउयं भुत्तं ॥ इ-
तो य इलावद्धे णगरे इलादेवया, तं एगा सत्थवाही पुत्तकामा ओलग्गइ, सो चइऊण पुत्तो से जातो, नामं च से कयं
इलापुत्तोत्ति, इयरीवि गव्वदोसेण ततो चुया लंखगकुले उप्पन्ना, दोवि जोव्वणं पत्ताणि, अन्नया सा तेण लंखगचेडी दिट्ठा,
पुव्वभवरागेण अज्झोववण्णो, सा मग्गिज्जंतीवि न लब्भइ, जत्तिएण तुलति तत्तिएणवि सुवण्णेण, ताणि भणंति-एसा
अम्हाणमक्खयनिही, जइ सिप्पं सिक्खेइ अम्हेहि य समं हिंडइ तो देमो, सो तेहिं समं पहिंडितो सिक्खिओ य, ताहे विवा-
हनिमित्तं रण्णो पेच्छणयं करेहत्ति भणितो, वेण्णातडं गयाणि, तत्थ राया सअंतेउरो पेच्छइ, इलापुत्तो य खेड्डातो करेइ,
राया अहे दिट्ठी दारियाए, रायाणए य अदंते अण्णेऽवि न देंति, साहुसक्काररवो वट्टति, भणिओ राइणा-लंख ! पडणं
करेह, तं च किर एवं-वंससिहरे अड्डं कट्ठं कएल्लयं अच्छति, तत्थ य दो कीलगा, सो पाउगातो आविंधति, तातो य
पाउयातो मूले विंधियातो, ततो सपाउगो असिखेडगहत्थगतो आगासं उप्पइत्ता वंससिहरे कट्ठे आरुहिऊण सत्त करणाइं
अग्गिमे अड्डु काऊण पाउयातलियाए खीलगो पवेसियव्वो, ततो सत्त करणाइं पच्छिमद्धे दाऊण तत्थवि खीलगो पाउ-
यानालियाए घेत्तव्वो, जइ फिडिइ तो फिडितो संतो पडितो सतधा खंडिज्जइ, तेण तं कयं, रायावि दारियं पलोएइ, लो-
गेण कलयलो कतो, न य देइ, राया न देइत्तिकाउं, चिंतेइ-जइ एस मरइ तो अहं एयं दारियं परिणेमि, भणइ-न दिट्ठं,
पुणो करेह, तत्थवि न दिट्ठं, तइयंपि वारं कयं, चउत्थियाए वाराए भणितो-पुणो करेह, रंगो विरत्तो, ताहे सो इलापुत्तो
वंसग्गे ठितो चिंतेइ-धिरत्थु भोगाणं, एस राया एत्तियाहिं महिलाहिं न तित्तो, एयाए रंगोवजीवियाए लग्गिउं मग्गइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीआवश्यकमल० वृत्तौ उपोद्घाते ॥ ४६९ ॥

एयाए कारणेण मम मारिउमिच्छइ, सो य उब्भट्टितो, एगत्थ सिट्ठिघरे साहुणो पडिलाभिज्जमाणे पासइ, सव्वालंकारविभूसियाहिं इत्थीहिं, साहू य पसंतचित्तेण पलोएमाणो पेच्छइ, ताहे चिंतेइ–अहो धन्ना निःस्पृहा विषयेषु, अहं सेट्ठिसुतो सयणवग्गं परिच्चइत्ता आगतो, एत्थवि मे एसा अवत्था, तत्थेव विरागं गयस्स केवलनाणमुप्पण्णं, ताएवि चेडीए विरागे विभासा, अग्गमहिसीएऽवि, रण्णोऽवि पुणरावत्ती वेरग्गपरिणामो, एवं ते चत्तारि केवली जाया सिद्धा य ॥ एवं सक्कारेणवि सामाइयं लब्भइ ॥ अहवा इमेहिं कारणेहिं लंभो—

अब्भुट्ठाणे विणए परक्कमे साहुसेवणाए य । सम्मद्दंसणलंभो विरयाविरईए विरईए ॥ ८४८ ॥

अभ्युत्थाने सति सम्यग्दर्शनलाभो भवतीति क्रिया, विनीतोऽयमिति साधूनां धर्म्मकथनप्रवृत्तेः, तथा विणये अंजलिग्रहादिरूपे, तथा पराक्रमे कषायजयं प्रति क्रियमाणे, साधुसेवनायां च क्रियमाणायां कथंचित्तक्रियोपलब्ध्यादेः, सम्यग्दर्शनलाभो भवतीति क्रियाशेषः, तथा विरताविरतेः–देशविरतेः, विरतेः–सर्वविरतेर्लाभः, कथमिति द्वारं गतम् । तच्चेत्थं लभ्यं सत् कियन्तं कालं जघन्यत उत्कर्षतश्च भवतीति प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तस्स सुअस्स य छावट्ठी सागरोवमाइं ठिई । सेसाण पुव्वकोडी देसूणा होइ उक्कोसा ॥ ८४९ ॥

सम्यक्त्वस्य श्रुतस्य च–श्रुतज्ञानस्य च लब्धिमङ्गीकृत्य स्थितिः षट्षष्टिः सागरोपमाणि, कथमिति चेत्, उच्यते—

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नऽच्चुए अहव ताइं । अइरेगं नरभविअं नाणाजीवाण सव्वद्धा ॥ १ ॥ (वि. २७६२) नरजम्मपुव्वकोडीपुहुत्तमुक्कोसतो अहियं ॥ शेषयोः देशविरतिसर्वविरतिसामायिकयोरुत्कृष्टा स्थितिर्देशोना पूर्वकोटी, सप्तमासा-

सम्यक्त्वादिलाभे अभ्युत्थानादयः

॥ ४६९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सम्यक्त्व-श्रुतादि प्राप्ति अनन्तर जीवस्य संसारे स्थिति: वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

धिकवर्षाष्टकोना पूर्वकोटीतियावत्, जघन्यतस्त्वाद्यसामायिकत्रयस्य स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं, सर्वविरतिसामायिकस्य एकः समयः, चारित्रपरिणामारम्भसमयानन्तरमेव कस्याप्यायुष्कक्षयसम्भवात्, देशविरतिप्रतिपत्तिपरिणामस्त्वान्तर्मौहूर्त्तिक एव, द्विविधत्रिविधादिभङ्गबहुलप्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपत्वात्, (सर्वविरतिश्रवणपूर्वकं आसक्त्यशक्तिमानेन ग्रहणपरिणामात् ग्रहणाच्च तस्याः) सर्वजीवापेक्षया तु सर्वाणि सर्वदा ॥ द्वारम् ॥ सम्प्रति कतीति द्वारं, कति–कियन्तो नाम वर्त्तमानसमये सम्यक्त्वादिसामायिकानां प्रतिपत्तारः प्राक् प्रतिपन्नाः प्रतिपतिता वा ?, तत्र प्रतिपद्यमानकेभ्यः प्राक्प्रतिपन्नाः प्रतिपतिताश्च सम्भवन्तीति तानेव प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरआ पलिअस्स असंखभागमित्ताओ । सेढीअसंखभागो सुए सहस्सग्गसो विरई ॥ ८५० ॥

सम्यक्त्वदेशविरताः प्राणिनः सम्यक्त्वं देशविरतिं च प्रतिपद्यमानाः प्राणिनः पल्यस्य–क्षेत्रपल्योपमस्य असंख्यभागमात्राः, इयं भावना–क्षेत्रपल्योपमस्य असङ्ख्येये भागे यावन्तः प्रदेशास्तावन्त एकस्मिन् विवक्षिते समये उत्कर्षतः सम्यक्त्वसामायिकं देशविरतिसामायिकं च प्रतिपद्यमानाः प्रत्येकं लभ्यन्ते, किन्तु देशविरतिसामायिकप्रतिपत्तृभ्यः सम्यक्त्वप्रतिपत्तारोऽसङ्ख्येयगुणाः प्रतिपत्तव्याः, जघन्यतस्तूभयेऽपि एको द्वौ वेति, **'सेढीअसङ्खभागो सुए'** इति इह संवर्त्तितचतुरस्रीकृतस्य लोकस्य सप्तरज्जुप्रमाणा एकैकप्रदेशा पङ्क्तिः श्रेणिः, तस्या असङ्ख्येयभागः श्रुते–सामान्यश्रुतेऽक्षरात्मके प्रतिपत्तारो, लभ्यन्त इति शेषः, किमुक्तं भवति ?–यथोक्तरूपायाः श्रेणेः खल्वसङ्ख्येयतमे भागे यावन्तो नभःप्रदेशास्तावन्त एकस्मिन् विवक्षिते समये उत्कर्षतः सामान्यश्रुतेऽक्षरात्मके सम्यक्त्वमिथ्यात्वानुगते प्रतिपद्यमाना भवन्तीति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

जघन्यतस्त्वेको द्वौ वा, 'सहस्सग्गसो विरती' इति सहस्रशो विरतिमधिकृत्य उत्कर्षतः प्रतिपत्तारो, ज्ञेया इत्यध्याहारः, जघन्यतस्त्वेको द्वौ वेति ॥ सम्प्रति प्राक्प्रतिपन्नान् प्रतिपतितांश्च प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरया पडिवन्ना संपई असंखिज्जा। संखिज्जा य चरित्ते तीसुवि पडिआ अणंतगुणा ॥ ८५१ ॥

'सम्यक्त्वदेशविरताः' सम्यग्दृष्टयो देशविरताश्च 'प्रतिपन्नाः' प्राक्प्रतिपन्नाः 'सम्प्रति' विवक्षिते वर्त्तमानसमये उत्कर्षतो जघन्यतश्चासङ्ख्येयाः, प्राप्यन्ते इति शेषः, किन्तु जघन्यपदादुत्कृष्टपदे विशेषाधिकाः, एते च प्रत्येकं प्रतिपद्यमानकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, 'संखेज्जा य चरित्ते' इति चरित्रे प्राक्प्रतिपन्नाः सङ्ख्येयाः, एतेऽपि स्वस्थाने प्रतिपद्यमानकेभ्यः संख्येयगुणाः, उक्तंच—"सट्ठाणे सट्ठाणे पुव्वपवन्ना पवज्जमाणेहिं। होंति असंखेज्जगुणा संखेज्जगुणा चरित्तस्स ॥ १ ॥" (वि. २११५) 'तीसुवि पडिया अणंतगुणा' इति पूर्वप्रतिपन्नेभ्यश्च चरणप्रतिपतिता अनन्तगुणाः, तेभ्यो देशविरतिप्रतिपतिता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सम्यक्त्वप्रतिपतिता असङ्ख्येयगुणाः, त्रिभ्योऽपि—चरणदेशसम्यक्त्वेभ्यः एतानेव चरणादिगुणान् प्राप्य ये प्रतिपतिताः ते अनन्तगुणाः तत्र सम्यग्दृष्ट्यादिभ्यः प्रतिपद्यमानकेभ्यः, आह च भाष्यकृत्—"चरणपडिया अणंता तदसंखगुणा य देसविरईतो। संमादसंखगुणिया ततो सुयातो अणंतगुणा ॥१॥" (वि. २७७२) ॥ तदेवमत्र श्रुतवर्ज्जसामायिकत्रयस्य पूर्वप्रतिपन्नाः प्रतिपतिताश्चोक्ताः, अथ श्रुतस्य तानाह—

सुअपडिवन्ना संपइ पयरस्स असंखभागमित्ताओ। सेसा संसारत्था सुअपरिवडिआ हु ते सव्वे ॥ ८५२ ॥

सम्यग्मिथ्यारूपस्य सामान्येनाक्षरात्मकस्य श्रुतस्य ये पूर्वप्रतिपन्नास्ते सम्प्रति—वर्त्तमानसमये प्रतरस्यासङ्ख्येयभाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मात्राः प्राप्यन्ते, किमुक्तं भवति ?–सप्तरज्जुप्रमाणा श्रेणिः श्रेण्या गुणिता प्रतरं, तस्य प्रतरस्यासङ्ख्येयतमे भागे याः श्रेणयोऽसङ्ख्येयास्तासु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणा विवक्षितसमये श्रुतप्रतिपन्ना इति, उक्तं च–"सा सेढी सेढिगुणा पयरं तदसंखभाग सेढीणं। संखाईयाण पएसरासिमाणासु य पवन्ना ॥ १ ॥" (वि.२७६८) श्रुतप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकेभ्यस्तु ये शेषाः संसारस्था जीवाः, भाषालब्धिरहिता पृथिव्यादय इत्यर्थः, ते सर्वेऽपि व्यावहारिकराश्यनुगता भाषालब्धिं प्राप्य प्रतिपतितत्वात् श्रुतप्रतिपतिता मन्तव्याः, ते च सम्यक्त्वप्रतिपतितेभ्योऽनन्तगुणाः ॥ गतं कतिद्वारम्, अधुना सान्तरद्वारं वक्तव्यम्, सकृदवाप्तमपगतं पुनः सम्यक्त्वादि कियता कालेनावाप्यते ?, तत्र श्रुतस्याविशिष्टस्याक्षरात्मकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षतः प्राह—

कालमणंतं च सुए अद्धापरिअट्टओ य देसूणो। आसायणबहुलाणं उक्कोसं अंतरं होइ ॥ ८५३ ॥

श्रुते–श्रुतस्य सामान्यतोऽक्षरात्मकस्य उत्कृष्टमन्तरं भवति कालोऽनन्त एव, चशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, उभयत्राप्यनुस्वारोऽलाक्षणिकः, स चानन्तः कालोऽसङ्ख्यातपुद्गलपरावर्त्तमानः प्रतिपत्तव्यः, तथाहि–यदा कश्चित् द्वीन्द्रियादिः श्रुतलब्धिमान् मृत्वा पृथिव्यादिषूत्पद्य तत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा झटिति पुनरपि द्वीन्द्रियादिष्वागच्छति तदा स भूयोऽपि श्रुतलब्धिमान् भवतीति तस्यान्तरं जघन्यमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं, यदा तु द्वीन्द्रियादिः कश्चिन्मृतो वनस्पतिषूत्कृष्टं कालं पर्यटति तस्योत्कृष्टमन्तरं, वनस्पतिकालश्चासङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्तमान इति, सम्यक्त्वादिसामायिकेषु त्रिषु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सम्यक्त्वादिभ्यश्च्युतस्य पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तेन सम्यक्त्वादिप्रतिपत्तिभावात्, उत्कृष्टं त्वाह–'अद्धापरियट्टओ य देसूणो'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्द्धः—अपार्द्धः पुद्गलपरावर्त्तो देशोनः उत्कृष्टमन्तरं सम्यक्त्वादिसामायिकानां त्रयाणां भवति, केषामित्याह—आशातनाबहुलानां, उक्तं च—"तित्थयर पवयण सुयं आयरियं गणहरं महिड्ढीयं । आसायंतो बहुसो अणंतसंसारिओ होइ ॥ १ ॥" पुद्गलपरावर्त्तस्वरूपं पंचसङ्ग्रहटीकातो वेदितव्यं, तत्र सविस्तरमभिधानात्॥ गतमन्तरद्वारम्, अभिधातव्यं कियन्तं कालमविरहेण एको द्व्यादयो वा सामायिकं प्रतिपद्यन्ते इति ?, तत्राह—

सम्मसुअमगारीणं आवलिअअसंखभागमित्ताओ। अट्ठ समया चरित्ते सेसेसिं जहन्न दो समया ॥ ८५४ ॥

सम्यक्त्वश्रुतागारिणां—सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानां नैरन्तर्येण एकैकस्मिन् द्व्यादिषु वा प्रतिपद्यमानेषु आवलिकाया असङ्ख्येयभागमात्राः समयाः प्रतिपत्तिकालः, किमुक्तं भवति ?—सर्वस्मिन्नपि लोके सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकदेशविरतिसामायिकानामुत्कर्षत आवलिकाया असङ्ख्येयभागवर्त्तिनः समयान् यावदविरहितमेकैको द्व्यादयो वा प्रतिपत्तारः प्राप्यन्ते, ततः परं त्रयाणामपि प्रतिपत्तेरुपरमादवश्यं विरहकालो भवति, तथा चारित्रे निरन्तरं प्रतिपत्तिकालोऽष्टौ समयाः, ततः परमवश्यं विरहः, जघन्यतस्तु सर्वेष्वपि सामायिकेष्वविरहेण प्रतिपत्तिकालो द्वौ समयौ ॥ इह विरहकालो द्वारगाथायामनुद्दिष्टोऽपि अविरहकालस्य प्रतिपक्षभूतत्वात् सूचितो द्रष्टव्यः, ततः सम्प्रति सम्यक्त्वादिप्रतिपत्तिविरहकालमानमाह—

सुअसम्म सत्तगं खलु विरयाविरईइ होइ बारसगं । विरईइ पन्नरसगं विरहिअकालो अहोरत्तो ॥ ८५५ ॥

सम्यक्त्वश्रुतयोः सर्वस्मिन्नपि लोके प्रतिपत्तिविरहकाल उत्कर्षतः 'सत्तग'मिति अहोरात्राणां सप्तकमेव, खलुशब्दोऽव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

धारणार्थः, ततः परमवश्यं क्वचित्प्रतिपद्यते, जघन्यतस्त्वेकः समयः, विरताविरतेः–देशविरतेरुत्कृष्टः प्रतिपत्तिविरहकालो द्वादशकम्–अहोरात्राणि द्वादश, जघन्यतस्तु त्रयः समयाः, उक्तं च चूर्णौ–"विरताविरतीए जहन्नेणं तइओ समओ, उक्कोसेणं बारस अहोरत्ता" इति, 'विरतेः' सर्वविरतेरुत्कर्षतः प्रतिपत्तिविरहकालः पञ्चदशकमहोरात्राणां, जघन्यतस्तु समयत्रयं ॥ द्वारम् ॥ साम्प्रतं भवद्वारं वक्तव्यम्, तत्र कियतो भवानेको जीवः किं सामायिकं लभते इति प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तदेसविरया पलिअस्स असंखभागमित्ताओ । अट्ठ भवा उ चरित्ते अणंतकालं च सुअसमए ॥ ८५६ ॥

सम्यक्त्ववन्तो देशविरतिमन्तश्च स्वं स्वं सामायिकं पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रान् भवान् यावत् लभन्ते, इयमत्र भावना–सम्यक्त्वसामायिकं देशविरतिसामायिकं च प्रत्येकं जघन्यत एकं भवम् उत्कर्षतः क्षेत्रपल्योपमस्यासङ्ख्येयतमे भागे यावन्तो नभःप्रदेशास्तावतो भवान् यावदेको जीवः प्रतिपद्यते, नवरं सम्यक्त्वभवासङ्ख्येयकादेशविरतिभवासङ्ख्येयकं लघुतरं द्रष्टव्यमिति, चारित्रे विचार्ये उत्कर्षतो भवा–आदानभवा अष्टौ, ततो नियमतः सिद्ध्यति, जघन्यतस्त्वेको भवः, 'अणंतकालं च सुयसमए' इति अनन्तकालम्–अनन्तभवरूपं यावत् श्रुतसमये–सामान्यश्रुतसामायिके प्रतिपन्ना भवंति उत्कर्षतो, जघन्यतस्त्वेकं भवं, यथा मरुदेवीति । गतं भवद्वारम्, अधुना आकर्षद्वारमाह—

तिण्ह सहस्सपुहुत्तं सयपुहुत्तं च होइ विरईए । एगभवे आगरिसा एवइआ हुंति नायव्वा ॥ ८५७ ॥

आकर्षणमाकर्षः, प्रथमतया मुक्तस्य वा ग्रहणमित्यर्थः, ते च द्विधा–एकभविका नानाभविकाश्च, तत्र प्रथमत एकभविका उच्यन्ते–'त्रयाणां' सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानामेकभवे सहस्रपृथक्त्वमाकर्षणामुत्कर्षतो भवति, विरतेः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सम्यक्त्व-आदि प्राप्ते: अनन्तर भव-संख्या गणना

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सर्वविरतेस्त्वेकभवे शतपृथक्त्वमाकर्षाणामुत्कर्षतः, पृथक्त्वमिति द्विप्रभृतेरानवभ्यः, एवमेते उत्कर्षत एकभविका आकर्षा भवन्ति ज्ञातव्याः, जघन्यतस्तु चतुर्णामप्येक एवैकस्मिन् भवे, उक्तं च चूर्णौ–"सुयसामाइयं एगभवे जहन्नेणं एक्कसिं आगरिसेइ, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं वारा, एवं संमत्तस्सऽवि देसविरतीए य, सव्वविरतिं पुण जहन्नेण एक्कसिं उक्कोसेणं सयपुहुत्तं वारा" इति । सम्प्रति (तान्) नानाभवगतान् प्रतिपादयति—

तिण्ह सहस्समसंखा सहसपुहुत्तं च होइ विरईए । नाणभवे आगरिसा एवइआ हुंति नायव्वा ॥ ८५८ ॥

त्रयाणां–सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसामायिकानां नानाभवेष्वाकर्षाणामुत्कर्षतो भवन्त्यसङ्ख्येयानि सहस्राणि, यतस्त्रयाणामप्येकस्मिन् भवे सहस्रपृथक्त्वमाकर्षाणामुक्तं, भवाश्च क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागगतनभःप्रदेशतुल्याः, 'संमत्तदेसविरया पलियस्सासंखभागमेत्ताओ' इति वचनात्, ततः सहस्रपृथक्त्वं तैर्गुणितं असङ्ख्येयानि सहस्राणि भवन्ति, सहस्रपृथक्त्वं नानाभवेष्वाकर्षाणामुत्कर्षतो भवति विरतेः–सर्वविरतेः, तस्या हि खल्वेकभवे शतपृथक्त्वमाकर्षाणामुक्तं, भवाश्चाष्टौ, ततः शतपृथक्त्वमष्टभिर्गुणितं सहस्रपृथक्त्वं भवति, एतावन्तो नानाभवेष्वाकर्षा भवन्ति ज्ञातव्याः, अन्ये पठन्ति–'दोण्ह सहस्समसंखा' इति, तत्रापि श्रुतसामायिकं सम्यक्त्वसामायिकनान्तरीयकत्वादनुक्तमपि प्रतिपत्तव्यं, सामान्यश्रुतस्य त्वक्षरात्मकस्य नानाभवेष्वाकर्षा अनन्तगुणाः ॥ गतमाकर्षद्वारं, सम्प्रति स्पर्शद्वारमाह—

सम्मत्तचरणसहिआ सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं । सत्त य चउदसभागे पंच य सुअदेसविरईए ॥ ८५९ ॥

'सम्यक्त्वचरणसहिताः' सम्यक्त्वचरणयुक्ताः प्राणिन उत्कर्षतः सर्वं लोकं स्पृशंति, किं तर्हि व्याप्तिमात्रेण ?, नेत्याह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

निरवशेषं–प्रतिप्रदेशव्याप्या, समस्तमप्यसङ्ख्यातप्रदेशात्मकं, एते च केवलिसमुद्घातावस्थायां केवलिनः प्रत्येतव्याः, जघन्यतस्त्वसङ्ख्येयभागं स्पृशन्तीति स्वयमेव द्रष्टव्यम्, एकजीवस्य लोकासङ्ख्येयभागेऽवस्थानात्, तथा 'सत्त य चोद्दसे' त्यादि श्रुतसामायिकसहिताः सप्त चतुर्दशभागान् स्पृशन्ति, देशविरत्या सहिताः पञ्च चतुर्दशभागान्, इयमत्र भावना–इह लोकश्चतुर्दशभागः क्रियते, तद्यथा–सप्त भागा अधः सप्त भागा उपरि, तत्र रत्नप्रभाया उपरितलादारभ्य यावत् तस्या अधोऽवकाशान्तरमेतावत्प्रमाणः प्रथमो भागः, ततः शर्कराप्रभाया उपरितलादारभ्य यावदधस्तस्या अवकाशान्तरमेतावान् द्वितीयो भागः, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु भावनीयम्, एषोऽधः सप्तभागानां विधिः, उपरितनसप्तभागानामयं विधिः–रत्नप्रभाया उपरितलादारभ्य यावत् सौधर्म्मः कल्पः एष प्रथमो भागः, सौधर्मकल्पस्योपरितलात् परतो यावन्महेन्द्रकल्प एष द्वितीयः, माहेन्द्रकल्पविमानानामुपरि यावत् ब्रह्मलोकलान्तकपर्यन्तस्तावान् तृतीयः, ततः परो महाशुक्रसहस्रारपर्यन्तश्चतुर्थः, ततः परं यावदच्युतकल्पः एष पञ्चमः, ततः परो ग्रैवेयकपर्यन्तः षष्ठः, ततो लोकान्तः सप्तमः, उक्तं च चूर्णौ–"लोगो चउद्दसभागे कीरइ, हेट्ठा उवरिंपि सत्त सत्त चेव, कहं ?, रयणप्पभातो आरब्भ जाव से उवासंतरं एयं सव्वं पढमो भागो, एवं सेसासुवि पुढवीसु, एते अहे सत्त भागा, उवरिं इमो भागविही–रयणप्पभाए उवरिमतलातो आरद्धं जाव सोहम्मो कप्पो एस पढमो भागो, सोहम्मगाणं विमाणाणं उवरिं आरद्धं जाव सणंकुमारमाहिंदा एस बिइतो, एवं ततिओ जाव बंभलोगलंतगा, चउत्थो जाव महासुक्कसहस्सारा, पंचमो आणयाई चउरो कप्पा, छट्ठा गेवेज्जा, सेसा जाव लोगंतो सत्तमो"त्ति, तत्र सम्यक्त्वचरणसहितः प्रकृष्टतपस्वी श्रुतज्ञानोपेतो यदाऽनुत्तरसुरेष्विलिकागत्या समुत्पद्यते तदा लोकस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

सप्त चतुर्दशभागान् स्पृशति, 'सत्त ये' त्यत्र चशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादधः पञ्च चतुर्दशभागान् श्रुतज्ञानी स्पृशतीति प्रतिपत्तव्यं, तथाहि–सम्यग्दृष्टिः श्रुतज्ञानी पूर्वं नरकेषु बद्धायुष्कः षष्ठपृथिव्यां तमःप्रभायामिलिकागत्या समुत्पद्यमानः पञ्च चतुर्दशभागान् लोकस्य स्पृशतीति, देशविरतस्त्वच्युतदेवलोके समुत्पद्यमानः पञ्च लोकस्य चतुर्दशभागान् स्पृशतीति प्रतिपत्तव्यम्, अधस्तु देशविरतो 'घण्टालाला' न्यायेनापि परिणाममपरित्यजन्नोत्पद्यते, ततोऽधोभागेषु न चिन्तितः, आह च चूर्णिकृत्–"देसविरतो हेट्ठा न उववज्जइ तेण पंच, उवरिं अच्चुयं जावत्ति भणिय" मिति ॥ तदेवं क्षेत्रमधिकृत्य स्पर्शना प्रोक्ता, अथ भागस्पर्शना वक्तव्या, किं सामायिकं श्रुतादि कियद्भिर्जीवैः स्पष्टं, प्राप्तपूर्वमिति भावः, इत्येतदुपदर्शयन्नाह—

सव्वजीवेहिं सुअं सम्मचरित्ताइं सव्वसिद्धेहिं । भागेहिं असंखिज्जेहिं फासिया देसविरईओ ॥ ८६० ॥

सर्वजीवैः सांव्यवहारिकराश्यन्तर्गतैः श्रुतं–सामान्येनाक्षरात्मकं श्रुतं स्पृष्टं, द्वीन्द्रियादिभावस्य तैः सर्वैरप्यनन्तशः स्पृष्टत्वात्, तत्र च सामान्यश्रुतसद्भावात्, सम्यक्त्वचारित्रे सर्वसिद्धैः स्पृष्टे, तदनुभवमन्तरेण सिद्धत्वायोगात्, भागैरसङ्ख्येयैः स्पृष्टा देशविरतिः, इयमत्र भावना–सर्वसिद्धानामसङ्ख्येया भागा बुद्ध्या क्रियंते, तत्रैकमसङ्ख्येयं भागं मुक्त्वा शेषैः सर्वैरप्यसङ्ख्येयैर्भागैर्देशविरतिः स्पृष्टा, एकेन त्वसङ्ख्येयेन भागेन न स्पृष्टा, यथा मरुदेव्या भगवत्या, उक्तं च चूर्णौ–असंखेज्जेहिं भागेहिं देसविरतिं काउं पच्छा चारित्तं पडिवज्जित्ता सिद्धी पत्ता, जे पुण सुद्धाइं चेव सम्मत्तचरित्ताइं फासेऊण मोक्खं गया ते देसविरतिसिद्धाणमसंखेज्जइभागो" इति ॥ गतं स्पर्शनाद्वारम्, इदानीं निरुक्तिद्वारम्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र चतुर्विधस्यापि सामायिकस्य क्रियाकारकभेदपर्यायैः शब्दार्थकथनरूपं निर्वचनं निरुक्तिः, तत्र सम्यक्त्वसामायिक-निरुक्तिमभिधित्सुराह—

सम्मद्दिट्ठी अमोहो सोही सब्भावदंसणं बोही । अविवज्जओ सुदिट्ठित्ति एवमाई निरुत्ताइं ॥ ८६१ ॥

सम्यगिति प्रशंसायां, सम्यक्–प्रशस्ता मोक्षाविरोधित्वात् दृष्टिः–दर्शनम्, अर्थानां जीवादीनामिति गम्यते, सम्यग्-दृष्टिः १ तथा मोहनं मोहो–वितथग्रहः न मोहोऽमोहः अवितथग्रहः २ शोधनं शुद्धिः मिथ्यात्वमलापगमात्, तत्त्वार्थ-श्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं ३ तथा सत्–जिनाभिहितं प्रवचनं तस्य भावो–यथावस्थितं स्वरूपं सद्भावस्तस्य दर्शनम्–उपल-म्भः सद्भावदर्शनं ४ बोधनं बोधिः–परमार्थावगमः ५ अतथा अतस्मिन् तदध्यवसायो विपर्ययः, न विपर्ययः अविपर्ययः, तत्त्वाध्यवसाय इति भावः ६ तथा सुशब्दः प्रशंसायां, शोभना दृष्टिः सुदृष्टिः, एवमादीनि सम्यग्दर्शनस्य निरुक्तानि–क्रिया-कारकभेदैः पर्यायाः ॥ सम्प्रति श्रुतसामायिकनिरुक्तिप्रदर्शनार्थमाह—

अक्खर सन्नी सम्मं साइयं खलु सपज्जवसिअं च । गमियं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ८६२ ॥

इयं च पीठिकायामेव व्याख्यातेति भूयो न व्याख्यायते ॥ देशविरतिसामायिकनिरुक्तिप्रतिपादनायाह—

विरयाविरई संवुडमसंवुडे बालपंडिए चेव । देसिक्कदेसविरई अणुधम्मोऽगारधम्मो अ ॥ ८६३ ॥

विरमणं विरतं, भावे क्तप्रत्ययः, न विरतिः अविरतिः, विरतेन युक्ता अविरतिर्विरताविरतिः, तथा संवृताः–स्थगिताः, परित्यक्ता इत्यर्थः, असंवृता–अपरित्यक्ताः, संवृताश्च असंवृताश्च संवृतासंवृताः सावद्ययोगा यस्मिन् सामायिके तत् संवृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तासंवृतम्, अत्रोत्तरपदलोपो यथा भीमसेनो भीम इत्यत्र, तथा बालव्यवहारयोगात् बालं पण्डितव्यवहारयोगात् पण्डितं, बालं च तत् पण्डितं च बालपण्डितं, तथा देशः–स्थूलप्राणातिपातादिः एकदेशो वृक्षच्छेदनादिस्तयोर्विरतिः–विरमणं यस्यां निवृत्तौ सा देशैकदेशविरतिः, तथा गरीयान् साधुधर्म्मः, सकलपापनिवृत्त्यात्मकत्वात्, तदपेक्षयाऽणुः–अल्पो धर्मो देश-विरतिलक्षणः अणुधर्म्मः, तथा न गच्छन्तीत्यगा–वृक्षास्तैः कृतमा समन्तात् राजते इत्यागारं–गृहं तत्र स्थितानां धर्म्मोऽ-गारधर्म्मः, मयूरव्यंसकादित्वात् मध्यमपदलोपी समासः ॥ सम्प्रति सर्वविरतिसामायिकनिरुक्तिप्रदर्शनार्थमाह—

सामाइअं समइअं सम्मावाओ समास संखेवो । अणवज्जं च परिन्ना पच्चक्खाणे अ ते अट्ठ ॥ ८६४ ॥

समो–रागद्वेषयोरपान्तरालवर्त्ती मध्यस्थः, इण् गतौ, अयनं अयो, गमनमित्यर्थः, समस्य अयः समायः–समीभूतस्य सतो मोक्षाध्वनि प्रवृत्तिः, समाय एव सामायिकं, विनयादेराकृतिगणत्वात् 'विनयादिभ्य' इति स्वार्थिक इकण् प्रत्ययः, एकान्तोपशान्तगमनमिति भावः १, 'समयिक'मिति सम्यक्शब्दार्थे समित्युपसर्गः, सम्यक् अयः समयः–सम्यग्दयापूर्वकं जीवेषु प्रवर्त्तनं, समयोऽस्यास्तीति 'अतोऽनेकस्वरा'दिति मत्वर्थीय इकप्रत्ययः २, तथा सम्यग्–रागद्वेषपरिहारेण वदनं वादः सम्यग्वादः, रागादिपरित्यागेन यथावद्वदनमित्यर्थः ३, तथा 'असू क्षेपणे' असनं आसः, क्षेप इत्यर्थः, समूशब्दः प्रशंसार्थः, शोभनमसनं समासः, संसाराद्बहिर्जीवस्य जीवात् कर्म्मणो वा क्षेपणं ४ तथा संक्षेपणं सङ्क्षेपः–स्तोकाक्षरं महार्थं च सामायिकं, तत्र स्तोकाक्षरं कतिपयाक्षरात्मकत्वात् महार्थं द्वादशाङ्गपिण्डार्थत्वात् ५, 'अणवज्जं चे'ति अवद्यं–पापं नास्त्यवद्यमस्मिन्नित्यनवद्यं सामायिकं ६, तथा परि–समन्तात् पापपरित्यागेन ज्ञानं परिज्ञा सामायिकं ७, तथा परिहर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

णीयं वस्तु प्रति आख्यानं–गुरुसाक्षिकनिवृत्तिकथनं ८, एते अष्टौ सामायिकपर्यायाः । अथ सामायिकपर्यायाणामभिधानं किमर्थं ?, उच्यते, असम्मोहप्रतिपत्त्यर्थम् , तथाहि–यथा चन्द्रः शशी निशाकरो रजनीकर उडुपतिरित्येवमादिषु चन्द्रपर्यायेषु आदित्यः सविता भास्करो दिनकर इत्येवमादिषु सूर्यपर्यायेष्वभिहितेषु चन्द्रसूर्यपर्यायाऽभिज्ञस्य सत एकस्मिन् शशिपर्याये केनाप्युक्ते समस्तसूर्यपर्यायव्युदासेन चन्द्रपर्यायेषु यदिवा सूर्यपर्याये एकस्मिन् केनाप्युक्ते समस्तचन्द्रपर्यायपरित्यागेन समेषु सूर्यपर्यायेषु सम्प्रत्ययो भवति, नतु मुह्यति, एवं चतुर्णामपि सामायिकानां पृथक् पर्यायेष्वभिहितेषु तदभिज्ञस्य सत एकस्य सामायिकस्यैकस्मिन् पर्यायेऽभिहिते शेषसामायिकपर्यायव्युदासेन विवक्षितसामायिकपर्यायेषु सर्वेषु प्रत्ययो भवति, न तु मोहं यातीति ॥ साम्प्रतं सर्वविरतिसामायिकपर्यायार्थानामष्टानामप्यनुष्ठातॄन् यथासङ्ख्यमष्टावेव दृष्टान्तभूतान् महात्मनः प्रतिपादयन्नाह—

दमदंते १ मेअज्जे २ कालगपुच्छा ३ चिलाय ४ अत्तेअ ५ ।
धम्मरुइ ६ इला ७ तेयलि ८ सामइए अट्ठुदाहरणा ॥ ८६५ ॥

सामायिके–सर्वविरतिसामायिकेऽष्टानामपि पर्यायार्थानां यथाक्रममम्मून्यष्टावुदाहरणानि, तद्यथा–सामायिकशब्दार्थानुष्ठाने दमदन्तो महर्षिः, समयिकशब्दार्थानुष्ठाने मेतार्यः, सम्यग्वादशब्दार्थानुष्ठाने कालकाचार्यपृच्छा, समासशब्दार्थानुष्ठाने चिलातिसुतः, सङ्क्षेपशब्दार्थानुष्ठाने आत्रेयः, अयं चोपलक्षणं कपिलादीनां, अनवद्यशब्दार्थानुष्ठाने धर्म्मरुचिः,

आ. सू. ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सर्वविरति सामायिकस्य अष्ट पर्याय नामानि एवं प्रत्येक नाम्न: कथानक:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

परिज्ञाशब्दार्थानुष्ठाने इलापुत्रः, प्रत्याख्यानशब्दार्थानुष्ठाने तेतलिसुतः, एष गाथासमासार्थः ॥ भावार्थस्तु कथानकेभ्योऽवसेयः, तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति दमदन्तानगारचरितवर्णनमद्यकालमनुष्याणां संवेगोत्पादनाय क्रियते—

हत्थिसीसयं नगरं, तत्थ दमदंतो राया । इतो य–हत्थिणाउरे नयरे पंच पंडवा, तेसिं च तस्स य परोप्परं वइरं, जतो तेहिं पंचहिं पंडवेहिं दमदंतस्स जरासंघमूलं रायगिहं गयस्स तस्स संतिओ उ सबो विसओ दड्ढो लूडितो य, अन्नया दमदंतो आगतो, तेण हत्थिणापुरं रोहियं, ते भएण न निंति, तो दमदंतेण भणिया–सीयाला चेव तुब्भे, सुण्णगविसए जहिच्छियमाहिंडह, जाव अहं जरासंघसगासं गतो ताव मम विसयं लूडेह, इयाणिं निप्फिडह, ते न निंति, ताहे सविसयं गतो, अण्णया निविण्णकामभोगो पव्वइतो, ततो एगल्लविहारं पडिवन्नो, विहरंतो हत्थिणाउरं गतो, तस्स बाहिं पडिमं ठितो, जुहिट्ठिलेण अणुजत्तानिग्गएण वंदितो, पच्छा सेसेहिवि चउहिं पंडवेहिं वंदितो, ताहे दुज्जोहणो आगतो, तस्स मणुस्सेहिं कहियं–जहा सो एसो दमदंतो, तेण सो माउलिंगेण आहतो, पच्छा खंधावारेण एन्तेण पत्थरं पत्थरं खिवंतेण पत्थररासीकतो, जुहिट्ठिलो नियत्तो पुच्छेइ–एत्थ साहू आसि, से कहियं–एस सो पत्थररासी दुज्जोहणेण कतो, ताहे सो अंबाडितो, ते य पत्थरा अवणीया, तेलेण अब्भंगितो खामितो य, तस्स किर भगवतो दमदंतस्स दुज्जोहणे पंडवेसु य समो भावो आसि, एवं कावयं ॥ अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

निक्खंतो हत्थिसीसाओ दमदंतो कामभोगमवहाय। नवि रज्जइ रत्तेसुं दुट्ठेसु न दोसमावज्जे ॥ १५१ ॥ (भा०)

हस्तिशीर्षान्नगरात् निष्क्रान्तः–प्रव्रजितो दमदन्तो राजा कामभोगानपहाय, कामप्रधाना भोगाः–शब्दादयस्तान् परि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

त्यज्य, स च नापि रक्तेषु-अनुरक्तेषु रज्यते-प्रीतिं करोति, नापि द्विष्टेषु दोषमापद्यते, वर्त्तमानकालनिर्देशस्तत्कालापेक्षया, युक्तं चैतत्, यतो मुनय एवंविधा एव भवन्ति ॥ तथा चाह—

वंदिज्जमाणा न समुक्कसंति, हीलिज्जमाणा न समुज्जलंति ।
दंतेण चित्तेण चरंति धीरा, मुणी समुग्घाइअरागदोसा ॥ ८६६ ॥

वन्द्यमाना मुनयो न समुत्कर्षन्ति-न समुत्कर्षं यान्ति, नापि हील्यमानाः-निन्द्यमानाः समुज्वलन्ति-कोपाग्निं प्रकटयन्ति, किन्तु दान्तेन-उपशान्तेन चित्तेन धीरा मुनयः समुद्घातितरागद्वेषाश्चरन्ति ॥

तो समणो जइ सुमणो भावेण य जइ न होइ पावमणो। सयणे य जणे अ समो समो अ माणावमाणेसु ॥८६७॥

इह समण इति न केवलं श्रमण उच्यते, किन्तु प्राकृतशैल्या समनाः, अपिच समनाः 'तो'त्ति ततः-तदा भण्यते-यदि शोभनं-धर्म्मध्यानादिप्रवृत्तं मनो यस्यासौ सुमना भवति, तथा भावेन-आत्मपरिणामलक्षणेन न भवति पापमनाः, निदानप्रवृत्तपापमना न भवतीति भावना, तथा स्वजने च-भ्रात्रादिके जने वा-अन्यस्मिन् समः-तुल्यः, समश्च मानापमानयोः ॥ तदा हि यथावस्थितमनोयुक्ततया समना इति वक्तुं शक्यते ॥

नत्थि अ से कोइ वेसो पिओ अ सव्वेसु चेव जीवेसु । एएण होइ समणो एसो अन्नोऽवि पज्जाओ ॥ ८६८ ॥

नास्ति 'से' तस्य साधोर्यदि कश्चनापि द्वेष्यः प्रियश्च, सङ्क्लिष्टनरकतिरापनोपद्रवणादिक्रियातो निवृत्ततया, सर्वेष्वेव जीवेषु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सर्वेषामपि जीवानां, तत एतेन कारणेन भवति समनाः एषः, प्राकृतशैल्या समण इत्यस्यान्यः पर्यायः, अपिः सम्भावने, एवमन्येऽपि तत्तदर्थघटनात् पर्यायाः सम्भावनीयाः ॥

सम्प्रति मेतार्यकथानकम्–साकेते नगरे चंदवडंसओ राया, तस्स दुवे पत्तीओ–सुदंसणा य पियदंसणा य, तत्थ सुदंसणाए दुवे पुत्ता–सागरचंदो मुणिचंदो य, पियदंसणाएवि दो पुत्ता–गुणचंदो बालचंदो य, सागरचंदो जुवराया, मुणिचंदस्स उज्जेणी दिन्ना कुमारभोत्तीए ॥ इओ य–चंडवडिंसतो राया माहमासे पडिमं ठितो वासघरे, सागारं करेइ, जाव दीवगो जलइत्ति, तस्स सेज्जावाली चिंतेइ–दुक्खं सामी अंधकारे अच्छिहिति, ताए बीए जामे विज्झायंते दीवगे तेलं छूढं, सो ताव जलितो जाव अद्धरत्तो, ताहे पुणोऽवि तेलं छूढं, ततो ताव जलितो जाव तइओ पहरो, पुणोवि तेलं छूढं, ततो सुकुमारसरीरो विहायंतीए रयणीए वेयणाभिभूतो कालगतो, पच्छा सागरचंदो राया जातो, अन्नया सा माइसवत्तिं भणइ–गेण्ह रज्जं, पुत्ताण ते भवउत्ति, अहं पवयामि, सा नेच्छइ, एएण रज्जं आयत्तंति, ततो सो अइजाणनिज्जाणेसु रायं रायलच्छीए दिप्पंतं पासिऊण चिंतेइ–मए पुत्ताण रज्जं दिज्जंतं न इच्छियं, तेऽवि एवं सोभंता, इयाणिं मारेमि, छिद्दाणि मग्गइ, सो य राया छुहालुतो, तेण सूयस्स संदेसतो दिन्नो–एत्तो चेव पुव्वण्हियं पट्ठवेज्जासि, जह विरावेमि, सूएण सीहकेसरतो मोयगो चेडीए हत्थे विसज्जितो, पियदंसणाए दिट्ठो, भणइ–पेच्छामि णंति, तीए अप्पितो, पुव्वमणाए विसमक्खिया हत्था कया, तेहिं सो विसेण मक्खितो, पच्छा सा भणइ–अहो सुरही मोयगोत्ति, पडिअप्पितो चेडीए, ताए गंतूण रण्णो समप्पितो, तेऽवि दो कुमारा रायसगासे अच्छंति, तेण चिंतियं–किह अहं एएहिं छुहाइएहिं खाइस्सं ?, तेण

॥ ४७६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

दुहा काऊण तेसिं दोण्हवि सो दिन्नो, ते खाइउमारद्धा, जाव विसवेगा आगंतुं पवत्ता, राइणा संभंतेण वेज्जा सद्दाविता, सुवण्णं पाइया, सज्जा जाया, दासी सद्दाविया, पुच्छिया भणइ–न केणवि दिट्ठो, नवरमेयाणं मायाए परामुट्ठो, सा सद्दाविया, नाया जहा एसा कारित्ति, ताहे अंबाडिया, भणिया य–जहा पावे! तया नेच्छसि रज्जं दिज्जंतं, इयाणिमहं अकयपरलोगसंबलो संसारे छूढो होंतोत्ति, ततो तेसिं रज्जं दाऊण पव्वइतो ॥ अण्णया संघाडतो साहूण उज्जेणीतो आगतो, सो पुच्छितो–तत्थ निरुवसग्गं ?, ते भणंति–निरुवसग्गं, नवरं रायपुत्तो पुरोहियपुत्तो य बाहेति पासंडत्थे साहुणो य, ततो सागरचंदमुणी अमरिसेणं तत्थ गतो, साहूहिं विस्सामितो, ते य साहू संभोइया, तेहिं भिक्खावेलाए भणितो–आणिज्जउ, सो भणइ–अहं अत्तलामितो, नवरं ठवणकुलाणि साहह, तेहिं से चेल्लतो दिन्नो, सो तं पुरोहियघरं दंसित्ता आगतो, इमोऽवि तत्थेव पविट्ठो, वड्ढेणं सद्देणं धम्मलाभेइ, अंतेउरियातो निग्गयातो हाहाकारं करेंतीतो, सो वड्ढवड्ढसद्देणं भणइ–किं एयं साविए ! इति ?, ते निग्गया बाहिं, बारं बंधंति, पच्छा भणंति–नच्चसु, सो पडिग्गहं ठवित्ता पणच्चितो, ते न याणंति बाएउं, भणंति–जुज्झामो, दोऽवि एक्कसराए आगया, मम्मेसु आहया, जहा जंताणि तहा खलखलाविया, ततो निसट्ठं हणिऊण बाराणि उग्घाडित्ता गतो, उज्जाणे अच्छइ, राइणो कहियं, तेण मग्गावितो, साहू भणंति–पाहुणतो आगतो, न याणामो, गवेसंतेहिं उज्जाणे दिट्ठो, राया आगतो, तेण खामितो, नेच्छइ मोत्तुं, जइ पव्वयंति तो मुयामि, ताहे पुच्छिया, पडिस्सुयं, ततो एगत्थ गहाय चालिया, जहा सट्ठाणे ठिया संधिणो, लोयं काऊण पव्वाविया, रायपुत्तो सम्मं करेइ–मम पितिउत्ति, पुरोहियसुतो दुगुंछइ, अम्हे एएण कवडेण पव्वाविया, दोवि मरिऊण देवलोगं गया, संगारं करेंति, संगारो नाम सङ्केतः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीआवश्यकमलय० वृत्तौ उपोद्घाते ॥ ४७७ ॥

जो पढमं चवइ तेण सो संबोहियव्वो, पुरोहियसुतो चइऊण तीए दुगुंछाए रायगिहे मेईए पोट्टे आगतो, तीसे सेट्ठिणी अवंसिया, सा एसा मंसं विक्किणइ, तीए भण्णइ–मा अण्णत्थ हिंडाहि, अहं सव्वं किणामि, एवं दिवसे दिवसे आणेइ, एवं तासिं पीई घणा जाया, ताहे तीसे सेट्ठिणीए घरस्स समोसिअं ठिया, समोसिया नाम पातिवेसनी, सा य सेट्ठिणी निंदू, ततो मेदीए रहस्सियं चेव पुत्तो दिन्नो, सेट्ठिणीए धूया मया जाया, सा मेईए गहिया, पच्छा सा सेट्ठिणी तं दारगं मेईए पाएसु पाडेइ–लुज्झ पभावेण जीवउत्ति, तेण से नामं कयं मेयज्जोत्ति, संवड्ढितो, कलातो गहियातो, संबोहिज्जंतो देवेण न य संबुज्झइ, ताहे अट्ठण्हं इब्भकन्नगाणं एगदिवसेणं पाणिं गाहितो, सिवियाए नगरं हिंडइ, देवोऽवि मेयं अणुपविट्ठो रोविउमारद्धो, जइ मम धूया जीवन्ती तीसेवि अज्जविवाहो कतो होंतो, भत्तं च मेयाण कयं होन्तं, ताहे ताए मेइए जहावत्तं सिट्ठं, ततो रुट्ठो देवाणुभावेणं गंतुं सिवियातो पाडितो, भणितो–तुमं असरिसीतो परिणेसि, खड्डाए छूढो, ताहे देवो भणति–किह इयाणिं ?, सो भणति–महंतो अवन्नो जातो, तो एत्तो मोएहि, तो कंचि कालं अच्छामि, (केत्तियं ?, वरस्स वरिसाणि, तो भणइ–किं करेमि ?, भणति–रण्णो धूयं दवावेहि, तओ) सव्वातो किरियातो ओहाडियातो भविस्संति, ताहे से छगलओ दिन्नो, सो रयणाणि वोसिरइ, तेण रयणाणं थालं भरियं, तेण पिया भणितो–रण्णो धूयं वरेह, रयणाणं थालं भरित्ता गतो, किं मग्गसि ?, धूयं, निच्छूढो, एवं दिवसे दिवसे थालं रयणाणं भरिऊण गच्छइ, राया गेण्हइ, अभओ भणइ–कओ रयणाणि ?, सो भणइ–छगलतो हदइ, अभओ भणइ–अम्हं दिज्जउ, आणीतो, मडगंधाणि वोसिरइ, अभतो चिंतेइ–देवाणुभावो एसो, किंतु परिक्खिज्जउ, ततो भणितो–राया दुक्खं वेभारपव्वयं सामिं वंदतो जाइ, रहमग्गं करेह, सव्वं कतो,

समयिके मेतार्यः

॥ ४७७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजावि दीसइ, भणितो–पागारं सोवण्णं करेह, कतो, पुणोऽवि भणितो, जइ समुद्दमाणेसि, तत्थ ण्हातो सुद्धो होहिसि तो ते दाहामो, आणीतो, वेलाए ण्हाविओ, दिण्णा धूया, कतो विवाहो य सिबियाए हिंडंतेण, सातोऽवि से अण्णातो आणीयातो, एवं भोगे भुंजइ, बारस वरिसाणि, पच्छा बोहितो, महिलाहिंवि बारस वरिसाणि मग्गियाणि, दिन्नाणि, चउवीसाए वासेहिं सव्वाणिवि पव्वइयाणि, नवपुवी जातो, एकल्लविहारपडिमं पडिवन्नो, तत्थेव रायगिहे हिंडइ, सुवण्णकारगिहमइगतो, सो य सेणियस्स सोवण्णियाणं जवाणं अट्ठसयं करेइ, चेइयचणियाए, ते परिवाडीए कारेइ, तिसंझं, तस्स गिहं साहू अतिगतो, तस्स एगाए वायाए भिक्खा निनीणिया, ततो सो मज्झे गतो, ते य जवा कोंचगेण गिलिया, सो य आगतो, न पेच्छइ, रण्णो य चेइयचणियाए वेला दुक्कइ, अज्ज अट्ठ खंडाणि कीरामित्ति, साहुं संकति, पुच्छइ, तुण्हिक्को अच्छइ, ताहे सीसावेढेण बंधइ, भणितो य–साह केण गहिता ?, ताहे तहा आवेढितो जहा भूमीए अच्छीणि पडियाणि, कुंचगो दारुं फोडेन्तेण सिलिकाए आहतो गलए, तेण ते जवा वंता, लोगो भणइ–पाव ! एते ते जवा, सोवि भयवं तं वेयणं अहियासंतो कालगतो सिद्धो य, लोगो आगतो, दिट्ठो मेथज्जो, रण्णो कहियं, वज्झाणि आणत्ताणि, घरं चइत्ता पव्वइयाणि भणंति–सावग ! धम्मेण वट्टाहि, मुक्काणि, भणइ–जइ उप्पव्वयह तो ते कवल्लीए कड्ढेमि, एवं समइयं अण्णे वरे य कायव्वं ॥ तथा च कथानकार्थे देशप्रतिपादनार्थमाह—

जो कुंचगावराहे पाणिदया कुंचगं तु नाइक्खे । जीवियमणुपेहंतं मेअज्जरिसिं नमंसामि ॥ ८६९ ॥

यः क्रौञ्चकस्यापराधे सति प्राणिदयया हेतुभूतया सूत्रे विभक्तिलोप आर्षत्वात्, क्रौञ्चकं नाचष्टे एव, तुशब्द एव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

कारार्थो भिन्नक्रमश्च, अपितु स्वप्राणत्यागं व्यवसिता, तमनुकम्पया जीवितमात्मनोऽनपेक्षमाणं मेतार्यार्षिं नमस्यामि ॥ निप्फेडिआणि दुन्निवि सीसावेढेण जस्स अच्छीणि । न य संजमाओ चलिओ मेअज्जो मंदरगिरि व ॥ ८७० ॥

निःस्फेटिते–निष्कासिते भूमौ पातिते इति, अत्र द्वे अपि शीर्षावेढेन–शिरोबन्धनेन यस्याक्षिणी, स एवमपि कदर्थ्यमानोऽनुकम्पया न च–नैव चशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, संयमाच्चलितो मेतार्यो मंदरगिरिवत् स्वस्थानाद् वातादिभिरतस्तं मेतार्यर्षिं नमस्यामीति सम्बन्धः । द्वारम् । इदानीं सम्यग्वादे कथानकम्–तुरुमिणीए णगरीए जियसत्तू राया, तत्थ भद्दा नाम धिज्जाइणी, पुत्तो से दत्तो, मामगो से दत्तस्स अज्जकालगो, सो य पव्वइतो, सो य दत्तो जूयपसंगी मज्जपसंगी ओलग्गिउमारद्धो, पहाणदंडो जातो, कुलपुत्तए भिंदित्ता राया धाडितो, सो राया जातो, जण्णा अणेण सुवहू जट्ठा, अण्णया तं मामगं पेच्छइ, तुट्ठो भणइ–धम्मं सुणेमि, ततो पुच्छइ–जण्णाणं किं फलं ?, सो भणइ–किं धम्मं पुच्छसि ?, धम्मं कहेइ, पुणोऽवि पुच्छइ, नरगाणं पंथं पुच्छसि ?, अधम्मफलं कहेइ, पुणोऽवि पुच्छइ, असुभाणं कम्माणं उदये पुच्छसि ?, तंपि परिकहेइ, पुणोऽवि पुच्छइ, ताहे भणइ–नरया फलं जण्णाणं, रुट्ठो भणइ–को पच्चतो ?, आयरितो भणइ–जहा तुमं सत्तमे दिवसे सुणगकुंभीए पच्चिहिसि, एत्थऽवि को पच्चतो ?, जहा तुमं सत्तमे दिवसे सन्ना मुहे गमिस्सइ, रुट्ठो भणइ–तुज्झ को मच्चू ?, भणइ–अहं सुइरं कालं पव्वज्जं काउं देवलोगं गच्छिस्सामि, रुट्ठो भणइ–रुंभह, ते दंडा निविण्णा, तेहिं सो चेव राया आवाहितो–एहि जेण एयं बंधित्ता अप्पेमो, सो य पच्छन्नो अच्छइ, तस्स दिवसा विस्सरिया, सत्तमे दिवसे रायपहं सोहावेइ, मणुस्सेहिं रक्खावेइ, एगो य देवकुलिगो पुप्फकरंडगहत्थगतो पच्चूसे पविसति, सण्णा वोसिरित्ता पुप्फेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ओहाडेइ, रायावि सत्तमे दिवसे आसचडगरेण नीइ, जामि तं समणगं मारेमि, जाव अण्णेणं आसकिसोरेणं सह पुप्फेहिं उक्खिविया खुरेण सन्ना, पादो भूमीए आहतो, ताहे तेण सन्ना मुहमतिगया, तेण णायं–जहा मारिज्जामि, ततो दंडाण अणापुच्छाए नियत्तिउमारद्धो, ते दंडा जाणंति–नूणं रहस्सं भिन्नं, जाव घरं पविसइ ताव गेण्हामो, गहितो, इयरो राया आणीतो, तेण कुंभीए सुणए तं च छुभित्ता दारं दिन्नं, हेट्ठा अग्गी पज्जालितो, ते सुणया ताविज्जंता खंडखंडेहिं छिंदंति, एवं सम्मावातो कायव्वो जहा कालगज्जेणं ॥ तथा चामुमेवार्थमभिधित्सुराह—

दत्तेण पुच्छिओ जो जन्नफलं कालओ तुरमणीए । समयाइ आहिएणं सम्मं वुइअं भयंतेणं ॥ ८७१ ॥

दत्तेन धिग्जातिनृपतिना यः कालको मुनिः पृष्टो यज्ञफलं तुरमिण्यां नगर्यां, तेन भदंतेन–परमकल्याणयोगिना समतया आहितेन–मध्यस्थतया गृहीतेन इहलोकभयमनपेक्ष्य सम्यक् उक्तं, मा भूद्वचनादधिकरणप्रवृत्तिः ॥ द्वारम् ॥ समासद्वारमिदानीं, तत्र कथानकम्—

एगो धिज्जाइतो पंडियमाणी, सासणं खिंसइ, सो वाए पइन्नाए उग्गाहिऊण पराजिणित्ता पव्वाविओ, पच्छा देवयाए चोइयस्स उवागयं, दुगुंछं न मुंचति, सन्नायगा य से उवसंता, आगारी से नेहं न छड्डइ, कम्मणं दिन्नं, कहं मे वसे होज्जा ?, मतो, देवलोगे उववन्नो, सावि तण्णिवेदेण पव्वइया, अणालोइय चेव कालं काऊण देवलोगे उववन्ना, ततो सो चइऊण रायगिहे नगरे धणसत्थवाहो, पंच से पुत्ता, तस्स चिलाइया चेडी, तीसे पुत्तो उववन्नो, नामं च से कयं चिलाइगोत्ति, इयरीवि तस्सेव धणस्स पंचण्हं पुत्ताणमुवरि दारिया जाया, सुसमा से नामं कयं, सो य चिलागो तीए बाल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ग्गाहो दिन्नो, अणालीओ करेइ, ताहे निच्छूढो, सीहगुहं चोरपल्लिमतिगतो, तत्थ अग्गपहारी णिस्संसो य, चोरसेणावती मतो, सो सेणावती जातो, अन्नया चोरे भणइ–रायगिहे धणो नाम सत्थवाहो, तस्स धूया सुसमा नाम दारिया, तहिं वच्चामो, धणं तुब्भं सुसमा मज्झं, ततो ओसोयणिं दाउं णामं साहंता आगया, धणो सह पुत्तेहिं आधरिसिओ, तेऽवि तं घरं पविसित्ता चेडिं गहाय पहाविया, धणेण नगरगोत्तिया सद्दाविया मम धूयं नियत्तेह, दव्वं तुज्झं, चोरा भग्गा, लोगो धणं गहाय नियत्तो, इयरो सह पुत्तेहिं चिलायस्स मग्गतो लग्गो, चिलातोवि दारियं गहाय नस्सइ, जाहे सरीरेण न तरइ सुसमं वहिउं, इमेऽवि दुक्का, ताहे सुसमाए सीसं गहाय पत्थितो, इयरे धाडिता नियत्ता, छुहाए परितावि(ज्जंति, ताहे धणो पुत्ते भणइ–ममं मारेत्ता खाह, ताहे नगरं वच्चह, ते नेच्छंति, जेट्ठो भणइ–ममं मारित्ता खाह, एवं जाव डहरतो, ताहे पिया से भणइ–मा अन्नमन्नं मारेमो, एएणं चिलाएणं ववरोवियं सुसमं खामो, एवं ते आहारिया पुत्तिमंसं, एवं सव्वसाहुस्सवि आहारो पुत्तमंसोवमो कारणितो, उक्तं च–"व्रणलेपाक्षोपाङ्गवदसङ्गयोगभरमात्रयात्रार्थम् । पन्नग इवाभ्यवहरेदाहारं पुत्रपलवच्च ॥ १ ॥" (प्रशमरतौ) तेण आहारेण नगरं गया, पुणरवि भोगाण आभागी जाया, एवं साहूवि निव्वाणसुहस्स, सोऽवि चिलातो तेण सीसेणं हत्थगतेणं दिसामूढो जाव एगं साहुं आयावेंतं पेच्छइ, तं भणति–मम संखेवेण धम्मं कहेहि, मा एवं ते सीसं पाडिस्सामि, साहुणा भणितो–उवसमो विवेगो संवरो य, एयाणि गहाय एगंतं गतो, तत्थ चिंतिउमारद्धो–उवसमो कायव्वो कोहाईणं, अहं च कुद्धो, तहा विवेगो धणसयणस्स कायव्वो, ततो तं सीसं असिं च एडेइ, तहा संवरो इंदियसंवरो णोइंदियसंवरो य सो कायव्वो, एवं झायइ, जाव लोहियगंधेण तं कीडियातो खाइउमा-

॥४७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

रज्जातो, सो ताहिं जहा चालणी तहा कतो, पायसिराहिंतो जाव सीसकरोडी ताव गयातो, तहवि न झाणातो चलितो ॥
तथा चामुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

जो तिहिं पएहिं सम्मं समभिगओ संजमं समारूढो । उवसम-विवेग-संवर चिलाइपुत्तं नमंसामि ॥ ८७२ ॥

यः त्रिभिः पादैः 'सम्मं'ति सम्यक्त्वं समभिगतः-प्राप्तः, तथा संयमं समारूढः, कानि त्रीणि पदानीत्यत आह-उपशमो विवेकः संवर इति, तत्रोपशमः-क्रोधादिनिग्रहः विवेकः-स्वजनसुवर्णादित्यागः, संवरः-इन्द्रियनोइन्द्रियगोपनं, तमित्थंभूत-मुपशमविवेकसंवरलक्षणपदत्रयश्रवणतः संयमसमारूढं चिलातीपुत्रं नमस्यामि ॥

अहिसरिआ पाएहिं सोणिअगंधेण जस्स कीडीओ । खायंति उत्तमंगं तं दुक्करकारयं वंदे ॥ ८७३ ॥

अभिसृताः-प्रविष्टाः पादाभ्यां शोणितगन्धेन यस्य अविचलिताध्यवसायस्य कीटिका भक्षयंति उत्तमाङ्गं, शोणितगन्धेन यस्य पादशिराभिः प्रविश्य कीटिका मध्यभागं भक्षयन्त्यस्तावद् गता यावदुत्तमाङ्गम्, उपरिष्टाच्चालनीव काणितमित्यर्थः, तमित्थं दुष्करकारकं वन्दे, चिलातीपुत्रमिति वर्त्तते ॥

धीरो चिलाइपुत्तो मूइंगलियाहिं चालिणिव्व कतो । सो तहवि खज्जमाणो पडिवन्नो उत्तमं अट्ठं ॥ ८७४ ॥

धीरः-सत्त्वसम्पन्नश्चिलातीपुत्रः 'मूइंगलियाहिं' इति कीटिकाभिर्भक्ष्यमाणश्चालनीवत् कृतः यस्तथापि-तेनापि प्रकारेण खाद्यमानः सन् प्रतिपन्न उत्तमार्थं, शुभपरिणामापरित्यागात् ॥

अद्धाइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाइपुत्तेणं । देविंदामरभवणं अच्छरगणसंकुलं रम्मं ॥ ८७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

अर्धतृतीयै रात्रिंदिवैः–अहोरात्रैः प्राप्तं चिलातीपुत्रेण देवेन्द्रस्येव अमरभवनं देवेन्द्रामरभवनम् अप्सरोगणसङ्कुलं रम्यमिति ॥ द्वारम् ॥ सङ्क्षेपद्वारमधुना—

सयसाहस्सा गंथा सहस्स पंच य दिवड्ढमेगं च । ठविआ एगसिलोगे संखेवो एस नायव्वो ॥ ८७६ ॥

चत्तारि बालतवस्सी सयसाहस्से गंथे काउं जियसत्तुं रायाणमुवट्ठिया–अम्ह सत्थाणि सुणेहि, तुमं पंचमो लोगपालो, तेण भणियं–केत्तियं ?, ते भणंति–चत्तारि संहियातो सयसाहस्सीतो, सो भणइ–एच्चिरेणं कालेणं मम रज्जं सीयइ, ततो अद्धं अद्धं कयं, तहवि राया न पडिच्छइ, एवं अद्धं अद्धमोसारिज्जंतं जाव एक्केको सिलोगो ठितो, तंपि न सुणइ, ताहे तेहिं चउहिं नियमयपदरिसणसहियो एक्को सिलोगो कतो, स चायम्–" जीर्णे भोजनमात्रेयः, कपिलः प्राणिनां दया । बृहस्पतिरविश्वासः, पाञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम् ॥ १ ॥" आत्रेय एवमाह–जीर्णे भोजनं सेवनीयमारोग्यार्थिना, एवं प्रत्येकं योजना कार्या, एवं सामायिकमपि चतुर्दशपूर्वार्थसङ्ग्रहात् सङ्क्षेपो वर्त्तते इति ॥ गतं सङ्क्षेपद्वारम्, इदानीमनवद्यद्वारं, तत्र कथानकम्–वसंतपुरे नगरे जियसत्तू राया, धारिणी देवी, तीसे पुत्तो धम्मरुई, सो य राया थेरो, अन्नया ताव सो पव्व-इउकामो धम्मरुइस्स रज्जं दाउमिच्छइ, सो मायरं पुच्छइ–कीस तातो रज्जं परिचयइ ?, सा भणइ–रज्जं संसारवद्धणं, सो भणइ–ममवि न कज्जं, ततो सोऽवि सह पियरेण तावसो जातो, तत्थ अमावासा होहित्ति गंडओ घोसेइ आसमेसु–कल्लं अमावसा होहि, इतो पुप्फफलाणं संगहं करेह, कल्लं न वट्टेइ छिंदिउं, धम्मरुई चिंतेइ–सव्वकालं न छिंदेज्जा तो सुंदरं होज्जा, अण्णया साहू अमावासाए तावसासमस्स अदूरेण वोलंति, ते धम्मरुइं पेच्छिऊण भणति–भयवं ! किं तुज्झं अणा-

॥ ४८० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुट्टी नत्थि ?, तो अडविं जाह, ते भणंति–अम्हं जावज्जीवं अणाकुट्टी, सो संभंतो चिंतिउमारद्धो, साहूवि गया, जाई संभरिया, पत्तेयबुद्धो जातो ॥ अमुमेवार्थमभिधित्सुराह—

सोऊण अणाउट्टिं अणभीओ वज्जिऊण अणगं तु । अणवज्जयं उवगओ धम्मरुई नाम अणगारो ॥ ८७७ ॥

श्रुत्वा–आकर्ण्य आकुट्टनमाकुट्टिः–छेदनं, हिंसेत्यर्थः, न आकुट्टिरनाकुट्टिः तां सर्वकालिकीमाकर्ण्य 'अणभीतः' अणवणेति दण्डकधातुः, अणति–गच्छति तासु तासु योनिषु जीवोऽनेनेति अणं–पापं तद्भीतः वर्जयित्वा अणगं तु,परित्यज्य सावद्ययोगमित्यर्थः, वर्जनीयो वर्ज्यः अणस्य वर्ज्यः अणवर्ज्यः तद्भावस्तत्ता तां अणवर्ज्यतामुपगतः–प्राप्तः, साधुः संवृत्त इति भावः, धर्म्मरुचिर्नामानगारः॥ गतमनवद्यद्वारम् , सम्प्रति परिज्ञानद्वारम् , तत्र कथानकमिलापुत्रस्य, तच्च प्रागेवाभिहितमिति गाथोच्यते—

परिजाणिऊण जीवे अजीवे जाणणापरिन्नाए । सावज्जजोगकरणं परिजाणइ सो इलापुत्तो ॥ ८७८ ॥

परिज्ञाय जीवान् अजीवांश्च 'जाणणापरिण्णाए'त्ति ज्ञपरिज्ञया सावद्ययोगकरणं पडिजाणइ सो इलापुत्तो, सावद्ययोगक्रियां परिजाणइत्ति प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिजानाति स इलापुत्रः ॥ गतं परिज्ञानद्वारम् , इदानीं प्रत्याख्यानद्वारम् , तत्र कथानकम्–तेतलिपुरं नगरं, कणगरहो राया, पउमावती देवी, राया भोगलोलो जाए जाए पुत्ते वियंगेइ, तेतलिसुतो अमच्चो कलादो, तेण मूसियारो सेट्ठी तस्स धूया पोट्टिला आगासतले दिट्ठा, मग्गिया लद्धिया, अमच्चो पउमावती य परोप्परं भणंति–एगं कहवि कुमारं संरक्खामो, सो तव मम य भिक्खाभायणं भविस्सति, मम उदरे पुत्तो एयं रहस्सगयं सारवेमो, संपत्तीए पोट्टिला देवी य समं चेव पसूया, पोट्टिलाए दारिया देवीए दिन्ना, देवीए कुमारो पोट्टिलाए, सो संवड्ढइ, कलातो य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिण्हइ, अन्नया पोट्टिला तेतलिस्स अणिट्ठा जाया, नाममवि न गेण्हइ, अन्नया सा पव्वइयातो पुच्छइ–अत्थि किंचि जाणह ? जेण अहं पिया होज्जा, तातो भणंति–न वट्टइ एयं कहेउं, धम्मो कहितो, संवेगमावण्णा पुच्छइ–पव्वयामि, भणइ–जइ संबोहेसि, ताए पडिस्सुयं, सामन्नं काउं देवलोगं गया, सो य राया मतो, ताहे पउरस्स दंसेइ कुमारं रहस्सं च भिंदेइ, ताहे सो रज्जे अहिसित्तो, माया कुमारं भणइ–तेयलिसुयस्स सुट्ठु वट्टेज्जासि, तस्स पहावेण तं राया जातो, तस्स नामं कयं कणगज्झतो, ताहे सव्वट्ठाणेसु अमच्चो ठाविंतो, देवो तं बोहेइ, न संबुज्झइ, ताहे रायाणगं विपरिणामेइ, जतो ठाइ ततो राया परम्मुहो ठाइ, भीतो घरमागतो, सोऽवि परियणो नाढाइ, सुट्ठुयरं भीतो, ताहे तालपुडं विसं खाइ, न मरइ, कंको असी खंधे वाहितो, न छिंदइ, उव्वंधइ, रज्जू छिन्ना, पच्छा पाहाणं गलए बंधित्ता अत्थाहं पाणियं पविसइ, तत्थवि थाहो जातो, ताहे तणकूडे अग्गिं काउं पविट्ठो, तत्थवि न डज्झइ, ततो नगरीतो निप्फिडित्ता अडविं पविसइ, तत्थ जाव खणमेत्तं जाइ तो हत्थी वेगेण आगच्छइ, पुरतो महती पवायखड्डा, उभतो बहलंधयारेण अचक्खूफासो, मज्झे य सरा पडंति, ताहे तत्थ ठितो चिंतेइ–पोट्टिला जइ मं नित्थारेज्जत्ति, एवं वयासी–हा पोट्टिले ! आउसो पोट्टिले ! कत्तो वयामो ?, आलावगे भणइ, जहा तेतलिणाए, ताहे सा भणइ–भीयस्स भो ! खलु पव्वज्जा ताणं, आउरस्स भेसज्जकिच्चं, संतस्स वाहणकिच्चं, महाजले वहणकिच्चं, एवमादी आलावगा, तं दट्ठूण संबुद्धो, भणइ–रायाणं उवसामेहि, मा भणिहिति–रुट्ठो पव्वइतो, ताए साहरियं, ताव समंततो मग्गिज्जइ, रण्णो कहियं, सह मायाए निग्गतो, खामेत्ता पवेसितो, निक्खमणं, सिबियाए नीणितो, पव्वइतो य ॥ चूर्णिकारस्त्वेवं कथितवान्–"भीयस्स खलु भो ! पव्वज्जा ताणं आउरस्स भेसज्जकिच्चमिच्चाइ आ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

लावगे दोच्चंपि तच्चंपि वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया, ततो णं तस्स अणुचिंतेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं जातिस्सरणं समुप्पण्णं, एवं खलु अहं जंबुद्दीवे महाविदेहे पुक्खलावइविजए पोंडरगिणीए नयरीए महापउमे नाम राया होत्था, थेराणं अंतिए पव्वइए, सामाइयमाइयाइं चउद्दस पुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालं किच्चा महासुक्के कप्पे देवत्ताए उववन्ने, तए णं तओ चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तेतलिपुरे नयरे तेतलिस्स अमच्चस्स दारए जाते, तं सेयं खलु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, ततो जेणेव पमयवणो उज्जाणो तेणेव उवागम्म असोगवरपायवस्स हेट्ठा सुहनिसन्ने, तत्थ तस्स अणुचिंतेमाणस्स पुव्वाधीयाइं चोद्दसपुव्वाइं सयमेव अभिसमन्नागयाइं, तते णं से सुभेण अज्झवसाणेणं केवली जाते, अहासंनिहितेहिं देवेहिं महिमा कया, इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कणगज्झओ राया मायाए समं सबद्धीए आगंतूण खामेइ, धम्मं कहेइ, सावगे जाते; भयवं केवली अज्झयणं भासइ, एवं तेण पच्चक्खाणेण समया कया, सावद्ययोगाः प्रत्याख्यानपरिज्ञाता इत्यर्थः ॥ अत्र गाथा—

पच्चक्खे इव दट्ठुं जीवाजीवे य पुण्ण–पावं च। पच्चक्खाया जोगा सावज्जा तेअलिसुएणं ॥ ८७९ ॥

प्रत्यक्षानिव दृष्ट्वा जीवाजीवान् पुण्यं पापं च सम्यक् चतुर्दशपूर्वस्मरणात् प्रत्याख्याता योगाः सावद्याः तेतलिसुतेन। गतं निरुक्तिद्वारम् ॥

समाप्ता उपोद्घातनिर्युक्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र आवश्यक सूत्रस्य उपोद्घात-निर्युक्ति: समाप्ता:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ सूत्रानुगमः

॥ ४८२ ॥

अथ सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यवसरः, सा च प्राप्तावसराऽपि नोच्यते, यस्मादसति सूत्रे कस्यासाविति, ततः सूत्रानुगमे तां वक्ष्यामः, आह–यद्येवं किमिति तस्याः खल्विहोपन्यासः ?, उच्यते–निर्युक्तिमात्रसामान्यात् । सम्प्रति सूत्रानुगमोऽवसरप्राप्तः, तत्र सूत्रमुच्चारणीयं, तच्च किंभूतमिति लक्षणगाथा—

अप्पग्गंथमहत्थं बत्तीसादोसविरहियं जं च । लक्खणजुत्तं सुत्तं अट्ठहि य गुणेहिं उववेयं ॥ ८८० ॥

अल्पग्रन्थं च तत् महार्थं चेति विशेषणसमासः, अल्पग्रन्थमहार्थं यथा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदि'त्यादि सूत्रम्, अधिकृतसामायिकसूत्रं वा, यच्च द्वात्रिंशद्दोषविरहितं तत् सूत्रम्, के ते द्वात्रिंशद्दोषाः ?, उच्यते—

अलिय १ मुवघायजणयं २ निरत्थ ३ मवत्थयं ४ छलं ५ दुहिलं ६ ।
निस्सार ७ महिय ८ मूणं ९ पुणरुत्तं १० वाहय ११ मजुत्तं १२ ॥ ८८१ ॥
कमभिन्न १३ वयणभिन्नं १४ विभत्तिभिन्नं १५ च लिंगभिन्नं १६ च ।
अणभिहिय १७ मपय १८ मेव य सभावहीणं १९ ववहियं च २० ॥ ८८२ ॥
काल २१ जति २२ च्छविदोसो २३ समयविरुद्धं २४ च वयणमेत्तं २५ च ।
अत्थावत्ती दोसो २६ य होइ असमासदोसो २७ य ॥ ८८३ ॥
उवमा २८ रूवगदोसो २९ निद्देस ३० पयत्थ ३१ संधिदोसो ३२ य ।
एए उ सुत्तदोसा बत्तीसं होंति नायवा ॥ ८८४ ॥

सूत्रगुण-दोषाः

॥ ४८२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सूत्र संबंधी दोषा: एवं गुणानाम् वर्णनं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तत्रालीकं द्विधा–अभूतोद्भावनं भूतनिह्नवश्च, तत्र अभूतोद्भावनं यथा प्रधानं जगतः कारणमित्यादि, भूतनिह्नवो यथा नास्त्यात्मेत्यादि १ उपघातजनकं–सत्त्वोपघातजनकं, यथा वेदविहिता हिंसा धर्म्माय इत्यादि २ वर्णक्रमनिर्देशवत् निरर्थकम्, आरादेशादिवत् डित्थादिवद्वा ३, पौर्वापर्यायोगाद् असम्बद्धार्थमपार्थकं यथा दश दाडिमानि षडपूपाः कुण्डमजाजिनं पललपिण्डः त्वर कीटिके दिशमुदीचीं स्पर्शनकस्य पिता प्रतिशीन इत्यादि ४ अर्थविकल्पोपपत्त्या वचनविघातः छलं, वाक्छलादि, यथा नवकम्बलो देवदत्त इत्यादि ५, द्रोहस्वभावं द्रुहिलं, यथा–'यस्य बुद्धिर्न लिप्येत, हत्वा सर्वमिदं जगत् । आकाशमिव पङ्केन, नासौ पापेन युज्यते ॥१॥' ६ कलुषं वा द्रुहिलं, येन समता पुण्यपापयोरापद्यते, यथा–"एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः । भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद्वदन्ति बहुश्रुताः ॥ १ ॥" इति, निस्सारं–परिफल्गु, यथा वेदवचनं ७, अधिकं–वर्णादिभिरभ्यधिकं ८, तैरेव हीनमूनं ९, अथवा हेतूदाहरणाधिक्यमधिकं, यथा–अनित्यः शब्दः कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवदित्यादि ८, ताभ्यामेव हीनमूनं, यथा अनित्यः शब्दो घटवत्, अनित्यः शब्दः कृतकत्वादिति ९, शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पौनरुक्त्यमन्यत्रानुवादात्, अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं च, तत्र शब्दपुनरुक्तमिन्द्र इन्द्र इति, अर्थपुनरुक्तमिन्द्रः शक्र इति, अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं यथा–देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते बलवान् पट्विन्द्रियश्च, अर्थादापन्नं रात्रौ भुङ्क्ते इति, तत्र यो ब्रूयात्–दिवा न भुङ्क्ते रात्रौ भुङ्क्ते स पुनरुक्तमाह १०, व्याहतं नाम यत्र पूर्वेण परं व्याहन्यते, यथा 'कर्म्म चास्ति फलं चास्ति, कर्त्ता नास्ति च कर्म्मणा' मित्यादि ११ अयुक्तम्–अनुपपत्तिक्षमं, यथा–'तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिः । प्रावर्त्तत नदी घोरा, हस्त्यश्वरथवाहिनी ॥१॥' इत्यादि १२,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

क्रमभिन्नं यत्र यथासङ्ख्यमनुदेशो न क्रियते यथा 'स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामर्थाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा' इति वक्तव्ये स्पर्शरूपशब्दगन्धरसा इति ब्रूयादित्यादि १३, वचनभिन्नं यत्र वचनव्यत्ययो, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिता इत्यादि १४, विभक्ति[वि]भिन्नं च यत्र विभक्तिव्यत्ययः, यथैष वृक्ष इति वक्तव्ये एष वृक्षमित्याह १५, लिङ्गभिन्नं यत्र लिङ्गव्यत्ययः, यथा इयं स्त्रीति वक्तव्ये अयं स्त्रीत्याह १६, अनभिहितं–स्वसिद्धान्तेऽनुपदिष्टं, यथा सप्तमः पदार्थो दशमं द्रव्यं वा वैशेषिकस्य, प्रधानपुरुषाभ्यधिकं साङ्ख्यस्य, चतुःसत्यातिरिक्तं शाक्यस्येत्यादि १७ अपदं यत्र पद्ये विधातव्येऽन्यच्छन्दोऽभिधानं, यथा आर्यापादे वैतालीयपादाभिधानं १८[1], स्वभावहीनं यद्वस्तुनः प्रत्यक्षादिप्रसिद्धं स्वभावमतिरिच्यान्यथावचनं यथा शीतोऽग्निः मूर्त्तिमदाकाशमित्यादि १९, व्यत्रहितं नाम अन्तर्हितं, यत्र प्रकृतमुत्सृज्याप्रकृतं विस्तरतोऽभिधाय पुनः प्रकृतमधिक्रियते, यथा हेतुकथामधिकृत्य सुप्तिङंतपदलक्षणप्रपञ्चमर्थशास्त्रं चाभिधाय पुनर्हेतुवचनं २०, कालदोषः अतीतादिकालव्यत्ययः, यथा रामो वनं प्राविशदिति वक्तव्ये प्रविशतीत्याह २१, यतिदोषः अस्थानविच्छेदः अकरणं वा २२, छविः अलंकारविशेषता तेन शून्यता छविर्दोषः २३, समयविरुद्धं–स्वसिद्धान्तविरुद्धं, यथा साङ्ख्यस्यासत् कारणे कार्यं सद्वैशेषिकस्य इत्यादि २४ वचनमात्रमहेतुकं, यथा विवक्षिते भूप्रदेशे इदं लोकमध्यमिति २५ अर्थापत्तिदोषो यत्रार्थादनिष्टापत्तिर्यथा ब्राह्मणो न हन्तव्य इत्यर्थादब्राह्मणघातापत्तिः २६ असमासदोषो नाम समासव्यत्ययो, यदिवा

१ यद्यपि सर्वजातीनामपीति वृद्धा इति छन्दोऽनुशासनवचसा सर्वेषां छन्दसां संकरः स्यात्, परं स एकप्रकरणोक्तानां ज्ञेयः, इमे आर्यावैतालीये भिन्नप्रकरणगते इति दोषवत्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

यत्र समासविधौ सत्यसमासवचनं, यथा राजपुरुषोऽयमित्यत्र तत्पुरुषे समासे कर्त्तव्ये विशेषणसमासकरणं बहुव्रीहिकरणं वा, यदिवा असमासकरणं राज्ञः पुरुषोऽयमिति २७ उपमादोषो हीनाधिकोपमाभिधानं, यथा मेरुः सर्षपोपमः, सर्षपो मेरुसमः, बिन्दुः समुद्रोपमः समुद्रो बिन्दूपम इत्यादि २८, रूपकदोषो नाम स्वरूपावयवव्यत्ययो, यथा पर्वते पर्वतरूपावयवानामनभिधानं समुद्रावयवानां चाभिधानमित्यादि २९, निर्देशदोषो यत्र उद्दिश्यपदानामेकवाक्यभावो न क्रियते, यथा देवदत्तः स्थाल्यामोदनं पचतीति वक्तव्ये पचतिशब्दानभिधानं ३०, पदार्थदोषो यत्र वस्तुपर्यायवाचिनः पदार्थस्यार्थान्तरपरिकल्पनाश्रयणं यथा द्रव्यपर्यायवाचिनां सत्तादीनां द्रव्यादर्थान्तरपरिकल्पनमुलूकस्य ३१, सन्धिदोषो–विश्लिष्टसंहितत्वं सन्ध्यभावो वा ३२, एते द्वात्रिंशत् सूत्रदोषा भवन्ति ज्ञातव्याः, एभिर्वियुक्तं द्वात्रिंशद्दोषरहितं लक्षणयुक्तं सूत्रं तत् इति वाक्यशेषः, द्वात्रिंशद्दोषरहितं यच्चेति वचनाद्धि तच्छब्दनिर्देशो गम्यत एव, तथाऽष्टभिर्गुणैरुपेतं यत् तल्लक्षणयुक्तमिति वर्त्तते ॥ ते चाष्टौ गुणा इमे—

निद्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमलंकियं । उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥ ८८५ ॥

निर्दोषं नाम प्रागुक्तसमस्तदोषरहितं, सारवत्–बहुपर्यायं, सामायिकशब्दवत्, अन्वयव्यतिरेकलक्षणा हेतवस्तैर्युक्तं हेतुयुक्तं, अलङ्कृतम्–उपमादिभिरुपेतं, उपनीतम्–उपनयोपसंहृतं, सोपचारम्–अग्राम्याभिधानं, मितं–नियतवर्णादिपरिमाणं, मधुरं–श्रवणमनोहरं ॥ अथवेदं सर्वज्ञभाषितसूत्रलक्षणं—

अप्पक्खरमसंदिद्धं सारवं विस्सतोमुहं । अत्थोभमणवज्जं च, सुत्तं सव्वज्जुभासियं ॥ ८८६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

अल्पाक्षरं नाम मिताक्षरं, यथा सामायिकसूत्रं, असन्दिग्धं यत् सैन्धवशब्दवत् लवणपटघोटकाद्यनेकार्थसंशयकारि न भवति, सारवत्–बहुपर्यायं, प्रतिमुखमनेकार्थाभिधायकं वा, विश्वतोमुखं–अनेकमुखं, प्रतिसूत्रमनुयोगचतुष्टयाभिधानात्, अस्तोभकं चवावैहहिकारादिपदच्छिद्रपूरणस्तोभकशून्यं, स्तोभका निपाता इति पूर्ववैयाकरणेषु प्रसिद्धेः, अनवद्यम्–अगर्ह्यमहिंसाप्रतिपादकं, न 'षट् शतानि नियुज्यन्ते, पशूनां मध्यमेऽहनि। अश्वमेधस्य वचनात्, न्यूनानि पशुभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥' इत्यादिवचनमिव हिंसाभिधायकं, एवंभूतं सूत्रं सर्वज्ञभाषितमिति ॥ ततः सूत्रानुगमात् सपदच्छेदसूत्रोच्चारणरूपात् सूत्रेऽनुगते, किमुक्तं भवति ?, अनवद्यमिति निश्चिते सूत्रपदनिक्षेपलक्षणः सूत्रालापकन्यासः प्रवर्त्तते, तदनन्तरं सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिः चरमानुयोगद्वारा विहिता नयाश्च भवन्ति, समकं चैतत्प्रतिसूत्रमनुगच्छति, तथा चाह भाष्यकृत्—**सुत्तं सुत्ताणुगमो सुत्तालावगकतो य निक्खेवो। सुत्तप्फासियनिज्जुत्ति नया य समगं तु वच्चंति ॥ १ ॥ (वि. २८०१)**

सूत्रानुगमादीनां त्वयं विषयविभागः–सपदच्छेदं सूत्रमभिधाय भवति सूत्रानुगमोऽवसितप्रयोजनः, सूत्रालापकन्यासोऽपि नामादिनिक्षेपमात्रमेवाभिधाय, सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिस्तु पदार्थविग्रहविचारप्रत्यवस्थानाद्यभिधाय, तच्च प्रत्यवस्थानादि प्रायो नैगमादिनयमतविषयमतो वस्तुतस्तदन्तर्भाविन एव नया इति, न चैतत् स्वमनीषिकाविजृम्भितम्, यत आह भाष्यकारः—**होइ कयत्थो वोत्तुं सपयच्छेयं सुयं सुयाणुगमो । सुत्तालावगनासो नामादिन्नासविणिओगं ॥१॥ (वि.१००९) सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिनियोगो सेसओ पयत्थादी। पायं सोच्चिय नेगमनयाइमयगोयरो होइ ॥२॥ (वि. १०१०)**

आह–यद्येवं क्रमस्ततः किमित्युत्क्रमेण निक्षेपद्वारे सूत्रालापकन्यासोऽभिहितः ?, उच्यते, निक्षेपसामान्यात्, एवं हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

प्रतिपत्तिलाघवं भवतीत्यलं प्रसङ्गेन ॥ तदेवं विनेयजनानुग्रहार्थं नयानुगमादीनां प्रसङ्गतो विषयविभागः प्रदर्शितः, अधुना प्रकृतं प्रस्तुमः, तत्र प्रकृतमिदं–सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयम्, तच्च पञ्चनमस्कारपूर्वकं, तस्याशेषश्रुतस्कन्धान्तर्गतत्वात्, ततोऽसावेव सूत्रादौ व्याख्येयः, सूत्रादित्वात्, सर्वसम्मतसामायिकसूत्रादिवचनवत्, सूत्रादिता चास्य निर्युक्तिकृता सूत्रादौ व्याख्यायमानत्वादवसेया, अन्ये तु व्याचक्षते–मङ्गलत्वादेवायं सूत्रादौ व्याख्यायते, तथाहि–त्रिविधं मङ्गलं–आदौ मध्येऽवसाने च, तत्र आदिमङ्गलार्थं नन्दी व्याख्याता, मध्यमङ्गलार्थं तीर्थङ्करादिगुणाभिधायकः 'तित्थयरे भयवंते' इत्यादि-गाथासमूहः, नमस्कारस्त्ववसानमङ्गलार्थ इति, एतच्चायुक्तं, शास्त्रस्यापरिसमाप्तत्वेनावसानत्वायोगात्, न चादिमङ्गलत्व-मप्यस्योपपन्नं, तस्य कृतत्वात्, करणे चानवस्थाप्रसङ्गात्, यदिवा कृतं परबुद्धिमान्द्यप्रदर्शनेन, न खल्वेष सतां न्यायः, ततो गुरुवचनात् यथावधारितं तत्त्वार्थमेव ब्रूमः, सूत्रादिर्नमस्कारः, अतस्तमेव प्राग्व्याख्याय सूत्रं व्याख्यास्यामः, स चोत्पत्त्याद्यनुयोगद्वारानुसारतो व्याख्येय इति नमस्कारनिर्युक्तिप्रस्तावनीमिमामाह गाथां निर्युक्तिकारः—

उप्पत्ती १ निक्खेवो २ पयं ३ पयत्थो ४ परूवणा ५ वत्थू ६ ।
अक्खेव ७ पसिद्धि ८ कमो ९ पओअण १० फलं ११ नमुक्कारो ॥ ८८७ ॥

उत्पदनमुत्पादः प्रसूतिरुत्पाद इत्यर्थः, सोऽस्य नमस्कारस्य नयानुसारतश्चिन्तनीयः, तथा निक्षेपणं निक्षेपो–न्यासः, स चास्य कार्यः, पद्यतेऽनेनेति पदं, तच्च पञ्चधा–नामिकं नैपातिकं औपसर्गिकमाख्यातिकं मिश्रं च, तत्र अश्व इत्यादि नामिकं, च वा ह अह इत्यादि नैपातिकं, प्र परा इत्यादि औपसर्गिकं, पठति भुङ्क्ते इत्याद्याख्यातिकं, संयत इत्यादि मिश्रं, तदस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मू. (१) नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं

मूलसूत्र -(१) "नमस्कार सूत्र" हमने पूज्यपाद आचार्य सागरानंदसूरीश्वरजी संपादित "आगममंजुषा" पृष्ठ-१२०५ के आधार से यहां लिखा है ।

यथासम्भवं वाच्यं, तथा पदस्यार्थः पदार्थः, स चास्य वाच्यः, तथा किमाद्यनुयोगद्वारैश्च प्रकर्षेण रूपणा प्ररूपणा, सा च दुविहा परूवणेत्यादि विधेया, तथा वसन्त्यस्मिन् गुणा इति वस्तु तत् नमस्कारार्थं वाच्यम्, आक्षेपणमाक्षेपः, आशङ्क्येत्यर्थः, सा चास्य कार्या, तथा प्रसिद्धिः–तत्परिहाररूपा वक्तव्या, क्रमः–अर्हदाद्यभिधेयपरिपाटी, प्रयोजनम्–अर्हदादिक्रमस्य कारणं, अथवा येन प्रयुक्तो नमस्कारे प्रवर्त्तते तत् नमस्कारस्य प्रयोजनमपवर्गाख्यं वक्तव्यं, फलं–नमस्कारक्रियानन्तरभावि स्वर्गादिकं निरूपणीयं, अन्ये तु व्यत्ययेन प्रयोजनफलयोरर्थं प्रतिपादयन्ति, नमस्कारः खल्वेभिर्द्वारैश्चिन्तनीयः, एष गाथासमुदायार्थः ॥ तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायमाश्रित्य प्रथमत उत्पत्तिद्वारनिरूपणार्थमाह—

उप्पन्नाणुप्पन्नो इत्थ नयाऽऽइणेगमस्सऽणुपन्नो । सेसाणं उप्पन्नो जइ कत्तो ? तिविहसामित्ता ॥ ८८८ ॥

उत्पन्नश्चासावनुत्पन्नश्च उत्पन्नानुत्पन्नः ' मयूरव्यंसकादय ' इति विशेषणसमासः यथा कृताकृतं भुङ्क्तमभुङ्क्तमित्यादि, एवंप्रकारश्च समासः स्याद्वादिनामेव युक्तिमियर्त्ति, न शेषस्य एकान्तवादिनः, एकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्मानभ्युपगमात्, अथ स्याद्वादिनोऽपि कथमेकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्माध्यास इत्यत आह–'एत्थ नया' इति, अत्र उत्पत्त्यनुत्पत्तिविषये नयाः प्रवर्त्तन्ते, ते च नैगमादयः सप्त, नैगमो द्विभेदः–सर्वसङ्ग्राही देशसङ्ग्राही च, तत्र सर्वसङ्ग्राहिणो नैगमस्य सामान्यमात्रावलम्बित्वात् सामान्यस्य चोत्पादव्ययरहितत्वात् नमस्कारस्यापि च तदन्तर्गतत्वादनुत्पन्नो नमस्कारः, शेषाणां देशसङ्ग्राहिनैगममप्रभृतीनां उत्पन्नः, शेषा हि विशेषग्राहिणः विशेषाश्चोत्पादव्ययशून्यस्य वान्ध्येयादेरिवावस्तुत्वात्, नमस्कारश्चायं वस्त्विति विशेषत्वादुत्पन्न इति । आह–शेषा देशसङ्ग्राहिनैगमसङ्ग्रहादयः, सङ्ग्रहस्य च विशेषग्राहित्वं न विद्यते, ततः कथमुक्तं शेषा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

णामुत्पन्न इति ?, नैष दोषः, तस्य सर्वसङ्ग्राहिनैगम एवान्तर्भाववविवक्षणात् । 'जइ कत्तो'त्ति यदि उत्पन्नस्तर्हि कुत इत्याह–'तिविहसामित्ता' इति, त्रिविधं च तत् स्वामित्वं च त्रिविधस्वामित्वं तस्मात् त्रिविधस्वामित्वात्, त्रिविधस्वामिभावात् त्रिविधकारणादित्यर्थः, आह च–एवमप्येकत्रैकदा परस्परविरुद्धधर्माध्यासदोषस्तदवस्थ एव, तदयुक्तम्, अशेषस्यापि वस्तुनस्तत्त्वतः सामान्यविशेषात्मकत्वाभ्युपगमे नमस्कारस्यापि सामान्यविशेषात्मकत्वात्, तत्र च सामान्यधर्मैः सत्त्वादिभिरनुत्पादात् विशेषधर्म्मैरानुपूर्व्यादिभिरुत्पादादिति ॥ साम्प्रतं यदुक्तं 'त्रिविधस्वामित्वा'दिति तत् त्रिविधस्वामित्वमुपदर्शयति—

समुट्ठाणवायणालद्धिओ य पढमे नयत्तिए तिविहं। उज्जुसुअ पढमवज्जं सेसनया लद्धिमिच्छंति ॥ ८८९ ॥

समुत्थानतो वाचनातो लब्धितश्च नमस्कारः, समुत्पद्यते इति वाक्यशेषः, तत्र सम्यक् सङ्गतं प्रशस्तं वा उत्थानं यस्मात् तत् समुत्थानं, किं तदिति चेत्, उच्यते, अन्यस्याश्रुतत्वात् तदाधारतया प्रत्यासन्नत्वात् शरीरमत्र परिगृह्यते, शरीरं हि नमस्कारकारणं, तद्भावे भावसम्भवात्, ततः समुत्थानतः, तथा वाचनं वाचना–परतः श्रवणमधिगम उपदेश इत्यनर्थान्तरं, सा च नमस्कारकारणं, तद्भावभावित्वादेव च, ततो वाचनातः, तथा लब्धिः–तदावरणकर्मक्षयोपशमलक्षणा साऽपि कारणं तद्भावभावित्वादेव, ततो लब्धितः, चशब्दः पदत्रयान्तप्रयुक्तो नयापेक्षया त्रयाणामपि प्राधान्यख्यापनार्थः, अत एवाह–'पढमे नयत्तिए तिविहं' प्रथमे नयत्रिके त्रिविधं, अशुद्धनैगमसङ्ग्रहव्यवहाराख्ये विचार्ये समुत्थानादिकं त्रिविधमपि नमस्कारकारणं, आह–प्रथमे नयत्रिकेऽशुद्धनैगमसङ्ग्रहौ कथं त्रिविधं कारणमिच्छतः ?, तयोः सामान्यमात्रावलम्बित्वात्, नैष दोषः, अशुद्धनैगमसङ्ग्रहयोर्नयत्रिकग्रहणेनाग्रहणात्, तन्मतेन नमस्कारस्योत्पत्तेरेवाभावात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतच्च प्रागेव 'नैगमस्सऽणुप्पन्नो' इत्यत्र चर्चितम्, 'उज्जुसुय पढमवज्जं'ति ऋजुसूत्रः प्रथमवर्ज्ज–समुत्थानाख्यकारणशून्यं शेषं कारणद्वयमेवेच्छति, समुत्थानस्य व्यभिचारित्वात्, तद्भावेऽपि वाचनालब्धिशून्यस्यासम्भवात्, 'सेस नया लद्धिमिच्छन्ती'ति शेषनयाः–शब्दादयस्ते लब्धिमेवैकं कारणमिच्छन्ति, वाचनाया अपि व्यभिचारित्वात्, तथाहि–सत्यामपि वाचनायां नोपजायते लब्धिरहितस्य गुरुकर्म्मणोऽभव्यस्य वा नमस्कारः, सत्यां तु लब्धाववश्यमुपजायते, ततोऽन्वयव्यतिरेकाव्यभिचारात्सैवैका कारणमिति, गतमुत्पत्तिद्वारम् । इदानीं निक्षेपः–स चतुर्धा, तद्यथा–नामनमस्कारः स्थापनानमस्कारो द्रव्यनमस्कारो भावनमस्कारश्च, तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्यनमस्कारोऽप्यागमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञशरीरद्रव्यनमस्कारो भव्यशरीरद्रव्यनमस्कारो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यनमस्कारश्च ॥ सम्प्रति ज्ञशरीरभव्यशरीरद्रव्यनमस्कारप्रतिपादनार्थमाह—

निण्हाइ दव्व भावोवउत्त जं कुज्ज सम्मदिट्ठीओ ।

निह्नवानाम्, आदिशब्दात् बोटिकानामाजीविकानां, यदिवा द्रव्यनिमित्तं यो मंत्रदेवताराधनादौ नमस्कारः स द्रव्यनमस्कारः, तत्र द्रव्यनमस्कारे उदाहरणम्–वसंतउरे नगरे जियसत्तू राया, धारणी देवी, सो अन्नया देवीए सहितो ओलोयणट्ठितो दमगं पासइ, अणुकंपा दोण्हवि जाया, देवी भणइ–नदिसरिसा रायाणो, भरियाइं भरंति, रण्णा आणाविंतो, कयालंकारो दिन्नवत्थो तेहिं उवणीतो, सो य कच्छूए गहितल्लतो ओलग्गाविज्जइ, कालंतरेण राइणा से रज्जं दिन्नं, पेच्छइ दंडभडभोइए देवतायतणपूयातो करेमाणे, सो चिंतेइ–अहं कस्स करेमि ?, रण्णो आययणं करेमि, तेण देवउलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारियं, तत्थ रण्णो देवीए य पडिमा कया, पडिमापवेसे राया देवी य आणीया, ताणि पुच्छंति–किं एयं ?, सो साहइ, तुट्ठो राया, सविसेसं सक्कारेइ, सो तिसंझं पडिमातो अच्चेइ, राया पडियरइ, ततो तुट्ठेण राइणा से सव्वट्ठाणगाणि विइन्नाणि, अन्नया राया दंडजत्ताए गतो तं सव्वंतेऊरट्ठाणेसु ठविऊणं, तत्थवि अंतेउरियाओ निरोहमसहमाणीतो तं चेव उवचरंति, सो नेच्छइ, ताहे तातो भत्तगं नेच्छंति, पच्छा सणियं पविट्ठो विट्ठालितो य, राया आगतो, सिट्ठे विणासितो, रायसमाणो तित्थयरो, अंतेउरत्थाणीया छक्काया, अहवा न छक्काया, किन्तु संकादयो पमाया, मा सेणियादीणवि दव्वनमोक्कारो भविस्सति, दमगत्थाणीया साहू, कच्छूथाणीयं मिच्छत्तं, दंडो संसारे विणिवातो, एस दव्वनमोक्कारो, 'भावोवउत्त जं कुज्ज सम्मदिट्ठीओ' भावनमस्कारो मनोवाक्कायैरुपयुक्तः सन् यत्सम्यग्दृष्टिः करोति शब्दक्रियादिकं ॥ अत्र च नामादिनिक्षेपाणां यो नयो यं निक्षेपमिच्छति तद् उपदर्श्यते–नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्राश्चतुरोऽपि निक्षेपान् मन्यन्ते, शब्दसमभिरूढैवंभूतास्तु भावनिक्षेपमेव केवलम्, आह च भाष्यकृत्–"भावं चिय सद्दनया सेसा इच्छंति सव्वनिक्खेवे" ॥ अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते–नैगमश्चतुरोऽपि निक्षेपानिच्छति, सङ्ग्रहव्यवहारौ स्थापनावर्जान् त्रीन् निक्षेपान्, ऋजुसूत्रः स्थापनाद्रव्यवर्जौ द्वौ निक्षेपौ, तद्यथा–नामनिक्षेपं भावनिक्षेपं च, त्रयः शब्दा भावनिक्षेपमेव केवलमिच्छन्ति, न शेषान् त्रीन्, तथा च तेषां ग्रन्थः–'चउरोऽवि नेगमनयो ववहारो संगहो ठवणवज्जं । उजुसुत्त पढमचरिमे इच्छति भावं तु सद्दनया ॥ १ ॥' तदेतदयुक्तं, युक्तिविरोधात्, तथाहि–नैगमनयो यदि सामान्यग्राही विशेषग्राही च निर्विवादमविशेषेण स्थापनामिच्छति ततः सामान्यग्राही सङ्ग्रहनयो विशेषावलम्बी च व्यवहारनयः कथं स्थापनां नेच्छेत्?, सर्वदेशसङ्ग्राहिनैगमनयमतापेक्षया सङ्ग्र-

आ. सू. ८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हव्यवहारनयमतयोरविशेषात् एतच्चावसीयते, तत्र तत्र प्रदेशे सर्वसङ्ग्राहिणो नैगमस्य सङ्ग्रहे देशसङ्ग्राहिणो व्यवहारेऽन्तर्भाववविवक्षणात्, यदप्यवादीत्–स्थापनाद्रव्यवर्जौ द्वौ निक्षेपाविच्छति ऋजुसूत्र इति, तदप्यसमीचीनं, सम्यक् तत्त्वानभिज्ञानात्, तथाहि–स्थापना नाम द्रव्यस्याकारविशेषः, द्रव्यं च ऋजुसूत्रनयोऽवश्यमिच्छति, केवलं न पृथक्त्वं, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन परकीयस्यानुपयोगित्वेनावस्तुत्वाभ्युगमात्, उक्तं चानुयोगद्वारेषु–"उज्जुसुयस्स एगे अणुवउत्ते आगमतो एगं दव्वावस्सयं, पुहुत्तं नेच्छइ" इति, तद् यदि द्रव्यं सुवर्णादिकं पिण्डाद्यवस्थायां तथाविधकटककेयूराद्याकाररहिततया निराकारमपीच्छति, भविष्यत्कुण्डलादिपर्यायलक्षणभावहेतुत्वात्, ततः साक्षात्तत् साकारं (कथं) नेच्छेत् ?, तस्य ननु सुतरामभ्युपगमः, तस्मात् ऋजुसूत्रोऽपि नैगमनय इव चतुरोऽपि निक्षेपानिच्छतीति प्रतिपत्तव्यमित्यलं परमान्ध्यप्रकाशनेन ॥ गतं निक्षेपद्वारम्, तत्र पञ्चसु नामिकादिषु पदेषु यन्नमस्कारे पदं तदुपदर्शयन्नाह—

नेवाइयं पदं दव्वभावसंकोअणपयत्थो ॥ ८९० ॥

निपतत्यर्हदादिपदपर्यन्तेष्विति निपातः, निपाते भवं नैपातिकम्, अध्यात्मादित्वादिकण्, यदिवा निपात एव नैपातिकं, विनयादेराकृतिगणत्वात् स्वार्थिक इकण्, तत्र नम इति नैपातिकं पदं ॥ गतं पदद्वारम्, अधुना पदार्थद्वारमाह–'दव्वभासंकोयणपयत्थो' नम इति 'णमू प्रह्वत्वे' नमनं नमः, औणादिकोऽसुप्रत्ययः, अस्यार्थः–पूजा द्रव्यभावसङ्कोचनलक्षणा, तत्र द्रव्यसङ्कोचनं करशिरःपादाद्यवयवसङ्कोचः, भावसङ्कोचनं विशुद्धस्य मनसो व्यापारः, सूत्रे चैवं समासः–द्रव्यभावसङ्कोचनात्मकः पदार्थो द्रव्यभावसङ्कोचनपदार्थः, शाकपार्थिवादिदर्शनात् मध्यपदलोपी समासः, एष चात्र भावार्थः–नमोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ईज्य इति किमुक्तं भवति ?-द्रव्यभावसङ्कोचलक्षणां भगवतामर्हतां पूजां करोमि, द्रव्यभावसङ्कोचनविषये च भङ्गचतुष्टयं, द्रव्यसङ्कोचनं न भावसङ्कोचनमित्येको भङ्गो, यथा पालकस्य, भावसङ्कोचनं न द्रव्यसङ्कोचनमिति द्वितीयो, यथाऽनुत्तरविमानवासिनां देवानां, द्रव्यभावयोः सङ्कोचनमिति तृतीयो यथा शांबस्य, न द्रव्यसङ्कोचनं न भावसङ्कोचनमिति शून्यो भङ्गः, इह भावसङ्कोचनं प्रधानं, द्रव्यसङ्कोचनं तु तद्धुद्धिनिमित्तं प्रधानं, केवलं तु विफलमेव ॥ गतं पदार्थद्वारम्, अधुना प्ररूपणाद्वारप्रतिपादनार्थमाह—

दुविहा परूवणा छप्पया य नवहा य छप्पया इणमो। किं कस्स केण व कहिं केवचिरं कइविहो अ भवे ? ॥८९१॥

द्विविधा-द्विप्रकारा प्ररूपणा-वर्णना, द्वैविध्यमेव दर्शयति-षट्पदा च नवधा-नवप्रकारा, नवपदेति तात्पर्यार्थः, चशब्दात् पञ्चपदा च, तत्र षट्पदा इणमो-इयं, किं कस्याः केन वा क्व वा कियच्चिरं कतिविधो वा भवेन्नमस्कारः ? ॥ तत्र किंद्वारप्रतिपादनार्थमाह—

किं ?, जीवो तप्परिणओ (१) पुव्वपडिवन्नओ उ जीवाणं। जीवस्स व जीवाण व पडुच्च पडिवज्जमाणं व (तु) ॥८९२॥

किंशब्दः क्षेपप्रश्ननपुंसकव्याकरणेषु, तत्रेह प्रश्ने, अयं च प्राकृतेऽलिङ्गः, सर्वादिः, नपुंसकनिर्देशः, सर्वलिङ्गैः सह यथायोगमभिसम्बध्यते, किं सामायिकं ? को नमस्कारः ?, तत्र नैगमादिनयानामविशुद्धानां मतमधिकृत्याजीवादिव्युदासेनाह-जीवो, नाजीवः, स च सङ्ग्रहनयापेक्षया मा भूदविशिष्टः स्कन्धः, स्कन्धो नाम सर्वास्तिकायसङ्घातः, यदाहुस्तन्मतावलम्बिनः-"पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति" इत्यादि, तथा तन्नयवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

शेषापेक्षयैव मा भूदविशिष्टो ग्रामस्ततो नोस्कन्धो नोग्राम इति वाक्यशेषो द्रष्टव्यः, तथाहि–सर्वास्तिकायमयः स्कन्धः, तदेकदेशो जीवः, स चैकदेशत्वात् स्कन्धो न भवति, अनेकस्कन्धापत्तेः, प्रतिजीवं स्कन्धत्वाभ्युपगमात्, अस्कन्धोऽपि न भवति, स्कन्धान्तर्वर्त्तित्वाद्, अन्यथा स्कन्धाभावप्रसङ्गात्, प्रत्येकमस्कन्धत्वात्, अनभिलाप्योऽपि न भवति, वस्तुविशेषत्वात्, तस्मात् नोस्कन्धः, स्कन्धैकदेश इति भावः, स्कन्धदेशविशेषताद्योतको नोशब्दः, एवं नोग्रामोऽपि भावनीयः, नवरं ग्रामो नाम चतुर्दशभूतग्रामसमुदायः, स चतुर्दशभूतग्रामः पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादयः, यद् वक्ष्यति–"एगिंदिय सुहुमियरा सन्नियरपणिंदिया य सबितिचऊ । अपज्जत्ता पज्जत्ता भेदेण चउद्दसग्गामा ॥ (प्रति. सं.) ॥ १ ॥" कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, तत्र सामान्येनाशुद्धनयानां नैगमादीनां जीवोऽनुपयुक्तोऽपि तज्ज्ञानलब्धियुक्तो योग्यो वा नमस्कारः, नमस्कारनमस्कारवतोरभेदोपचाराच्चैवं निर्देशः, सम्प्रति शब्दादिशुद्धनयमतमधिकृत्याह–'तप्परिणतो' इति, जीव इति वर्त्तते, शब्दादिनयाः प्राहुः–जीवस्तत्परिणतो–नमस्कारपरिणत एव नमस्कारो भवति, नापरिणतः, उक्तं च–"तप्परिणामोचिय ततो सद्दाईणं तया नमोक्कारो । सेसाणमणुवउत्तो व लद्धिसहितोऽहवा जोगो ॥ १ ॥" एकत्वानेकत्वचिन्तायां तु नैगमस्य सामान्यग्राहिणः सङ्ग्रहे विशेषग्राहिणो व्यवहारेऽन्तर्भावविवक्षणात् सङ्ग्रहादिभिरेव षड्भिर्नयैर्विचारः, तत्र सङ्ग्रहस्य नमस्कारजातिमात्राक्षेपादेको नमस्कारः, व्यवहारस्य व्यवहारपरतया व्यक्तिभेदेन बहवो नमस्काराः, ऋजुसूत्रादयस्तु स्वकीयवर्त्तमानमात्राभ्युपगमपरतया प्रत्येकमेकमेव नमस्कारमिच्छन्ति, तमपि चोपयुक्तमिति, उक्तं च–"संगहनतो नमोक्कारजातिसामन्नतो सया एगं । इच्छइ ववहारो पुण एगमिहेगं बहू बहवो ॥ १ ॥ उज्जुसुयाईणं पुण जेण सयं संपयं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्थुंति । पत्तेयं पत्तेयं तेण नमोक्कारमिच्छंति ॥ २ ॥" अत्र 'एगमिहेग'मित्यादि, एकं–नमस्कारवन्तमिह–जीवलोके एकं नमस्कारमिच्छति, बहून् नमस्कारवतो जीवान् बहूनमस्कारानिति, गतं किमिति द्वारं । सम्प्रति कस्येति द्वारम्, तत्र प्राक्प्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकाङ्गीकरणतः प्ररूपणामाह–'पुव्वपडिवन्नतो उ जीवाण'मित्यादि, इह यदा पूर्वप्रतिपन्न एवाधिक्रियते तदा व्यवहारनयमतमाश्रित्य जीवानां विज्ञेयो, बहुजीवस्वामिक इत्यर्थः, प्रतिपद्यमानं तु प्रतीत्य जीवस्य जीवानां वा नमस्कारः, यदा एको जीवो नमस्कारं प्रतिपद्यते तदा जीवस्येति, यदा तु बहवो जीवास्तं प्रतिपद्यन्ते तदा जीवानामिति अक्षरगमनिका, भावार्थस्त्वयम्–सङ्ग्रहनयस्य पूर्वप्रतिपन्नचिन्तायां प्रतिपद्यमानकचिन्तायां च एकस्वामिक एव नमस्कारो, जातिमात्राभ्युपगमात्, शेषनयानां तु व्यवहारादीनां प्रतिपद्यमानको नमस्कारस्यैको वा जीवोऽनेके वा, पूर्वप्रतिपन्नास्तु नियमेनानेके, तेषां गतिचतुष्टयेऽपि मार्गणायामसङ्ख्येयानां सदैव लाभात्, आह च–'पडिवज्जमाणतो पुण एगोऽणेगे व संगहं मोत्तुं । इट्ठो सेसनयाणं पडिवन्ना नियमतोऽणेगा ॥ १ ॥" इह ऋजुसूत्रादयोऽविशुद्धाः प्रतिपत्तव्याः, अनेकाभ्युपमात्, अन्यथा परकीयानभ्युपगमेनानेकाभ्युपगमानुपपत्तेः, अथ नमस्करणं नमस्कारः, नमस्करणक्रिया च सकर्म्मिका, ततः संशयः–किमसौ नमस्कारो नमस्कृतिक्रियानिष्पादकस्य कर्त्तुः उत नमस्कार्यस्य पूज्यस्य ?, उच्यते, अत्र नयैर्विचारः, तत्र नैगमव्यवहारनयमतं नमस्कार्यस्य नमस्कारो, न नमस्कर्त्तुः, तस्य तदुपभोगाभावात्, तथाहि–यद्यपि नाम नमस्कारक्रियानिष्पादकः कर्त्ता तथापि नासौ तं नमस्कारमुपभुङ्क्ते, किन्तु नमस्कार्य एव, ततो यथा भिक्षानिष्पादकोऽपि दाता न तामुपभुङ्क्ते इति तस्य न भिक्षा, किन्तु भिक्षोः, एवं नमस्कारोऽपि नमस्कार्यस्यैव, नतु नमस्कर्त्तुरिति, नमस्कार्यं तु वस्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विविधं–जीवरूपमजीवरूपं च, जीवरूपं जिनादि अजीवरूपं तत्प्रतिमादि, जीवाजीवपदाभ्यां चैकवचनबहुवचनाभ्यामष्टौ भङ्गाः, तद्यथा–जीवस्य १ अजीवस्य २ जीवानां ३ अजीवानां ४ जीवस्याजीवस्य च ५ जीवस्याजीवानां च ६ जीवानामजीवस्य च ७ जीवानामजीवानां च ८, अत्रोदाहरणानि–'जीवस्स सो जिणस्स उ अज्जीवस्स उ जिणिंदपडिमाए । जीवाण जईणंपि व अजीवाणं तु पडिमाणं ॥१॥ जीवस्साजीवस्स य जइणो बिंबस्स वेगतो समयं । जीवस्साजीवाण य जइणो पडिमाण वेगत्थ ॥२॥ जीवाणमजीवस्स य जईण बिंबस्स वेगतो समयं। जीवाणमजीवाण य जईण पडिमाण वेगत्थ ॥ २ ॥' ननु प्राक् सर्वनयमताभिप्रायेणेदमुक्तं–'जीवो नमस्कारः' केवलं केषांचिन्नयानामभिप्रायेण सामान्येन जीवः अपरेषां नमस्कारक्रियापरिणतः, अत्र तु विपरीतार्थकथनमिति कथं न विरोधः ?, नैष दोषः, नमस्कारो हि प्रागुक्तयुक्तिभिः सर्वनयमताभिप्रायेण जीव एव, जीवादन्यस्य नमस्कारक्रियाकर्तृत्वायोगात्, केवलं स जीवकर्तृकोऽपि सन् कस्यावुपयोगद्वारेणाभवतीति स्वामित्वचिन्तामात्रमत्र क्रियते, ततो न कश्चिद्दोषः, आह च भाष्यकृत्–"जीवोत्ति नमोक्कारो नणु सव्वमयं कहं पुणो भेओ ? । इह जीवस्सेव सतो भन्नइ सामित्तचिंतेयं ॥ १ ॥" सङ्ग्रहनयस्तु सामान्यमात्रग्राही, अत एव अयं स्वः अयं परः अयं जीवः अथमजीव इति विशेषणनिरपेक्षो नमस्कारं–नमःसामान्यमात्रमेकस्य स्वामिमात्रस्य जीवाजीवविशेषणरहितस्याभिमन्यते, न बहूनां, नापि बहुप्रभेदान्नमस्कारान्, न खलु स जीवस्यायं नमस्कारोऽयमजीवस्यायं स्वस्य अयं परस्येति स्वामिभेदान् कर्तृभेदान् वा नमस्कारस्यानुमन्यते, सामान्यमात्राक्षेपात्, उक्तं च–"सामन्नमेत्तगाही सपरजियेयरविसेसणोऽभिन्नो । न य भेयमिच्छइ सया स नमोसामन्नमेत्तस्स ॥ १ ॥" अथवा स सङ्ग्रहनयः सर्ववस्तूनां सर्वेषामपि च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म्मधर्म्मिणामभेदमात्रमेवेच्छति, न भेदं, ततः कस्यासौ नमस्कार इति स्वामित्वचिन्तैव तन्मतेन नोपपद्यते, केवलं नमस्कारक्रियानिष्पादको जीवो, जीवाजीवानां च भेद इति, जीवो नमस्कार इति सर्वदैव तदभिप्रायेण तुल्याधिकरणता, अशुद्धतरो वा कश्चित् सङ्ग्रहो नमस्कारं सम्बन्धितयाऽभिमन्यमानो जीवस्येति प्रतिपद्यते, नाजीवस्य नापि जीवानामित्यादि, आह च–"जीवो नमोत्ति तुल्लाहिगरणयं वेइ नउ स जीवस्स । इच्छइ वाऽसुद्धयरो तं जीवस्सेव नऽन्नस्स ॥ १ ॥" ऋजुसूत्रमतं तु नमस्कारस्य ज्ञानक्रियाशब्दरूपत्वात् तेषां च कर्तुरनर्थान्तरत्वात् कर्तृस्वामिक एव नमस्कारो, न पूज्यस्वामिकः, आह च–"उज्जुसुयमयं नाणं सद्दो किरिया व जं नमोक्कारो । होज्ज नहि सव्वहा सो जुत्तो तक्कत्तुरन्नस्स ॥ १ ॥" शब्दादिनयाः प्राहुः–ज्ञानमेव नमस्कारो, न शब्दक्रिये, व्यभिचारात्, तथाहि–शब्दक्रियाविरहेऽपि भवति नमस्कारोपयोगमात्रादिष्टफलसिद्धिः, न तदभावे शब्दक्रियासद्भावेऽपीति, ततस्तन्मतेनोपयुक्तस्य कर्त्तुरेव नमस्कारो, न बाह्यस्य, आह च–"जं नाणं चेव नमो सद्दाईणं न सद्दकिरियातो । तेण विसेसेण तयं बज्झस्स न तेऽणुमन्नंति ॥१॥" कस्येतिद्वारं गतम्, अधुना केनेति द्वारमुच्यते–केन साधनेन साध्यते नमस्कारः ?, तत्रेयं गाथा—

नाणावरणिज्जस्स य दंसणमोहस्स तह खओवसमे । जीवमजीवे अट्ठसु भंगेसु अ होइ सव्वत्थ ॥ ८९३ ॥

ज्ञानावरणीयस्येति सामान्योक्तावपि मतिज्ञानावरणीयस्य श्रुतज्ञानावरणीयस्य चेति द्रष्टव्यं, नमस्कारस्य मतिश्रुतज्ञानान्तर्गतत्वात्, ज्ञानं च सम्यग्दर्शनमृते न भवति, तत आह–'दर्शनमोहस्य' दर्शनमोहनीयस्य च यः क्षयोपशमस्तेन साध्यते नमस्कारः, तद्वशादवाप्यते नमस्कार इति भावः, तस्य च आवरणस्य द्विविधानि स्पर्द्धकानि भवन्ति–सर्वोपघातीनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशोपघातीनि च, सर्वं स्वावार्यं गुणमुपघ्नन्तीत्येवंशीलानि सर्वोपघातीनि, स्वावार्यस्य गुणस्य देशमुपघ्नन्तीत्येवंशीलानि देशोपघातीनि, तत्र सर्वेषु सर्वघातिषु स्पर्द्धकेषु उद्घातितेषु देशोपघातिनां च स्पर्द्धकानां प्रतिसमयशुद्ध्यपेक्षमनन्तैर्भागैः क्षयमुपगच्छद्भिर्विमुच्यमानः क्रमेण नमस्कारस्य प्रथमं नकारलक्षणमक्षरं लभते, एवमेकैकवर्णप्राप्त्या समस्तं नमस्कारं लभते "मइसुयनाणावरणं दंसणमोहं च तदुवघातीणि । तप्फड्डगाइं दुविहाइं सव्वदेसोवघाईणि ॥ १ ॥ सव्वेसु सव्वघाइसु हएसु देसोवघाइयाणं च । भागेहिं मुच्चमाणो समए समए अणंतेहिं ॥२॥ पढमं लहइ नकारं एक्केकं वन्नमेवमक्षंपि । कमसो विसुज्झमाणो लभइ समत्तं नमोक्कारं ॥ ३ ॥ क्षयोपशमस्वरूपं चैवम्–उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य क्षयः, शेषस्य तूपशमः, उक्तं च–"खीणमुइन्नं सेसयमुवसंतं भन्नए खतोवसमो ॥" गतं केनेति द्वारम् । अधुना कस्मिन्निति द्वारावसरः, तत्र कस्मिन्निति सप्तमी अधिकरणे, अधिकरणं चाधारः, स च चतुर्भेदः, तद्यथा–व्यापक औपश्लेषिकः सामीप्यको वैषयिकश्च, तत्र व्यापको यथा तिलेषु तैलं, औपश्लेषिको यथा कटे आस्ते, सामीप्यको यथा गङ्गायां घोषः, वैषयिको यथा रूपे चक्षुः, तत्राद्योऽभ्यन्तरः, शेषा बाह्याः, अत्र नयैर्विचारः, तत्र नैगमव्यवहारौ बाह्यमिच्छतः, तन्मतानुवादि साक्षादिदं गाथाशकलं 'जीवमजीवे' त्यादि, जीवमजीव इति प्राकृतशैल्या अभूतस्यैवानुस्वारस्यागमः, तत्त्वत एष भावार्थः–जीवेऽजीवे इत्यादिष्वष्टसु भङ्गेषु भवति, सर्वत्र नमस्कार इति गम्यते, नमस्कारो हि जीवगुणत्वात् जीव एव, स च यदा गजेन्द्रादौ तदा जीवे, यदा कटादौ तदा अजीवे, यदा बहुषु पुरुषेषु तदा जीवेषु ३ यदा बहुषु कटादिषु तदा अजीवेषु ४ यदा एकस्मिन् घोटके आस्तरणे च तदा जीवेऽजीवे च ५ यदा एकस्मिन्नेव घोटके बहुष्वास्तरणेषु तदा जीवेऽजीवेषु ६ यदा बहुषु पुरुषेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वाहकेष्वेकस्मिन् वाहने शिबिकादौ तदा जीवेष्वजीवे च ७ यदा बहुषु पुरुषेषु वाहकेषु बहुषु च वाहनाङ्गेषु तदा जीवेष्वजीवेषु च ८। आह–पूज्यस्य नमस्कार इति नैगमव्यवहारौ, स एव च किमित्याधारो न भवति येन पृथगिष्यते ?, उच्यते, नावश्यं यत् यस्य सम्बन्धि तस्य स एवाधारः, अन्यथापि दर्शनात्, यथा देवदत्तस्य धान्यं क्षेत्रे, ततोऽत्रापि पृथगाधार इत्यष्टभङ्गी, तुशब्दात् शेषनयाक्षेपः, स विनेयजनानुग्रहाय सङ्क्षेपतो दर्श्यते, तत्र सङ्ग्रहनयः सामान्यमात्रग्राहितया स्वपरजीवेतरविशेषणरहित इति नमस्कारमाधारमात्रे अविशिष्टे इच्छति, आह च–"सामन्नमेत्तगाही सपरजिएयरविसेसनिरवेक्खो। संगहनओऽभिमन्नइ आहारे तमविसिट्ठंमि ॥ १ ॥" अपरस्तु जीवधर्म्मो नमस्कार इति जीवे एवाधारे, नाजीवे इति प्रतिपन्नः, यदिवाऽन्योऽन्यत्र वर्त्तते इति व्यधिकरणं सङ्ग्रहनयो मूलत एव नाभ्युपगच्छतीति तन्मते नाधिकरणचिन्ता, ऋजुसूत्रस्तु ज्ञानं शब्दः क्रिया वा नमस्कार इति प्रतिपन्नवान्, ज्ञानादयश्च जीवादनन्य इति जीव एव मन्यते नमस्कारं, नान्यत्र, ननु ऋजुसूत्रोऽन्यमप्याधारमिच्छत्येव 'आकाशे वसती'ति वचनात्, सत्यमेतत्, केवलं द्रव्यविवक्षायां न गुणविवक्षायामित्यदोषः, शब्दादयस्तु ज्ञानरूपमेव नमस्कारमिष्टवन्तः, न शब्दक्रियारूपं, अतो ज्ञानरूपे जीवे एवेच्छति, नान्यत्र, गतं कस्मिन्निति द्वारम्। अधुना कियच्चिरमसौ भवतीति निरूपयन्नाह—

उवओग पडुच्चंतोमुहुत्त लद्धीइ होइ उ जहन्नो। उक्कोस ट्ठिई छावट्ठि सागर (द्वारं) अरिहाइ पंचविहो (द्वारं६) ८९४

इह नमस्कारस्य कालचिन्ता द्विधा–उपयोगतो लब्धितश्च, तत्रोपयोगं प्रतीत्य स्थितिर्जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तमेव, 'लद्धीए' इत्यादि, लब्धेस्तु तदावरणक्षयरूपाया जघन्यतः स्थितिः अन्तर्मुहूर्त्तमेव, उत्कर्षतः षट्षष्टिसागरोपमाणि, साति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरियवृत्तौ नमस्कारे

॥४९१॥

रेकाणीति गम्यते, सम्यक्त्वकालो हि नमस्कारकालः, सम्यक्त्वकालश्चोत्कर्षतो लब्धिमधिकृत्य नरभवातिरेकाणि षट्षष्टिः सागरोपमाणीति, एषा च चिंता एकं जीवमधिकृत्य, नानाजीवान् प्रति पुनः सर्वकालमिति ॥ द्वारम् । सम्प्रति 'कतिविहो वे'त्यस्य प्रश्नस्य निर्वचनार्थो गाथावयवः, 'अरिहाइ पंचविहो' इति, अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुपदानामादौ सन्निपातादर्हदादिपञ्चविधार्थसम्बन्धात् पञ्चविधो नमस्कारः, द्वारम् ॥ एतेन अर्थान्तरेण तत्त्ववृत्त्या नम इति पदस्याभिसंबन्धमाह ॥ गता षट्पदप्ररूपणा । सम्प्रति नवपदप्ररूपणाया अवसरः, तत्रेयं गाथा—

संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खित्त ३ फुसणा य ४ ।
कालो य ५ अंतर ६ भागो ७ भावे ८ अप्पाबहुं ९ चेव ॥ ८९५ ॥

सदिति सद्भूतं, विद्यमानार्थमित्यर्थः, सच्च तत्पदं च सत्पदं तस्य प्ररूपणा सत्पदप्ररूपणा, कार्येति वाक्यशेषः, यतश्च नमस्कारो जीवद्रव्यादभिन्न इति द्रव्यप्रमाणं वक्तव्यं, कियन्ति नमस्कारवंति जीवद्रव्याणि ?, तथा क्षेत्रमिति कियति क्षेत्रे नमस्कारः, एवं स्पर्शना च कालश्च अन्तरं च वक्तव्यं, तथा भाग इति नमस्कारवन्तः शेषजीवानां कतिभागे वर्त्तन्ते इति भागो वक्तव्यः, तथा 'भावे'त्ति कस्मिन् भावे नमस्कारो वर्त्तते इति वाच्यम्, 'अप्पाबहुं चेव'त्ति अल्पबहुत्वं च वक्तव्यं, प्राक्प्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकापेक्षयेति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति, तत्राद्यं द्वारमभिधित्सुराह—

संतपयं पडिवन्ने पडिवज्जंते य मग्गणं गइसु १ । इंदिय २ काये ३ जोए ४ वेए ५ य कसाय ६ लेसासु ७ ॥ ८९६ ॥

कालवस्तुनी नवपदी च

॥४९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** नमस्कार संबंधे 'संतपद' आदि नव द्वाराणाम् प्ररुपणा क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सन्नित्त ८ नाण ९ दंसण १० संजय ११ उवओगओ १२ य आहारे १३ ।
भासग १४ परित्त १५ पज्जत्त १६ सुहुम १७ सन्नी य १८ भव १९ चरिमे २० ॥ ८९७ ॥

सत्पदस्य–विद्यमानार्थस्य नमस्कारलक्षणस्य, सूत्रे च द्वितीया षष्ठ्यर्थे वेदितव्या प्राकृतत्वात्, पूर्वप्रतिपन्नान् प्रतिपद्यमानकांश्चाश्रित्य मार्गणा–अन्वेषणा कर्त्तव्या, क्वेत्याह–गतिषु चतसृष्वपि, तद्यथा–नमस्कारः किमस्ति किं वा नास्तीति, तत्रास्तीति ब्रूमः, तथाहि–चतुष्प्रकारायामपि गतौ नमस्कारस्य पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः, प्रतिपद्यमानकास्तु विवक्षितकाले भाज्याः, कदाचिद् भवन्ति कदाचिन्नेति, एवमिन्द्रियादिषु चरमान्तेषु द्वारेषु यथा पीठिकायां मतिज्ञानस्य सत्पदप्ररूपणा कृता तथा नमस्कारस्यापि कर्त्तव्या, तयोरभिन्नस्वामिकत्वेनैकवक्तव्यत्वात् ॥ तदेवं गतं सत्पदप्ररूपणाद्वारम्, अधुना द्रव्यप्रमाणक्षेत्रस्पर्शनारूपं द्वारत्रयमभिधित्सुराह—

पलियासंखिज्जइमो पडिवन्नो होज्ज खित्त लोअस्स । सत्तसु चउद्दसभागेसु हुज्ज फुसणावि एमेव ॥ ८९८ ॥

इह नमस्कारस्य प्रतिपद्यमानकाः कदाचिद्भवन्ति कदाचिन्न, यदापि भवंति तदापि जघन्यत एको द्वौ वा, उत्कर्षतः सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमस्य असङ्ख्येयभागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणाः, 'पलियमसंखेज्जइमो पडिवन्नो'त्ति पल्योपमस्य–सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमस्य असङ्ख्येयो भागः, पूर्वप्रतिपन्नाः जघन्यतः सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागप्रदेशप्रमाणाः, उत्कर्षतोऽप्येतावत्प्रमाणा एव, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसातव्यमिति । द्वारम् ॥ क्षेत्रद्वारमाह–'खेत्त लोगस्से'–त्यादि, क्षेत्रमधिकृत्य चिन्तायां लोकस्य सप्तसु चतुर्दशभागेषु भवेन्नमस्कारः, इयमूर्ध्वलोकमधिकृत्य चिन्ता, अधोलोक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तायां तु पञ्चसु चतुर्दशभागेषु द्रष्टव्यम्, तथाहि–नमस्कारवान् जीव ऊर्ध्वमनुत्तरसुरेषु गच्छन् लोकस्य सप्तसु चतुर्दशभागेषु भवति, अधस्तु षष्ठपृथिव्यां गच्छन् लोकस्य पंचसु चतुर्दशभागेष्विति। 'फुसणावि एमेव'त्ति, एवमेव स्पर्शनाऽपि वक्तव्या, नवरं स्पर्शनाचिन्तायां पर्यन्तवर्त्तिनोऽपि प्रदेशान् स्पृशतीति क्षेत्रात् स्पर्शनाया भेदेनाभिधानं ॥ सम्प्रति कालद्वारप्रतिपादनार्थमह—

एगं पडुच्च हिट्ठा तहेव नाणाजियाण सव्वद्धा ।

एकं नमस्कारवन्तं जीवं प्रतीत्य यथैवाधस्तात् 'उवओग पडुच्चंतोमुहुत्त लद्धीउ होइ उ जहण्णा' इत्यादिना काल उक्तः तथैवेहापि वक्तव्यः, नानाजीवानां पुनर्नमस्कारचिन्तायां सर्वाद्धा-सर्वः कालः, लोकेऽस्याऽऽकालमविच्छेदेन भावात्। गतं कालद्वारम्, अधुनाऽन्तरद्वारं भावद्वारं चाह—

अंतर पडुच्चमेगं जहन्नमंतोमुहुत्तं तु ॥ ८९९ ॥

उक्कोसेणं चेवं अद्धापरियट्टओ य देसूणो। नाणाजीवे नत्थि उ भावे य भवे खओवसमे ॥ ९०० ॥

नमस्कारात् परिभ्रष्टस्य पुनर्नमस्कारलाभे यदपान्तरालं तत् एकं जीवं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षतस्त्वेतदेव दर्शयति–'अद्धा परियट्टतो उ देसूणो' अर्धः पुद्गलपरावर्त्तो देशोनः, प्राप्तभावनमस्कारस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रसंसारभावात्, नानाजीवान् प्रति पुनर्नास्त्यन्तरं, न खलु स कश्चनापि कालोऽस्ति यत्र सर्वथा न कस्यापि लोके नमस्कारसंभव इति, द्वारम्। भावे तु विचार्यमाणे नमस्कारो भवेत् क्षायोपशमिके, एतच्च प्राचुर्यमङ्गीकृत्योक्तम्, अन्यथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षायिकौपशमिकयोरप्येके वदन्ति, तत्र क्षायिके यथा श्रेणिकस्य, औपशमिके श्रेण्यन्तर्गतानामिति, इह यद्यपि 'उद्देश-क्रमेण निर्देश' इति भागद्वारव्याख्यानानन्तरं भावद्वारव्याख्यानमुचितं तथापि 'विचित्रा सूत्रगति'रिति न कश्चिद्दोषः ॥ सम्प्रति भागद्वारं व्याचिख्यासुराह—

जीवाणऽणंतभागो पडिवन्नो सेसगा अणंतगुणा ।

जीवानामनन्ततमो भागो नमस्कारस्य प्रतिपन्नः प्राप्यते, शेषास्तु नमस्कारमप्रतिपन्ना मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, गतं भागद्वारम् । अल्पबहुत्वद्वारम्—यथा पीठिकायां मतिज्ञानस्य तथा भावनीयं ॥ तदेवं कृता नवपदप्ररूपणा, सम्प्रति चश-ब्दाक्षिप्तां पञ्चविधप्ररूपणामभिधाय पश्चिमार्धेन वस्तुद्वारं निरूपयति—

वत्थुं अरहंताइं पंच भवे तेसिमो हेऊ ॥ ९०१ ॥

वस्तु दलिकं द्रव्यं योग्यमर्हमित्यनर्थान्तरं, तत्र वस्तु—नमस्कारस्य योग्यमर्हदादयः पञ्च भवन्ति, तेषां च वस्तुत्वे—नम-स्कारार्हत्वेऽयं वक्ष्यमाणलक्षणो हेतुः ॥ साम्प्रतं चशब्दसूचितां पञ्चविधां प्ररूपणां प्रतिपिपादयिषुराह—

आरोवणा य भयणा पुच्छण तह दावणा य निज्जवणा ।

आरोपणा भजना पृच्छा 'दायण'त्ति दर्शना दापना वा निर्यापना च, तत्र किं जीव एव नमस्कारः ? आहोश्विन्नम-स्कारो वा जीव ? इत्येवं यत्परस्परमवधारणाऽऽरोपणं पर्यनुयोगरूपमेषा आरोपणा, उक्तं च—"किं जीवो होज्ज नमो ? नमो व जीवोत्ति ? जं परोप्परतो । अज्झारोवणमेसो पज्जणुजोगो मयाऽऽरुवणा ॥१॥" अत्र जीव एव नमस्कार इति प्रत्य-

आ. सू. ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वस्थानं भजना, तथाहि--जीव एव नमस्कार इत्युत्तरपदावधारणं, अजीवात् व्यवच्छिद्य जीव एव नमस्कार इत्यवधारणात्, जीवस्त्वनवधारितो नमस्कारो वा स्यादनमस्कारो वा, यथा द्रुम एव चूत इत्युक्ते द्रुमश्चूतोऽचूतो वा, तत एतत्प्रत्यवस्थानमेकपदव्यभिचाराद्भजना, आह च--"जीवो नमोऽनमो वा नमो उ नियमेण जीव इइ भयणा। जह चूतो होइ दुमो दुमो उ चूतो अचूतो वा ॥ १ ॥" एवं भजनायां कृतायां शिष्यः प्राह--यदि नाम न सर्वो जीवो नमस्कारः तर्हि स किंस्वरूपो जीवो नमस्कारः? किंस्वरूपो वा अनमस्कारः? इति पृच्छा, अत्र प्रतिव्याकरणं दापना, नमस्कारपर्यायपरिणतो जीवो नमस्कारो, नापरिणत इति, निर्यापणा त्वेष एव नमस्कारपर्यायपरिणतो जीवो नमस्कारः, नमस्कारोऽपि जीवपरिणाम एव, नाजीवपरिणाम इति, अथ दापनानिर्यापनयोः कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते--दापना प्रश्नार्थव्याख्यानं, निर्यापना तस्यैव निगमनम् ॥ अथवेयमन्या चतुर्विधा प्ररूपणा—

नमुक्कारऽनमोकारो नोआइजुए व नवहा वा ॥ ९०२ ॥

इह चातुर्विध्यं प्ररूपणायाः प्रकृत्यकारनोकारोभयनिषेधसमाश्रयणात् प्रतिपत्तव्यम्, तत्र प्रकृतिर्नाम शुद्धतास्वभावो यथा नमस्कार इति, स एव नञा सम्बन्धादकारसम्भवेऽनमस्कारः, स एव नोशब्दोपादानात् नोनमस्कारः, उभयनिषेधात्तु नोअनमस्कारः, तत्र नमस्कारः अनमस्कार इति भङ्गकद्वयं साक्षादुपात्तं, 'नोआदिजुते' इति नोशब्देन आदिर्युक्तो यस्य नमस्कारस्य इतरस्य वा अनमस्कारस्य स नोआदियुक्तः, अनेन शेषौ द्वौ भङ्गावाक्षिप्तौ, नोनमस्कारो नोअनमस्कार इति, तत्र नमस्कारो नाम नमस्कारपरिणतो जीवः, अनमस्कारस्त्वपरिणतो लब्धिशून्यो वा, नोनमस्कारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

विवक्षया नमस्कारदेशोऽनमस्कारो वा, देशसर्वनिषेधपरत्वान्नोशब्दस्य, नोअनमस्कारोऽपि अनमस्कारदेशो वा नमस्कारो वा, एषा चतुर्विधा प्ररूपणा। अथैतेषु भङ्गेषु मध्ये को नयः कान् भङ्गकानिच्छतीति निरूप्यते, तत्र शब्दादयस्त्रयः शब्दनयाः सम्पूर्णमेव प्रदेशरहितमखण्डं वस्त्वभ्युपगच्छन्तीति तन्मतेन द्वावेव भङ्गौ–नमस्कारोऽनमस्कार इति, नैगमादयस्तु चत्वारो नया देशप्रदेशानपि वस्तुनोऽभ्युपगच्छन्तीति तन्मतापेक्षया चत्वारोऽपि भङ्गाः, तदेवं प्रागुक्ता पञ्चविधा प्ररूपणा इयं चतुर्विधेति सङ्कलने प्रकारान्तरेण नवविधा प्ररूपणा प्रतिपादिता द्रष्टव्या, गतं प्ररूपणाद्वारम्। इदानीं 'वत्थुं तऽरहंताई पंच भवे तेसिमो हेऊ' इति गाथाशकलोपन्यस्तं वस्तुद्वारमवसरप्राप्तं विस्तरतो व्याख्यायते, तच्चानन्तरोक्तं गाथाशकलं प्रागेव व्याख्यातं, नवरं तत्र यदुक्तं 'तेषां वस्तुत्वे अयं हेतु' रिति स इदानीं हेतुरुच्यते, तत्रेयं गाथा—

मग्गो अविप्पणासो आयारे विणयया सहायत्तं। पंचविहनमुक्कारं करेमि एएहिं हेऊहिं ॥ ९०३ ॥

मार्गः अविप्रणाश आचारः विनयता सहायत्वं यथाक्रममर्हदादीनां नमस्कारार्हत्वे इमे हेतवः, तथा चाह–पञ्चविधनमस्कारं करोम्येतैर्हेतुभिरिति ॥ इयमत्र भावना–अर्हतां नमस्कारार्हत्वे मार्गः–सम्यग्दर्शनादिलक्षणो हेतुः, तथाहि–असौ मार्गो भगवद्भिरेव प्रदर्शितः तस्माच्च मुक्तिपदावाप्तिः ततः परम्परया मुक्तिहेतुत्वान्नमस्कारार्हास्ते इति, सिद्धानां नमस्कारार्हत्वेऽविप्रणाशः–शाश्वतत्वं हेतुः, यतस्तदविप्रणाशमवगम्य प्राणिनः संसारवैमुख्येन मोक्षाय घटन्ते, तथा आचार्याणां नमस्कारार्हत्वे आचारो हेतुः, तथाहि–तानाचारयत आचारख्यापकांश्च प्राप्य प्राणिन आचारपरिज्ञानानुष्ठाननिमित्तं यतन्ते, उपाध्यायानां तु नमस्कारार्हत्वे विनयो हेतुः, यतस्तान् स्वयं विनीतान् प्राप्य कर्म्मविनयसामर्थ्यविनयवन्तो भवन्ति देहिनः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** नमस्कार-करणे हेतव:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

साधूनां नमस्कारार्हत्वे हेतुः सहायत्वं, यतस्ते सिद्धिवधूसङ्गमैकनिष्ठानां साधूनां तदवाप्तिक्रियासाहायकमनुतिष्ठन्ति, एवं तावत् समासेन अर्हदादीनां नमस्कारार्हत्वद्वारेण मार्गप्रणयनादयो गुणा उक्ताः ॥ सम्प्रति प्रपञ्चेनार्हतां गुणानुपदर्शयन्नाह—

अडवीअ देसिअत्तं तहेव निज्जामया समुद्दम्मि । छक्कायरक्खणट्ठा महगोवा तेण वुच्चंति ॥ ९०४ ॥

अटव्यां देशकत्वं कृतमर्हद्भिः, तथैव निर्यामकाः समुद्रे, तथा भगवन्तः एव षट्कायरक्षणार्थं यतः प्रयत्नं कृतवंतस्ततस्ते महागोपा उच्यन्ते, इति गाथासमासार्थः ॥ अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति, तत्र आद्यद्वारावयवार्थप्रतिपादनार्थमाह—

अडविं सपच्चवायं वोलिन्ता देसिओवएसेणं । पावंति जहिट्ठपुरं भवाडविंपी तहा जीवा ॥ ९०५ ॥

पावंति निवुइपुरं जिणोवइट्ठेण चेव मग्गेण । अडवीइ देसिअत्तं एवं नेयं जिणिंदाणं ॥ ९०६ ॥

अटवीं प्रतीतां सप्रत्यपायां—व्याघ्रादिप्रत्यपायबहुलां वोलित्वा—उल्लङ्घ्य देशकोपदेशेन—निपुणमार्गज्ञोपदेशेन प्राप्नुवन्ति यथा इष्टपुरं—इष्टं पत्तनं, तथा जीवा अपि भवाटवीं, अपिशब्दो भिन्नक्रमः, स च यथास्थानं योजितः, उल्लङ्घ्येति वर्त्तते, किं: ?, प्राप्नुवन्ति निर्वृतिपुरं—सिद्धिपुरं जिनोपदिष्टेनैव, नान्योपदिष्टेन, अन्येषामसर्वज्ञतया सम्यग्मार्गपरिज्ञानासम्भवात्, मार्गेण, एवमटव्यां देशकत्वं ज्ञेयं जिनेन्द्राणामिति गाथाद्वयसमासार्थः ॥ व्यासार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—एत्थ अडवी दुविहा—दव्वाडवी भावाडवी य, तत्थ दव्वाडवीए ताव उदाहरणं—वसंतपुरं नगरं, धणो सत्थवाहो, सो पुरं गंतुकामो घोसणं करेइ, जहा नंदिफलनायए, तत्थ बहवे तडियकप्पडिगादयो संपविट्ठा, सो तेसिं मिलियाणं पंथगुणे कहेइ, एगो पंथो उज्जुगो १ एगो वंको २, जो सो वंको तेण मणागं सुहेण गम्मइ, बहुणा य कालेण इच्छियं पुरं पाविज्जइ, अवसाणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य सो उज्जुगं चेव ओयरइ, जो पुण उज्जुगो तेण लहुं चेव गम्मइ, परं किच्छेण, जतो सो अतीव विसमो सण्हो य, तत्थ ओयारे चेव दुवे महाघोरा वग्घसिंघा परिवसंति, ते ततो पाए चेव लग्गंति, अमुयंताण य पंथं न पवहंति, अवसाणं च जाव अणुवट्टंति, रुक्खा य तत्थ एगे मणोहरा, तेसिं पुण छायासु न वीसमियव्वं, मारणप्पिया खु सा छाया, अवरे पुण परिसडियपंडुपत्ता, तेसिं पुण अहो मुहुत्तगं वीसमियव्वं, मणोहररूवधारिणो महुरवयणा य एत्थ मग्गतडट्ठिया चेव बहवे पुरिसा हक्कारेंति, तेसिं वयणं न सोयव्वं, सत्थिगा खणंपि न मोत्तव्वा, एगागिणो नियमा भयं दुरंतं, थोवो दवग्गी अप्पमत्तेहिं उल्हवेयव्वो, अणोल्हविज्जंतो य नियमेण डहइ, पुणो य दुग्गुच्चओ पवतो उवउत्तेहिं चेव लंघेयव्वो, अलंघणे नियमा मरिज्जइ, पुणो महती अइगुविला वंसकुडंगी सिग्घं लंघेयव्वा, तंमिट्ठियाणं बहू दोसा, ततो लहुगो खड्डो लग्गो, तस्स समीवे मणोरहो नाम वंभणो, निच्चं सन्निहितो अच्छइ, सो भणइ--मणागं पूरेहि एयंति, तस्स वयणं न सोयव्वं, न सो पूरियव्वो, सो खु पूरिज्जमाणो महल्लतरगो हवति, पंथातो य भज्जिज्जिइ, तहा एत्थ किंपागदुमाणं फलाणि पंचपगाराणि दिव्वाणि नेत्ताइसुहकराणि ण पेक्खियव्वाणि न भोत्तव्वाणि, बावीसं च णं एत्थ घोरा महाकराला पिसाया खणं खणमभिद्दवंति, तेऽवि णं न गणेयव्वा, भत्तं पाणं च एत्थ विभागतो विरसं दुल्लहं वत्ति, अपयाणगं च न कायव्वं, अणवरयं च गंतव्वं, रत्तीएवि जामदुवे सुवियव्वं, सेसदुगे य गंतव्वमेव, एवं च गच्छंतेहिं देवाणुप्पिया ! खिप्पामेव अडवी लंघिज्जइ, लंघित्ता य तमेगंतदोगच्चवज्जियं पसत्थं सिवपुरं पाविज्जइ, तत्थ य पुणो न होंति केइ किलेसा इति, ततो तत्थ केई तेण समं पयट्टा, जे उज्जुगेण पहाविया, अण्णे पुण इयरेण, ततो सो पसत्थे दिवसे उच्चलितो, पुरतो वच्चंतो मग्गसिलाइसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(विसमं) आहणइ, पंथस्स दोसगुणपिसुणगाणि अक्खराणि लिहति, एत्तियं गयं एत्तियं सेसंति विभासा, एवं जे तस्स निद्देसे वट्टिया ते तेण समं अचिरेण तं पुरं पत्ता, जेऽवि लिहियाणुसारेण सम्मं गच्छंति तेऽवि पावंति, जे न वट्टिया न वा वट्टंति छायादिपडिसेविणो य ते न पत्ता न यावि पावेंति, एयं दव्वाडवीदेसगनायं, इदाणिं भावाडवीदेसगं जोइज्जइ, सत्थवाहत्थाणीया अरहंता, उग्घोसणाथाणीया धम्मकहा, तडिगाइथाणीया जीवा, अडवीथाणितो संसारो, उज्जुगो साहुमग्गो, वंको य सावगमग्गो, पप्पुपुरत्थाणीतो मोक्खो, वग्घसीहत्थाणीया रागदोसा, मणोहररुक्खच्छायाथाणियातो इत्थियासंसत्तवसहीतो परिसडियाइथाणियातो अणवज्जवसहीतो, मग्गतडत्थहकारणपुरिसत्थाणिगा पासत्थादी अकल्लाणमित्ता, सत्थिगाथाणिया साहू, दवमादिथाणीया कोहादओ कसाया, फलथाणीया विसया, पिसायथाणीया बावीसं परिसहा, भत्तपाणाणि एसणिज्जाणि, अपयाणगथाणितो निरुज्जमो, जामदुगे सज्झातो, पुरपावणं च मोक्खसुहंति, एत्थ य तं पुरं गंतुकामो जणो उवदेसणादिणा उवगारी सत्थवाहोत्ति नमंसति, एवं मोक्खत्थीहिवि भयवं पणमेयव्वो, तथा चाह—

जह तमिह सत्थवाहं नमइ जणो तं पुरं तु गंतुमणो। परमुवगारित्तणतो निव्विग्घत्थं च भत्तीए ॥ ९०७ ॥
अरिहो उ नमोक्कारस्स भावओ खीणरागमयमोहो। मोक्खत्थीणंपि जिणो तहेव जम्हा अतो अरिहा ॥ ९०८ ॥

यथा च तत् विवक्षितं पुरं गन्तुमना जनः परमोपकारित्वात् निर्विघ्नार्थं च भक्त्या तं सार्थवाहमिह लोके नमति, तथैव जिनो भावतः क्षीणरागमदमोहः–प्रध्वस्तरागद्वेषमोहो नमस्कारस्यार्हो–योग्यो यस्मादतोऽर्हन्।

संसाराअडवीए मिच्छत्तन्नाणमोहिअपहाए। जेहिं कय देसियत्तं, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ९०९ ॥

॥ ४९५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

संसाराटव्यां, किंविशिष्टायामित्याह–मिथ्यात्वाज्ञानमोहितपथायां–मिथ्यात्वाज्ञानाभ्यां मोहितः पन्था यस्यां सा तथा तस्यां, यैः कृतं देशकत्वं तानर्हतः प्रणिपतामि–नमस्करोमि ॥ तच्च देशकत्वं दृष्ट्वा ज्ञात्वा च सम्यक्पन्थानमासेव्य च कृतं, तथा चाह—

सम्मद्दंसणदिट्ठो नाणेण य तेहिं सुट्ठु उवलद्धो । चरणकरणेहिं पहतो नेवाणपहो जिणिंदेहिं ॥ ९१० ॥

सम्यग्दर्शनेन–अविपरीतेन दर्शनेन दृष्टो, ज्ञानेन च सुष्ठु–यथावस्थितस्तैरर्हद्भिर्ज्ञातः, चरणं च करणं च चरणकरणं, समाहारत्वादेकवचनं, तेन प्रहतः–आसेवितो निर्वाणमार्गो जिनेन्द्रैः, तत्र चरणं–व्रतादि करणं–पिण्डविशुद्ध्यादिः, यथोक्तम्–"वय ५ समणधम्म १० संजम १७ वेयावच्चं १० च बंभगुत्तीतो ९ । नाणातितियं ३ तव २ कोहनिग्गहाई चरणमेयं ॥ १ ॥ पिंडविसोही ४ समिती ६ भावण १२ पडिमा १२ य इंदियनिरोहो ५ । पडिलेहण २५ गुत्तीओ ३ अभिग्गहा ४ चेव करणं तु ॥ २ ॥" न केवलं प्रहत एव, किन्तु ते खल्वनेन पथा निर्वृतिपुरमेव प्राप्ताः ॥ तथा चाह—

सिद्धिवसहिमुवगया नेवाणसुहं च ते अणुप्पत्ता । सासयमवाबाहं पत्ता अयरामरं ठाणं ॥ ९११ ॥

सिद्धिवसतिं–मोक्षालयम् उपगताः–सामीप्येन कर्म्मविगमलक्षणेन प्राप्ताः, अनेन एकेन्द्रियव्यवच्छेदमाह, केषाञ्चित् सुखदुःखरहिता एव तत्र तिष्ठन्तीति दर्शनं तत्राह–निर्वाणसुखं च ते अनुप्राप्ताः, निरतिशयसुखं प्राप्ता इत्यर्थः, ते च दर्शनपरिभवादिनेहागच्छन्तीति केषाञ्चिद्दर्शनं तन्निषेधार्थमाह–शाश्वतं–नित्यं अव्याबाधं–व्याबाधारहितं अजरामरं–जरामरणरहितं स्थानं प्राप्ताः ॥ सम्प्रति द्वितीयं द्वारं व्याचिख्यासुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अरिहंत-नमस्कार करणस्य हेतव:

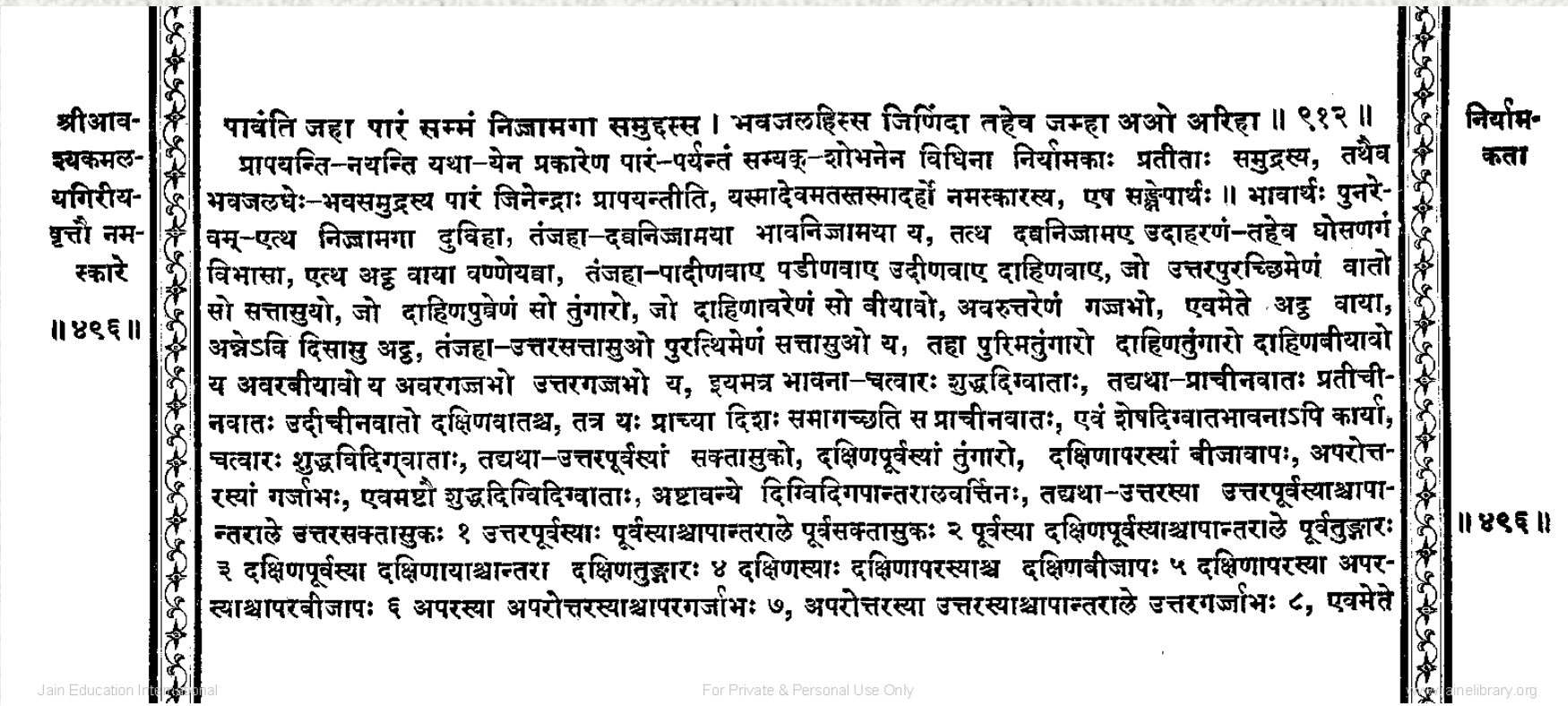

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ४९६ ॥

पावंति जहा पारं सम्मं निज्जामगा समुद्दस्स । भवजलहिस्स जिणिंदा तहेव जम्हा अओ अरिहा ॥ ९१२ ॥

प्रापयन्ति–नयन्ति यथा–येन प्रकारेण पारं–पर्यन्तं सम्यक्–शोभनेन विधिना निर्यामकाः प्रतीताः समुद्रस्य, तथैव भवजलधेः–भवसमुद्रस्य पारं जिनेन्द्राः प्रापयन्तीति, यस्मादेवमतस्तस्मादर्हो नमस्कारस्य, एष सङ्क्षेपार्थः ॥ भावार्थः पुनरेवम्–एत्थ निज्जामगा दुविहा, तंजहा–दव्वनिज्जामया भावनिज्जामया य, तत्थ दव्वनिज्जामए उदाहरणं–तहेव घोसणगं विभासा, एत्थ अट्ठ वाया वण्णेयव्वा, तंजहा–पादीणवाए पडीणवाए उदीणवाए दाहिणवाए, जो उत्तरपुरच्छिमेणं वातो सो सत्तासुयो, जो दाहिणपुव्वेणं सो तुंगारो, जो दाहिणावरेणं सो बीयावो, अवरुत्तरेणं गज्जभो, एवमेते अट्ठ वाया, अन्नेऽवि दिसासु अट्ठ, तंजहा–उत्तरसत्तासुओ पुरत्थिमेणं सत्तासुओ य, तहा पुरिमतुंगारो दाहिणतुंगारो दाहिणबीयावो य अवरबीयावो य अवरगज्जभो उत्तरगज्जभो य, इयमत्र भावना–चत्वारः शुद्धदिग्वाताः, तद्यथा–प्राचीनवातः प्रतीचीनवातः उदीचीनवातो दक्षिणवातश्च, तत्र यः प्राच्या दिशः समागच्छति स प्राचीनवातः, एवं शेषदिग्वातभावनाऽपि कार्या, चत्वारः शुद्धविदिग्वाताः, तद्यथा–उत्तरपूर्वस्यां सक्तासुको, दक्षिणपूर्वस्यां तुंगारो, दक्षिणापरस्यां बीजावापः, अपरोत्तरस्यां गर्जाभः, एवमष्टौ शुद्धदिग्विदिग्वाताः, अष्टावन्ये दिग्विदिगपान्तरालवर्त्तिनः, तद्यथा–उत्तरस्या उत्तरपूर्वस्याश्चापान्तराले उत्तरसक्तासुकः १ उत्तरपूर्वस्याः पूर्वस्याश्चापान्तराले पूर्वसक्तासुकः २ पूर्वस्या दक्षिणपूर्वस्याश्चापान्तराले पूर्वतुङ्गारः ३ दक्षिणपूर्वस्या दक्षिणायाश्चान्तरा दक्षिणतुङ्गारः ४ दक्षिणस्याः दक्षिणापरस्याश्च दक्षिणबीजापः ५ दक्षिणापरस्या अपरस्याश्चापरबीजापः ६ अपरस्या अपरोत्तरस्याश्चापरगर्जाभः ७, अपरोत्तरस्या उत्तरस्याश्चापान्तराले उत्तरगर्जाभः ८, एवमेते

निर्यामकता

॥ ४९६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

षोडश, सप्तदशश्च कालिकावातः, तत्र यथा जलधौ कालिकावातरहिते अनुकूले गर्जभवाते निपुणनिर्यामकसहिता निश्छिद्राः पोता ईप्सितं पत्तनं प्राप्नुवन्ति ॥ एवम्—

मिच्छत्तकालिआवायविरहिए सम्मत्तगज्जहपवाए । एगसमयेण पत्ता सिद्धिवसहिपट्टणं पोआ ॥ ९१३ ॥

मिथ्यात्वमेव कालिकावातो मिथ्यात्वकालिकावातस्तेन विरहिते भवाम्भोधौ, तथा सम्यक्त्वमेव गर्जाभः प्रवातो यत्र स तथा तस्मिन्, एकसमयेन प्राप्ताः सिद्धिवसतिपत्तनं पोताः–जीवबोहिस्थाः अर्हन्निर्यामकोपकारात्॥ ततो यथा सांयात्रिकः सर्वः प्रसिद्धनिर्यामकं चिरगतमपि यात्रासिद्ध्यर्थं पूजयन्ति, एवं ग्रन्थकारोऽपि सिद्धिपत्तनं प्रति प्रस्थितोऽभीष्टयात्रासिद्धये निर्यामकरत्नेभ्यस्तीर्थकृद्भ्यः ॥ स्तवचिकीर्षयेदमाह—

निज्जामगरयणाणं अमूढनाणमयकण्णधाराणं । वंदामि विणयपणओ तिविहेण तिदंडविरयाणं ॥ ९१४ ॥

निर्यामकरत्नेभ्योऽर्हद्भ्योऽमूढज्ञाना–यथावस्थितज्ञाना मननं मतिः–संवित् सैव कर्णधारो येषां ते तथाविधास्तेभ्यो, वन्दे विनयप्रणतस्त्रिविधेन त्रिदण्डविरतेभ्यः 'शक्तादिभिर्बहुल'मिति चतुर्थी ॥ सम्प्रति तृतीयं द्वारं व्याचिख्यासुराह—

पालंति जहा गावो गोवा अहिसावयाइदुग्गेहिं । पउरतणपाणिआणि य वणाणि पावंति तह चेव ॥ ९१५ ॥

जीवनिकाया गावो जं ते पालंति ते महागोवा । मरणाइभयाउ जिणा निव्वाणवणं च पार्विंति ॥ ९१६ ॥

तो उवगारित्तणओ नमोऽरिहा भविअजीवलोगस्स । सव्वस्सेह जिणिंदा लोगुत्तमभावतो तहय ॥ ९१७ ॥

यथा गोपा गाः पालयन्ति–रक्षन्त्यहिश्वापदादिदुर्गेभ्यः वनानि च प्रचुरतृणपानीयानि प्राप्नुवन्ति, तथैव च जीवनिकाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एव–पृथिव्यादिषड्जीवनिकाया एव गावः जीवनिकायगावः तान्, ते भगवन्तोऽर्हन्तो जिना महागोपाः पालयन्ति–रक्षन्ति मरणादिभयेभ्यो, निर्वाणवनं च प्रापयन्ति, एवं ते जिनेन्द्रा इह–अस्मिन् जीवलोके उपकारित्वहेतोः सर्वस्य भव्यजीवलोकस्य नमोऽर्हा लोकोत्तमभावतः, तथा च एवं तावदुक्तेन प्रकारेण नमोऽर्हत्त्वे पंच हेतवो–गुणाः प्रतिपादिताः ॥ साम्प्रतं प्रकारान्तरेण नमोऽर्हत्त्वहेतुगुणाभिधित्सयाऽऽह—

रागद्दोसकसाए, इंदियाणि य पंचवि। परीसहे उवसग्गे, नामयन्तो नमोऽरिहा ॥ ९१८ ॥

रागद्वेषकषायान् इन्द्रियाणि पञ्चापि परिषहान् उपसर्गान् नामयन्तो नमोऽर्हाः ॥ तत्र 'रञ्जी रागे' रज्यतेऽनेनास्मिन् वा रञ्जनं वा रागः, स च नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्यरागो द्वेधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो रागपदार्थज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदतस्त्रिविधः, ज्ञशरीरभव्यशरीरे प्रतीते, व्यतिरिक्तो द्विधा–कर्म्मद्रव्यरागो नोकर्म्मद्रव्यरागश्च, तत्र कर्म्मद्रव्यरागश्चतुर्विधः, तद्यथा–रागवेदनीयपुद्गला योग्या १ बध्यमानकाः २ बद्धाः ३ उदीरणावलिकाप्राप्ताश्च ४, बन्धपरिणामाभिमुखा योग्याः, बन्धपरिणामं प्राप्ता बध्यमानकाः, निर्वृत्तबन्धपरिणामाः सत्कर्मतया स्थिता जीवेनात्मसात्कृता बद्धाः, उदीरणाकरणेनाकृष्योदीरणावलिकाप्रविष्टा उदीरणावलिकाप्राप्ता, नोकर्मद्रव्यरागः–कर्म्मरागैकदेशः तदन्यो वा, तत्र तदन्यो द्विविधः–प्रायोगिको वैश्रसिकश्च, प्रायोगिकः कुसुम्भरागादिः, वैश्रसिकः सन्ध्याभ्ररागादिः, भावरागोऽपि द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो रागपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः, नोआगमतो रागवेदनीयकर्मोदयप्रभवः परिणामविशेषः, स च द्विधा–प्रशस्तः अप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शस्तश्च, तत्राप्रशस्तस्त्रिविधः, तद्यथा–दृष्टिरागो विषयरागः स्नेहरागश्च, तत्र त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां प्रवादिशतानामात्मीयात्मीयदर्शनानुरागो दृष्टिरागः, उक्तंच–"असीयसयं किरियाणं अकिरियवादीणमाहु चुलसीती । अण्णाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा ॥ १ ॥ जिणवयणबाहिरमती मूढा नियदरिसणाणुरागेण । सव्वन्नुकहियमेते मोक्खपहं न उ पवज्जंति ॥ २ ॥" विषयरागः–शब्दादिविषयगोचरः, स्नेहरागो–विषयादिनिमित्तविकलोऽविनीतेष्वपत्यादिषु भावी, तत्रेह रागे उदाहरणम्–खिइपइट्ठियं नयरं, तत्थ दो भाउया–अरहण्णतो अरिहमित्तो य, महंतस्स भारिया अरहमित्ते अणुरत्ता, सो नेच्छइ, ततो सा बहुसो उवसग्गेइ, भणिया अणेण–किं न पेच्छसि भाउगंति ?, ततो तीए नायं, जहा मम भत्तारस्स बीहइ, ततो भत्तारो मारितो, सा पच्छा भणइ–इयाणिंपि नेच्छसि ?, तेण नायं–एतीए दुट्ठसीलाए मम भाउगो नियभत्तारो मारितो, तेण निव्वेएण पव्वइतो, साहू जातो, सावि अट्ठवसट्टा मया सुणिया जाया, साहुणो य तं गामं गया, सो साहू भिक्खं पविट्ठो सुणिगाए दिट्ठो, लग्गा मग्गामग्गि उवसग्गेइ, विरत्तीए नट्ठो, तत्थवि मया अडवीए मक्कडी जाया, तेऽवि साहुणो कम्मधम्मसंजोगेण तीसे अडवीए मज्झेणं वच्चंति, तीए दिट्ठो, लग्गा कंठे, तत्थवि किलेसेणं पलातो, तत्थवि मया जक्खिणी जाया, ओहिं पउंजइ, दिट्ठो सो साहू ओहिणा, छिद्दाणि मग्गति, सो साहू सया अप्पमत्तो, ततो सा छिद्दं न लहइ, सा य सव्वायरेण तस्स छिद्दं मग्गइ, एवं वच्चइ कालो, तत्थ किर जे समवया समणा ते हसिऊण तरुणसमणा भणंति–धन्नो हु सो अरहमित्तो, 'जंसि पिओ सुणियाणं, वयंस ! गुरुमक्कडीणं च । अन्नया सो साहू वियरयं उत्तरइ, तत्थ य पायविक्खंभं पाणियं, तेण पातो पसारितो भएणं, तत्थ य तीए छिद्दं लभिऊण ऊरू छिन्नो, ततो माऽहं आउक्काए पडिओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

होज्जत्ति मिच्छादुक्कडं तेण भणियं, सो पडिओ, सम्मद्दिट्ठिगाए सा धाडिया, तहेव सो ऊरू सपएसो लाइतो, रूढो य तक्खणं देवयापभावेणं, अण्णे भणंति–सो भिक्खमतिगतो अण्णगामे, तत्थ ताए वाणमंतरीए तस्स रूवं छाएत्ता तस्स रूवेणं पंथे तलाए ण्हाइ, अन्नेहिं दिट्ठो, सिट्ठो गुरूणं, आवस्सए आलोएइ, अज्जो! संमं आलोएहि, सो उवउत्तो, मुहणंतगाइ जाव पडिक्कमणं देवसियं ताव आभोएइ, भणइ–न संभरामि खमासमणो !, तेहिं पडिभिन्नो भणति–नत्थित्ति, आयरिया अणुवट्ठियस्स न देंति पायच्छित्तं, सो चिंतेइ–किं कह वत्ति ?, सा उवसंता साहइ गुरूणं–मए एयं कयं, सा साविगा जाया, सव्वं परिकहइ, एवमप्पसत्थो एस नेहाणुरागो, अस्स इमा निरुत्तगाहा–'रज्जंति असुभकलमलकुणिमाणिट्ठेसु पाणिणो जेण। रागोत्ति तेण भन्नइ जं रज्जइ तत्थ रागत्थो ॥ १ ॥' एवं दृष्टिरागो विषयरागोऽप्यप्रशस्तो द्रष्टव्यः, दीर्घसंसारहेतुकदध्यवसायात्मकत्वात्, प्रशस्तस्तु रागोऽर्हदादिविषयः, उक्तं च–"अरहंतेसु य रागो रागो साहूसु वीयरागेसु। एस पसत्थो रागो अज्ज सरागाण साहूणं ॥१॥" एवंविधं रागं नामयन्तः–अपनयन्तः, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदेनापनीतवन्त एव गृह्यन्ते, आह–प्रशस्तनामनमयुक्तं, न, तस्यापि बन्धात्मकत्वात्, यद्येवं तत 'एस पसत्थो रागो' इत्यादि विरुद्धं, नैष दोषः, सरागसंयतानां कूपखननोदाहरणतस्तस्य रागस्य प्राशस्त्यादित्यलं प्रसङ्गेन ॥ इदानीं 'दोस' त्ति दोषः द्वेषो वा, तत्र 'दुष वैकृत्ये' दुष्यतेऽनेनास्मिन्नस्माद् दूषणं वा दोषः, 'द्विषी अप्रीतौ' द्विष्यतेऽनेन अस्मिन् अस्मात् द्वेषणं वा द्वेषः, असावपि नामादिभेदाच्चतुर्विधो, निक्षेपो रागवदवसेयः, तथा दिग्मात्रमुपदर्श्यते–नोआगमतो द्रव्यद्वेषो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्विधा–कर्मद्रव्यद्वेषः नोकर्मद्रव्यद्वेषः, तत्र कर्मद्रव्यद्वेषश्चतुष्प्रकारः–द्वेषवेदनीयपुद्गला योग्याः १ बध्यमानकाः २ बद्धाः ३ उदीरणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वलिकाप्राप्ताश्च ४, अमीषां व्याख्यानं प्राग्वत्, नोकम्मद्रव्यद्वेषो दुष्टव्रणादिः, भावद्वेषो द्वेषकर्म्मविपाकः, स च द्विधा-प्रशस्तः अप्रशस्तश्च, तत्र प्रशस्तोऽज्ञानादिगोचरः, तथाहि–अज्ञानमविरतिं च द्विषन् ज्ञाने विरतौ च सम्यग्यतते इति तस्य प्राशस्त्यं, अप्रशस्तः सम्यक्त्वादिगोचरः, तत्राप्रशस्ते उदाहरणं–नन्दो नाम नाविओ गंगाए लोगं उत्तारेइ, तत्थ य धम्मरुई नाम अणगारो तीए नावाए उत्तिन्नो, जणो मोलं दाऊण गतो, साहू रुद्धो, फिडिया भिक्खावेला, तहावि न विसज्जेइ, वालुयाए उण्हे तिसाइतो य अमुंचंतो रुट्ठो, सो य दिट्ठीविसलद्धितो, तेण दड्ढो मओ, एगाए सभाए घरकोइलो जाओ, साहू विहरंतो तं गामं गतो, भत्तपाणं गहाय भोत्तुकामो सभं गतो, तेण दिट्ठो, सो पेक्खंततो चेव आसुरुत्तो, भोत्तुमारुद्धस्स कचवरं पाडेइ, अण्णपासं गतो, तत्थवि एवं, अण्णत्थ गतो, तत्थवि एवं, कहिंचि न लहइ भोत्तुं, ततो सो तं पलोएइ, को एस ?, नाविगनंदमंगुलो, दड्ढो, समुद्दं जतो गंगा पविसइ तत्थ वरिसे वरिसे अण्णण्णेणं मग्गेणं वहइ, चिराण गंगा मयगंगा भन्नइ, तत्थ हंसो जातो, सो य साहू माहमासे सत्थेण पभाए जाइ, तेण दिट्ठो, पाणियस्स पंखे भरिऊण सिंचइ, तत्थवि उद्दवितो, पच्छा अंजणगपव्वए सीहो जातो, सोवि सत्थेण तेणेव मग्गेण गच्छइ, सीहो उवट्ठितो, सत्थो भिन्नो, सो इमं न मुयइ, तत्थवि दड्ढो, मतो य वाणारसीए बडुतो जातो, तत्थवि भिक्खं हिंडंतं धूली छूहइ, रुट्ठेण दड्ढो, तत्थेव राया जातो, जाइं सरइ, तत्थ सव्वातो अतीताओ जाइओ असुभातो सरइ, जइ संपयं मारेइ तो बहुयातो फिट्टो होमित्ति तस्स जाणणानिमित्तं समस्यामवलम्बयते, जो एयं पूरइ तस्स रज्जस्स अद्धं देमि, सा य समस्सा इमा– गंगाए नाविओ नंदो, सभाए घरकोइलो । हंसो मयगंगतीराए, सीहो अंजणपव्वए ॥ १ ॥ वाणारसीए बडुओ,

आ. सू. ८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव-श्यकमल-यगिरीय-वृत्तौ नम-स्कारे

॥ ४९९ ॥

राया तत्थेव आगतो ॥ अमुं गोवावि पढंति, सो विहरंतो साहू तत्थ समोसढो, आरामे ठिओ, आरामिओ पढइ, तेण पुच्छिओ साहइ, तेण भणियं–अहं पूरेमि, 'एएसिं घायगो जो उ, सोवि इत्थेव आगतो' ॥ सो घेत्तूण रण्णो समीवं गतो, पढइ, राया सुणंततो मुच्छितो, सो हम्ममाणो भणइ–कधं काउं अहं न याणामि, लोगस्स कलिकरंडो एसो मे समणेण दिन्नो, राया तत्थ मणूसे विसज्जेइ, जइ अणुजाणह वंदतो एमि, आगतो, सड्ढो जातो, साहूवि आलोइयपडिक्कंतो, एवं संसारबद्धणो दोसो जेहिं नामितो ते अरिहा ॥ इह रागद्वेषौ क्रोधाद्यपेक्षया नयैः पर्यालोच्येते, तत्र यद्यपि नया नैगमादयः सप्त, तथापि नैगमः सामान्यग्राही सङ्ग्रहे विशेषग्राही व्यवहारेऽन्तर्भवतीति षड्भिरेव सङ्ग्रहादिभिर्विचारः, तत्र सङ्ग्रहस्याप्रीतिजातिसामान्यतः क्रोधमानौ द्वेषः मायालोभौ तु प्रीतिजातिसामान्याद्रागः, उक्तंच–"कोहं वा माणं वा अपीतिजाईतो संगहो दोसं। माया लोभे य सपीइजाइसामन्नतो रागं ॥ १ ॥" व्यवहारश्च क्रोधमानमाया द्वेषः, मायाया अपि परोपघाताय प्रयुज्यमानत्वेनाप्रीतिजातावन्तर्भावात्, लोभस्तु न्यायोपादानमूर्च्छात्मको रागः, उक्तं च–"मायंपि दोसमिच्छइ ववहारो जं परोवघायाय। नायोवायाणोचिय मुच्छालाभोत्ति तो रागो ॥ १ ॥" ऋजुसूत्रस्य क्रोधस्तावदप्रीतिरूपत्वात् द्वेषः, मानमायालोभास्तु भाज्याः, कदाचित् रागः कदाचिद् द्वेषः, तथाहि–यदा मानोऽहङ्कारोपयोगात्मकस्तदाऽऽत्मनि बहुमानेन प्रीतियोगाद्रागो, यदा तु स एव परगुणविद्वेषोपयोगात्मकः तदानीमप्रीतिरूपत्वाद् द्वेषः, एवं मायालोभावपि परोपघाताय व्याप्रियमाणौ द्वेषः, स्वशरीरस्वधनस्वजनादिषु मूर्च्छोपयोगकाले तु तावेव रागः, अभिष्वङ्गात्मकत्वात्, उक्तंच–"माणो रागोत्ति मतो साहंकारोवयोगकालम्मि। सो चेव होइ दोसो परगुणदोसोवयोगंमि ॥१॥

अप्रशस्त-द्वेषे नावि-कः नयाश्च

॥ ४९९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मायालोभावेवं परोपघातोवओगतो दोसो । मुच्छोवयोगकाले रागोऽभिस्संगलिंगोत्ति ॥ २ ॥" शब्दादीनां तु मतं–लोभो रागः, क्रोधो द्वेषः, मानमाये तु यदा स्वगुणोपकारोपयोगात्मके तदा मूर्च्छात्मकत्वाल्लोभः, लोभत्वाच्च रागः, यदा तु स्वगुणोपकारोपयोगविकले तदा परोपघातोपयोगात्मकत्वात् क्रोधः, क्रोधत्वाच्च द्वेषः, उक्तं च–"सद्दाइमयं माणे मायाए य सगुणोवगाराय । उवओगो लोभोच्चिय जतो स तत्थेव अवरुद्धो ॥ १ ॥ सेसंसा कोहोच्चिय परोवघायमइयत्ति तो दोसो" इति ॥

अथ कषायद्वारं, शब्दार्थः प्राग्वत्, तेषामष्टविधो निक्षेपः, तद्यथा–नामकषायः स्थापनाकषायः द्रव्यकषायः समुत्पत्तिकषायः ४ प्रत्ययकषायः आदेशकषायः रसकषायः भावकषायः ८, आह च–"नामं ठवणादविए, उप्पत्ती पच्चए य आदेसे । रसभावकसाए या नएहिं छहिं मग्गणा तेसिं ॥ १ ॥" नामस्थापने सुगमे, द्रव्यकषायो नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्विधा–कर्म्मद्रव्यकषायो नोकर्म्मद्रव्यकषायश्च, कर्म्मद्रव्यकषायश्चतुष्प्रकारः, कषायवेदनीयपुद्गला योग्याः १ बध्यमानाः २ बद्धाः ३ उदीरणावलिकाप्राप्ताश्च ४, नोकर्म्मद्रव्यकषायः सर्जकषायादिः, उत्पत्तिकषायो यतो द्रव्यादेर्बाह्यात् कषायप्रभवस्तदेव कषायनिमित्तत्वात् उत्पत्तिकषायः, द्रव्यात् कषायोत्पत्तिः सुप्रतीता, उक्तंच–"किं एत्तो कट्ठयरं ? जं मूढो खाणुगंमि अप्फिडितो । खाणुस्स तस्स रूसइ न अप्पणो दुप्पयोगस्स ॥ १ ॥" प्रत्ययकषायः खल्वान्तरः कारणविशेषः कषायपुद्गललक्षणः, आदेशकषायः कैतवकृतभ्रकुटिभङ्गुराकारः, तस्य हि कषायमन्तरेणापि तथादेशनात्, रसकषायो हरीतक्यादीनां रसः, भावकषायो नोआगमतः कषायोदय एव, स च क्रोधादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तद्यथा–क्रोधकषायो मानकषायो मायाकषायो लोभकषायश्च, तत्र क्रोधो नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, नामस्थापने क्षुण्णे, नोआग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** 'कषाय'पदस्य अष्ट निक्षेपा: एवं कथानक: वर्णयते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यक्रोधः प्राकृतशब्दसामान्यापेक्षया चर्मकारक्रोधः रजकक्रोधो नीलिकोधश्च क्रोध-इति गृह्यते, नोआगमतो भावक्रोधः क्रोधादय एव, स च चतुर्भेदः, उक्तं च–"जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो ।" प्रभेदफलमुत्तरत्र वक्ष्यामः, तत्र क्रोधे उदाहरणम्–वसंतउरे नयरे उच्छन्नवंसो एगो दारगो, देसंतरं संकम-माणो सत्थेण उज्झितो तावसपल्लिं ततो, तस्स नामं अग्गियउत्ति, तावसेणं वड्ढितो, जमो नामं सो तावसो, जमस्स पुत्तो जमदग्गितो जातो, सो घोरागारं तवच्चरणं करेइत्ति विक्खातो जातो । इतो य दो देवा, वेसानरो सद्धो धन्नंतरी तावसभत्तो, ते दोऽवि परोप्परं पण्णवेंति, भणंति य–साहू तावसे परिक्खामो, सद्धो आह–जो अम्हं सबअंतिमओ तुज्झ य सव्वप्पहाणो ते परिक्खेमो । इतो य मिहिलाए नयरीए तरुणधम्मो पउमरहो राया, सो चंपं वच्चइ वसुपुज्जस्स आय-रियस्स मूले पव्वयामित्ति, तेहिं सो परिक्खिज्जइ भत्तेणं पाणेण य, पंथे य विसमे सुकुमालतो दुक्खाविज्जइ, अणुलोमे य से उवसग्गे करेंति–चित्तक्खोभो जायइ, सो धणियतरागं थिरो जातो, न पुण तेहिं खोभितो, अण्णे भणंति–ते सिद्ध-पुत्तरूवेण गया, अतिसए साहेंति, जहा चिरं जीवियव्वं, सो भणइ–बहुओ मे धम्मो होहिति, न सक्किओ खोभेउं, गया जमदग्गिस्स समीवं, सउणरूवाणि कयाणि, कुच्चे से घरओ कतो, सउणओ भणइ–भद्दे ! जामि हिमवंतं, सा न देइ, मा न एहिसित्ति, सो सवहे करेइ गोघाइयगाइ जहा एमित्ति, सा भणइ, न एएहिं पत्तियामित्ति, जइ एयस्स रिसिस्स दुक्खि(क्कि)-यं पियसि तो विसज्जेमित्ति, सो रुट्ठो, तेण दोऽवि दोहिं हत्थेहिं गहियाणि, पुच्छिया भणंति–महरिसि ! अणवच्चोऽसि, सो भणइ–सच्चमेयं, खोभितो । एवं सो सावगो जातो देवो, इमोऽवि ताओ आयावणभूमीतो उइण्णो मिगकोट्ठगं नगरं जाइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

***क्रोध तथा मान-कषाये सुभूम-चक्रवर्ते: कथानक

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तत्थ जियसत्तू राया, सो उट्ठितो, किं देमि ?, धूयं देहित्ति, तस्स धूयासयं, जा तुमं इच्छइ सा तुज्झंति, कण्णंतेउरं गतो, ताहिं दट्ठूण निच्छूढं, न लज्जसित्ति भणितो, तातो खुज्जीकयातो, तत्थ एगा तस्स धूया रेणुएणं रमइ, तीएऽणेणं फलं पणामियं, इच्छसित्ति य भणिया, हत्थो पसारितो, निज्जंतीए उवट्ठियायो खुज्जीओ सालिरूवए देहि, अक्खुज्जीतो कयातो, नीया आसमं, सगोमहिसपरियणा राइणा दिन्ना, संवड्ढिया, जोव्वणं पत्ता जाहे जाया ताहे वीवाहधम्मो जातो, अन्नया उउसमए जमदग्गिणा भणिया–अहं ते चरुं साहेमि, जेण ते पुत्तो बंभणपहाणो होइ, तीए भणियं–एवं किज्जउ, मज्झ य भगिणी हत्थिणउरे अणंतविरियस्स भज्जा, तीसेवि साहेहि खत्तियचरुगंति, तेण साहितो, सा चिंतेइ–अहं ता अडवीए मिगी जाया, मा मम पुत्तो एवं नासउत्ति तीए खत्तियचरू जिमितो, इयरीए इयरो पेसितो, दोण्हवि पुत्ता जाया, तावसीए रामो, इयरीए कत्तविरिओ, सो रामो तत्थ संवड्ढइ, अन्नया एगो विज्जाहरो तत्थ समोसट्ठो, पडिभग्गो, तेण सो पडिचरिओ पगुणो जातो, ततो से रामस्स तेण तुट्ठेण परसुविज्जा दिन्ना, सरवणे साहिया, अन्ने भणंति–जमदग्गिस्स परंपरागया परसुविज्जा, तेण रामो पाढिओ, तस्स सिद्धा, सा रेणुगा भगिणीघरं गया, तेण रण्णा समं पलग्गा, सपुत्ता जमदग्गिणा आणीया, रुट्ठो रामो, ततो रामेण सपुत्ता मारिया, सोऽवि किर तत्थेव ईसत्थं सिक्खितो, तीसे भगिणीए सुयं, रण्णो कहियं, सो आगतो, आसमं विणासित्ता गावीतो घेत्तूण पधावितो, रामस्स कहियं, तेण पधाविऊण परसुणा मारिओ, कत्तविरिओ राया जाओ, तस्स देवी तारा, अण्णया से पिउमरणं कहियं, तेण आगंतूण जमदग्गी मारिओ, रामस्स कहियं, तेण गएण जलंतेणं परसुणा कत्तवीरितो मारितो, सयं चेव रज्जं पडिवण्णं । इतो य देवी तेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

संभमेण पलायंती तावसासमं गया, पडितो य समुहेण भूमिं खायंतो गब्भो, ततो नामं कयं सुभूमो, रामस्स य परसू जहिं खत्तियं पेच्छइ तहिं तहिं जलति, अन्नया तावसासमस्स मज्झेण विइवयइ, परसू उज्जलितो, तावसा भणंति–अम्हे चिय खत्तिया, तेण रामेण सत्त वारा निक्खत्तिया पुहवी कया, हणूणं थालं भरियं, एवं किर रामेण कोवेण खत्तिया वहिया, एवंविधं क्रोधं नामयन्त इत्यादि पूर्ववत् ॥ मानोऽपि नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, कर्म्मद्रव्यमानस्तथैव, नोकर्म्मद्रव्यमानः स्तब्धद्रव्यलक्षणः, भावमानो नोआगमतस्तद्विपाकः, स च चतुर्द्धा, यथाऽऽह–"तिणिसलया १ कट्ठ २ ट्ठिय ३ सेलत्थंभो-४ वमो माणो ॥" अत्रोदाहरणम्–सो सुभूमो तत्थ संवड्ढइ, विज्जाहरपरिग्गहितो जातो, किर चक्कवट्टी भविस्सइत्ति, मेघ-नादु विज्जाहरो इत्थीरयणनियधूयापउमसिरीदाणनिमित्तं तस्स समीवे सयासे अच्छइ, अन्नया तेण विसाईहिं परिक्खि-ज्जइ, इतो य रामो नेमित्तियं पुच्छइ, कतो मम विणासोत्ति ?, तेण भणियं–जो एयंमि सीहासणे निविसिहिइ, एयातो दाढातो पायसीभूयातो खाहिंति, ततो ते भयं, ततो तेण अवारियं भत्तं कयं, तत्थ सीहासणं धुरे ठवियं, दाढातो से अग्गतो कयातो, एवं वच्चइ कालो, इतो य सुभूमो मायं पुच्छइ–किं एत्तिओ लोगो ?, अन्नोऽवि अत्थि ?, तीए सव्वं कहियं, सो तं सोऊणमभिमाणेण हत्थिणापुरं गतो, तं सभं पविट्ठो, देवया रडिऊण नट्ठा, तातो दाढातो परमन्नं जायातो, माहणा तं पहारेउं लग्गा, मेघनादेण विज्जाहरेणं ताणि पहरणाणि तेसिं चेव उवरिं पाडिज्जंति, सो वीसत्थो भुंजइ, रामस्स परिकहियं, सण्णद्धो आगतो, परसुं मुयइ, विज्झातो, इयरो य तं चेव थालं गहाय उट्ठितो, चक्करयणं जायं, तेण से रामस्स सीसं छिन्नं, पच्छा तेण सुभोमेण माणिणा एक्कवीसं वारा निब्बंभणा पुहवी कया, गब्भावि फालिया, एवंविधं मानं नामयंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

इत्यादि पूर्ववत् ॥ माया चतुर्विधा नामादिभेदतः, कर्म्मद्रव्यमाया योग्यादिभेदाः पुग्गलाः, नोकर्म्मद्रव्यमाया निधानप्रयुक्तानि द्रव्याणि, भावमाया नोआगमतस्तत्कर्मद्रव्यविपाकलक्षणा, तस्याश्चत्वारो भेदाः, "मायाऽवलेहि १ गोमुत्ति २ मेंढसिंग ३ घणवंसिमूल ४ समा" मायाए उदाहरणं पंडरज्जा, तीए किल भत्तपच्चक्खाइयाए पूयानिमित्तं तिण्णि वारे लोगो मंतेण आवाहितो, आयरिएहिं आलोयाविया ठिया, चउत्थयं च वारं नालोयाविया, भणति–एस पुव्वभासेणागच्छइ, मायासल्लदोसेण किविसिया जाया, एरिसी दुरंता माया । अहवा सव्वंगसुंदरी उदाहरणं, वसंतपुरं नयरं, जियसत्तू राया, धणवइ-धणावहा भायरो सेट्ठी, धणसिरी तेसिं भगिणी, सा बालरंडा परलोगरया य, पच्छा मासकप्पागयधम्मघोसायरियसमीवे पडिबुद्धा, भायरोऽवि से नेहेण पडिबुद्धा, सा पव्वइउमिच्छइ, ते संसारनेहेणं न देंति, सा य धम्मवयं खद्धं खद्धं करेइ, भाउज्जायातो य से कुरुकुरायंति, तीए चिंतियं–पेच्छामि ता भाउगाण चित्तं, किमेयाहिंति ?, नियडीए परिआलोचिऊण सोवणगपवेसकाले वीसत्थं वीसत्थं बहुं धम्मगयं जंपिऊण ततो नट्ठतुंडेण जहा से भत्ता सुणेइ तहा एगा भाउज्जाइगा भणिया–किं बहुणा ? साडियं रक्खिज्जासि, तेण चिंतियं–एसा दुच्चारिणित्ति, वारियं च भगवया असइपोसणं, ततो णं परिट्ठवेमित्ति पल्लंके उवविसंती वारिया, सा चिंतेइ–हा, पच्छा तेण भणिया–घरातो मे नीहि, सा चिंतेइ–किं मे दुक्कडं कयंति ?, न किंचि पासइ, ततो तत्थेव भूमिगयाए किच्छेण नीया रयणी, पभाए ओलुग्गंगी निग्गया, धणसिरीए भणिया–कीस ओलुग्गंगी दीससि ?, सा रुयंती भणइ–न याणामो अवराहं, गेहाओ य धाडिया, तीए भणियं–वीसत्था अच्छह, अहं ते भलिस्सामि, भाया भणितो– किमेवमेयंति ?, तेण भणियं–अलं मे दुट्ठसीलाए, तीए भणियं–कहं जाणासि ?, तेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** माया कषाये सर्वांगसुन्दरे: कथानकं

भणियं–तुब्भं चेव सगासातो सुया देसणा, निवारणं च, तीए भणियं–अहो ! ते पंडियत्तणं वियारक्खमगं धंमयापरिणामो, मया सामण्णेण बहुदोसमेयं भणियंति से उवदिट्ठं, वारिया य, किमेतावता दुच्चारिणी होइ ?, ततो सो लज्जितो, मिच्छादुक्कडं से दवावितो, चिंतियं च णाए–एस ताव मे कसिणधवलपडिवज्जगो, बितिओऽवि एवं चेव विन्नासितो, नवरं सा भणिया–किं बहुणा ?, हत्थं रक्खेज्जासित्ति, सेसविभासा तहेव जाव एसोऽवि मे कसिणधवलपडिवज्जगोत्ति, एत्थ पुण इमाए नियडीए अब्भक्खाणदोसतो तिव्वं कम्मं निबद्धं, पच्छा एयस्स अपडिक्कमिय भावतो पवइया, भायरोवि से सह जायाहिं पवइया, अहाउगं पालित्ता सुरलोगं गयाणि, तत्थवि अहाउयं पालित्ता भायरो से पढमं चुया सागेए नयरे असोगदत्तस्स समुद्दत्तसागरदत्ताभिहाणा पुत्ता जाया, इयरीऽवि चइऊण गयउरे नगरे संखस्स इब्भस्स सावगस्स धूया जाया, अतीव सुंदरित्ति सबंगसुंदरी से नामं कयं, इयरीतोऽवि भाउज्जायातो चविऊण कोसलाउरे नंदणाभिहाणस्स इब्भस्स सिरिमइ–कंतिमइनामातो धूयातो आयातो, जोव्वणं पत्ताणि सव्वाणि, सबंगसुंदरीवि कहिंपि साकेया गयपुरमागएण असोगदत्तसेट्ठिणा दिट्ठा, कस्सेसा कण्णगत्ति कस्सवि समीवे पुच्छियं, नायं संखस्स, ततो सबहुमाणं समुद्दत्तस्स मग्गिया, लद्धा, विवाहो कतो, कालंतरेण सो विसज्जायगो समुद्दत्तो अइगतो, उवयारो से कतो, वासहरं सज्जियं, एत्थंतरंमि य सबंगसुंदरीए तं नियडिनिबंधणं पढमकम्मं उदितं, ततो भत्तारेण से वासघरट्ठिएण वोलेंती देविगी पुरिसच्छाया दिट्ठा, ततो तेण चिंतियं–दुट्ठसीला मे महिला, कोइ अवलोइउं गतोति, पच्छा सा आगया, न तेण बोल्लाविया, ततो अट्टदुहट्टयाए धरणीए चेव रत्तिं गमिता, पभाए से भत्तारो अणापुच्छिय सयणवग्गं एगस्स धिज्जाइगस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

कहेत्ता गतो सागेयं नगरं, परिणीया अणेण कोसलाउरे नंदस्स धूया सिरिमती, भाउणा य से तीसे भगिणी कंतिमई, सुयं च णेहिं, ततो गाढमधिती जाया, विसेसतो तीसे, पच्छा तेसिं समागमसंवयहारो वोच्छिन्नो, सा धम्मपरा जाया, पच्छा पव्वइया, कालेण विहरंती पवत्तिणीए समं साकेयं गया, पुव्वभाउज्जायाओ उवसंताओ, भत्तारा य तासिं न सुट्ठु, एत्थंतरंमि य से उदितं नियडिनिबंधणं बिइयं कम्मं, पारणगे भिक्खट्ठं पविट्ठा, सिरिमती वासघरं गया हारं पोयइ, तीए अब्भुट्ठिया, सा हारं मोत्तूण भिक्खट्ठमुट्ठिया, एत्थंतरंमि चित्तकम्मोइण्णमऊरेण सो हारो गिलितो, तीए चिंतियं–अच्छरियमिणं, पच्छा साडगद्धेणं ठइयं, भिक्खा पडिग्गहिया निग्गया य, इयरीए जोइयं जाव नत्थि हारोत्ति, तीए चिंतियं–किमेयं ?, अच्छरियमिणं, पच्छा परियणो पुच्छितो भणइ–न कोइ एत्थ अज्जं मोत्तूण पविट्ठो, तीए अंबाडितो, पच्छा फुइं, इयरीए पवत्तिणीए सिट्ठं, तीए भणियं–विचित्तो कम्मपरिणामो, पच्छा उग्गतरतवरया जाता, तेसिं चाणत्थभीयाणं न तं नेडुं ओगाहइ, सिरिमतिकंतिमतीतो भत्तारेहिं हसिज्जंति, न य विपरिणामंति, तीएवि उग्गतवरयाए कम्मं सेसीकयं, एत्थंतरंमि सिरिमती भत्तारसहाया वासघरे चिट्ठइ, जाव मोरेणं चित्तातो उयरिऊण निगलितो हारो, ताणि संवेगमावण्णाणि–अहो से भयवतीए महत्थ(प्प)या जन्न सिट्ठमेयंति खामिउं पयट्टाणि, एत्थंतरंमि से केवलनाणमुप्पन्नं, देवेहिं महिमा कया, तेहिं पुच्छियं, तीएवि साहिओ परभववुत्तंतो, ताणि पव्वइयाणि, एरिसी दुहावहा माया । एवंविधां मायां नामयंत इत्यादि पूर्ववत् ॥ लोभो नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तत्र कर्मद्रव्यलोभो योग्यादिभेदाश्चतुर्विधाः पुद्गलाः, नोकर्म्मद्रव्यलोभ आकरमृत्तिका, चिक्कणिका इत्यर्थः, भावलोभस्तत्कर्म्मविपाकः, तस्य भेदाश्चत्वारः–"लोहो हलिद्द १ खंजण २ कद्दम ३-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** लोभ-कषाये लुब्धनन्दस्य कथानकं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥५०३॥

किमिराग ४ सारित्थो ॥" सर्वेषां क्रोधादीनां यथाक्रमं स्थितिफलान्येवं "पक्ख १ चउमास २ वच्छर ३ जावज्जीवा ४ णुगामिणो कमसो । देव १ नर २ तिरिय ३ नारय ४ गइसाहणहेयवो नेया ॥ १ ॥" लोभ उदाहरणं लुब्धनन्दः–पाडलिपुत्ते नयरे नंदो वाणियओ, जिणदत्तो सावतो, जियसत्तू राया, सो तलायं खणावेइ, फाला दिट्ठा कम्मगरेहिं, सुरामोल्लंति दो गहाय वीहीए सावगस्स उवणीया, तेण नेच्छिया, नंदस्स वीहीए नीया, गहिया, भणिया–अण्णेऽवि आणेज्जाह, अहं चेव गिण्हिस्सामि, दिवसे २ गिण्हइ फाले, अन्नया गोरवारिहसयणिज्जामंतणए बलामोडीए नीओ, पुत्ता भणिया–फाले गिण्हिज्जह, सो गतो, ते य आगया, पुत्तेहिं फाला न गहिया, आकुट्ठा य गया पूयलियसालं, तेहिं ऊणगं मोल्लंति एगंते एडिया, किट्टं पडियं, दिट्ठा रायपुरिसेहिं, गहिया, जहावत्तं रण्णो कहियं, सो नंदो आगतो भणइ–गहिया नवत्ति, तेहिं भणियं–किं अम्हेऽवि गहेण गहिया ?, तेण अतिलोलयाए एत्तियस्स लाभस्स फिट्टोऽहं पादाण दोसेणंति एगाए कुसीए दोऽवि पाया भग्गा, सयणो विलवति, ततो रायपुरिसेहिं सावगो नंदो य घेत्तूण राउलं नीया, पुच्छिया, सावगो भणइ–मज्झ इच्छापरिमाणाइरित्तं, अविय–कूडमाणंति, तेण न गहिया, सावओ पूइऊण विसज्जितो, नंदो सूलाए भिन्नो, सकुलो उच्छादितो, सावगो सिरिघरे ठवितो, एरिसो दुरंतो लोभो, एवंविधं लोभं नामयन्त इत्यादि पूर्ववत् ॥

अथेन्द्रियद्वारमुच्यते–तत्र इन्द्रियमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते–'इदु परमैश्वर्ये' इन्दनादिन्द्रः, सर्वोपलब्धिसर्वोपभोगरूपपरमैश्वर्ययोगाज्जीवः, तस्य लिङ्गं तेन सृष्टं वा इन्द्रियं, 'इन्द्रिय'मिति निपातनसूत्रादिष्टरूपनिष्पत्तिः, तच्च द्विधा–द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, तत्र निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं, निर्वृत्तिनाम प्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, साऽपि द्विधा–बाह्या अभ्यन्तरा

लोभे लुब्धनन्दः ॥५०३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ इन्द्रिय-द्वारम् कथा सहितं उच्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

च, तत्र बाह्या कर्णपर्प्पटिकादिरूपा, सा च विचित्रा, न प्रतिनियतसंस्थानरूपतया व्यपदेष्टुं शक्या, तथाहि–मनुष्यस्य श्रोत्रे नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभाविनी भ्रुवा चोपरितनबन्धापेक्षया समे, वाजिनो नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे इत्यादि जातिभेदाज्ञानाविधे, अभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषामपि जन्तूनां समाना, तामेव चाधिकृत्यामूनि सूत्राणि प्रावर्त्तत, यतः 'सोइंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिते पन्नत्ते ?, गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते, घाणिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते ?, गोयमा ! अइमुत्तगसंठाणसंठिए पण्णत्ते, जिब्भिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते ?, गोयमा ! खुरप्पसंठाणसंठिए पण्णत्ते, फासिंदिए णं भंते ! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते ?, गोयमा ! नाणासंठाणसंठिए पन्नत्ते," इह स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तेः प्रायो न बाह्याभ्यन्तरभेदः, पूर्वसूरिभिस्तथाभिधानात्, उपकरणं खड्गस्थानीयाया बाह्याया निर्वृत्तेर्या खड्गधारासमाना स्वच्छतरपुद्गलसमूहात्मिका अभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तस्याः शक्तिविशेषः, इदं चोपकरणरूपं द्रव्येन्द्रियं नान्तरनिर्वृत्तेः कथञ्चिदर्थान्तरं, शक्तिशक्तिमतोः कथञ्चिद्भेदात्, कथञ्चिद्भेदश्च सत्यामपि तस्यामान्तरनिर्वृत्तौ द्रव्यादिनोपकरणस्य विघातसम्भवात्, तथाहि–सत्यामपि कदम्बपुष्पाद्याकृतिरूपायामान्तरनिर्वृत्तौ अतिकठोरतरघनगर्जितादिना शक्त्युपघाते सति न परिच्छेत्तुमीशते जन्तवः शब्दादिकमिति, भावेन्द्रियमपि द्विधा–लब्धिरुपयोगश्च, तत्र लब्धिः श्रोत्रेन्द्रियादिविषयः सर्वात्मप्रदेशानां तदावरणक्षयोपशमः, उपयोगः स्वस्वविषये लब्धिरूपेन्द्रियानुसारेणात्मनो व्यापारः, इह यदि उपयोगापेक्षया संसारिजीवानां चिन्ता क्रियते तदैकस्मिन् काल एकेनैवेन्द्रियेण उपयोगो न शेषैरित्युपयोगापेक्षया सर्वोऽपि संसारिजीव एकेन्द्रियः, उक्तं च–"जो सविसयवावारो सो उवयोगो स चेगकालंमि । एगेण चेव तम्हा उवयोगेगिंदिआ सव्वे ॥ १ ॥" लब्धिरपि प्रायः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सर्वजीवानामपि संसारिणां पञ्चेन्द्रियविषयाऽपि समस्ति, एकेन्द्रियाणामपि बकुलादीनां तथोपलम्भात्, उक्तं च–"जं किर बउलाईणं दीसइ सेसेंदितोवलंभोऽवि । तेणत्थि तदावरणक्खओवमसंभवो तेसिं ॥ १ ॥" तस्मादुपयोगापेक्षया लब्ध्यपेक्षया वा नैकेन्द्रियादिभेदव्यपदेशसंभवः, किन्तु निर्वृत्तिरूपद्रव्येन्द्रियापेक्षया, तस्याः प्रतिनियतैकेन्द्रियादिजातिभेदं प्रति नियतसङ्ख्याया भावात्, उक्तं च–"पंचिंदिओऽवि बउलो नरोव्व सव्वविसयोवलंभातो । तहवि न भन्नइ पंचिंदिओत्ति बज्झेन्दियाभावा ॥ १ ॥" अमीषां च द्रव्यभावेन्द्रियाणामयं भावक्रमः–प्रथममिन्द्रियावरणक्षयोपशमरूपा लब्धिर्भवति, ततो बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्ना यथास्वकर्म्मविपाकोदयं निर्वृत्तिः, तत आन्तरनिर्वृत्तेः शक्तिरूपमुपकरणं, तदनन्तरं चेन्द्रियार्थोपयोगः, तथा चाह–"लाभक्कमो उ लद्धी निव्वत्तुवगरणउवओगे य ॥" अमूनि च स्पर्शनादिभेदेन पंच भवन्ति, ततो बहुवचनम्, उक्तं च–"स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणी"ति, तानि चानामितानि अलं दुःखायेति । अत्रोदाहरणानि । तत्र श्रोत्रेन्द्रिये उदाहरणम्–वसंतपुरे नयरे पुप्फसालो नाम गंधवितो, सो य अइसुस्सरो विरूवो य, तेण जणो हयहियओ कओ, तम्मि य नयरे सत्थवाहो दिसाजत्तं गतो, भद्दा य से भारिया, तीए केणवि कारणेण दासीओ पेसियातो, तातो सुणंतीतो अच्छंति, कालं न याणंति, चिरेण आगयातो, अंबाडियातो भणंति–मा भट्टिणीतो रुसह मज्झं, अम्हाहिं सुयं पसूणवि लोभणिज्जं, किमंग पुण सकन्नाणं ?, ततो पुच्छइ–कहं ?, ताहिं कहियं, सा हियए चिंतेइ–अहह कहमहं पेच्छेज्जामि ?, अन्नया तत्थ नगरे देवयाए जत्ता जाया, सव्वं च नगरं गयं, सावि गया, लोगोऽवि पणमिऊणं पडिएइ, पभायं वट्टइ, सोवि गाइऊण परिस्संतो परिसरे सुत्तो, सा य सत्थवाही दासीए समं गया, पणिवइत्ता देवउलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

पयाहिणीकरेइ, चेडीहिं दाइतो, एसोत्ति, सा संभंता ततो गया, पच्छा विरूवं दंतुरं दट्ठूण भणइ-दिट्ठं से रूवेण चेव वरं गेयं, तीए णिच्छूढं, चेइयं च णेणं, कुसीलवेहिं से कहियं, तस्स अमरिसो जातो, तीसे घरमूले पच्चूसकालसमए गाइउमारद्धो पउत्थवइयाए निबद्धं, जहा आपुच्छइ जहा तत्थ चिंतेइ जहा लेहं विसज्जइ जहा आगतो घरं पविसइ, सा चिंतेइ सब्भूयं, ताए अब्भुट्ठेमित्ति आगासतलातो अप्पा मुक्को, सा मया, एवं सोइंदियं दुक्खाय भवति ॥

चक्खिंदिए उदाहरणं-महुराए नयरीए जियसत्तू राया, धारिणी देवी, सा पयईए धम्मसद्धा, तत्थ भंडीरवणं चेइयं, तत्थ जत्ता, राया सह देवीए नयरजणो य महया विभूतीए निग्गतो, तत्थ एगेण इब्भपुत्तेण जाणसंठियाए देवीए जवणियंतरविणिग्गतो सालत्तगो सनेउरो अईव सुंदरो दिट्ठो चलणो, चिंतियं च णेण-जीए एरिसो चलणो सा रूवेण तियससुंदरीणवि अब्भहिया, अज्झोववण्णो, पच्छा गविट्ठा, का एसत्ति ?, नायं, तग्घरपच्चासन्ने वीही गहिया, तीसे दासचेडीणं दुगुणं देइ, महामाणुसत्तणं च दाएइ, ततो हयहिययातो कयातो, देवीए साहति, संववहारो लग्गो, देवीए गंधाई ततो चेव गेण्हंति, अन्नया तेण भणियं-का एयातो महामोल्लगंधादिपुडियातो छोडेइ ?, चेडीए सिट्ठं-अम्हाणं सामिणित्ति, तेण एगाए पुडियाए भुज्जपत्ते लेहो लिहिऊण छूढो, यथा 'काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघान्धकारासु च शर्वरीषु। मिथ्या न जल्पामि विशालनेत्रे !, ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ॥१॥' पच्छा उग्गाहिऊण विसज्जिया, देवीए उग्घाडिया, वाइतो लेहो, चिंतियं चणाए-धिरत्थु भोगाणं, पडिलेहो लिहितो, यथा 'नेह लोके सुखं किंचिच्छादितस्यांहसा भृशम्। मितं च जीवितं नृणां, तेन धर्म्मे मतिं कुरु ॥१॥ पादप्रथमाक्षरबद्धो भावार्थः पूर्वश्लोकवदवसेयः, ततो बंधिऊण पुडिया न सुंदरा गंधत्ति विसज्जिया चेडीए, तीए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव-श्यकमल-यगिरीय-वृत्तौ नम-स्कारे

॥ ५०५ ॥

पडिअप्पिया पुडिया, भणियं च णाए–देवी आणवेइ न सुंदरा गंधत्ति, तुट्ठेण छोड़िया, दिट्ठो लेहो, अवगए लेहत्थे विसन्नो पोत्ताइं फालेऊण निग्गतो, चिंतियं च णेण–जाव एसा न पाविया ताव कहमच्छामित्ति ?, परिभमंतो अन्नं रज्जं गतो, सिद्धपुत्ताण ढुक्को, तत्थ नीई वक्खाणिज्जइ, तत्थवि य अयं सिलोगो–"न शक्यं त्वरमाणेन, प्राप्तुमर्थान् सुदुर्लभान्। भार्यां वा रूपसंपन्नां, शत्रूणां वा पराजयम् ॥१॥" एत्थ उदाहरणम्–वसंतपुरे नगरे जिणदत्तो नाम सत्थवाहपुत्तो, सो य समणसड्ढो, इतो य चंपाए परममाहेसरो धणो नाम सत्थवाहो, तस्स य दुवे अच्छेरगाणि–चउसमुद्दसारइया मुत्तावली, धूया कन्ना हारप्पभत्ति, जिण-दत्तेण सुयाणि, बहुप्पयारं मग्गियाणि, न देइ, ततो णेण चट्टवेसो कतो, एगागी चेव चंपं गतो, दुब्भिक्खं तत्थ वट्टइ, तत्थ य बहुजणपसिद्धो एगो अज्झावगो, तस्स उवट्ठितो, पढामित्ति, सो भणइ–भत्तं मे नत्थि, जइ नवरि कहिंपि लहसि, धणो य ससरक्खाणं देइ, तस्स उवट्ठितो, भत्तं मे देहि–जा विज्जं गिण्हामि, जंकिंचि देमित्ति पडिस्सुयं, धूया संदिट्ठा, जं किंचिवि से विसज्जेहित्ति, तेण चिंतियं–सोहणं संवुत्तं, वल्लरेणं दामितो विडालोत्ति, सो तं फलादिगेहिं उवचरइ, सा न गिण्हइ उवयारं, सो य अतुरितो नीतिग्गाही थक्के थक्के सम्मं उवचरइ, थक्को नाम प्रस्तावः, स सक्खायं तं खरेंटति, तेण सा कालेणावज्जिया, अज्झोववण्णो, भणइ–पलायामो, तेण भणियं–अजुत्तमेयं, किंतु तुमं उम्मत्तिगा होह, वेज्जावि अक्कोसे-ज्जाहि, तहा कयं, विज्जेहिं पडिसिद्धा, पिया से अद्धितिं पगतो, चट्टेण भणियं–अत्थि मे परंपरागया विज्जा, दुक्करो य से उवयारो, तेण भणियं–अहं करेमि, चट्टेण भणियं–पउंजामो, किंतु बंभयारीहिं कज्जं, तेण भणियं–अत्थि भयवंतो सस-रक्खा ते आणेमि, चट्टेण भणियं–जइ कहवि अबंभयारिणो भवंति तो कज्जं न सिज्झइ,ते य परितावित्रज्जंति, तेण भणियं–

चक्षुरिन्द्रि-ये इभ्यपुत्रः

॥ ५०५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

जे सूरा ते आणेमि, कतिहिं कज्जं ?, चउहिं, आणीया, सद्दवेहिणो दिसावाला कया, मंडलं कयं, दिसावाला भणिया–जत्तो सिवासद्दं सुणेह तं मणागं विंधह, ससरक्खा य भणिया–हुंफडित्तिकए सिवारुयं करेज्जह, दिक्करिया भणिया–तुमं तह चेव अच्छेज्जह, तहा कयं, विद्धा ससरक्खा, न पउणा चेडी, विपरिणतो धणो, चट्टेण वुत्तं–मए भणियं 'जइ कहवि अबंभचारिणो होंति न कज्जं सिज्झिहिइ' इत्यादि, धणेण भणियं–को उवातो ?, चट्टेण भणियं–एरिसा बंभचारिणो भवंति, गुत्तीतो कहेइ, दगसूयरादिसु गवेसियातो, नत्थि, साहूण दुक्को, तेहिं सिट्ठातो–वसहि १ कह २ सेज्जे ३ दिय ४ कुडुंतर ५ पुवकीलिय ६ पणीए ७ । अइमायाहार ८ विभूसणा ९ य नव बंभगुत्तीतो ॥१॥ एयासु वट्टमाणो सुद्धमणो जो य बंभयारी सो । जम्हा उ बंभचेरं मणोनिरोहो जिणाभिहियं ॥२॥ उवगए भणियं–बंभयारीहिं मे कज्जं, साहू भणंति–न कप्पइ निग्गंथाणमेयं, चट्टस्स कहियं–लद्धा बंभयारी, न पुण इच्छंति, तेण भणियं–एरिसा चेव परिचत्तलोगवावारा मुणओ भवंति, किंतु पूइएहिवि तेहिं कज्जसिद्धी होइ, तन्नामाणि लिक्खति, न ताइं खुद्दवंतरी अइक्कमति, ततो बंभयारिणो रुइया, मंडलं कयं, साहुनामाणि लिहियाणि, दिसावाला ठविया, न कूवियं सिवाए. पउणा चेडी, धणो साहुमल्लियंतो सद्धो जातो, धम्मोवगारित्ति चेडी मुत्ताहलमाला य तस्सेव दिन्ना, एवं अतुरंतेण पावियत्ति सिलोगत्थो, सो एयं सुणिऊण परिणामेइ, अहंपि सदेसं गंतुं अतुरंतो तत्थेव कंचि उवायं चिंतिस्सामि, गतो सदेसं, तत्थ य विज्जासिद्धा पाणा दंडरक्खा, तेण ते ओलग्गिया, भणंति–किं ते अम्हेहिं कज्जं ?, सिट्ठं–देविं घडेह, तेहिं चिंतियं–उच्छोभं से देमो जेण राया परिच्चयइ, तेहिं मारी विउविया, लोगो मरिउमारद्धो, रण्णा पाणा समादिट्ठा, णासेह मारिं, तेहिं भणियं–गवेसामो, विज्जाए य देवीवासहरे माणुसहत्थपाया विउविया, मुहं च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

से रुहिरलित्तं कयं, रण्णो निवेइयं, वत्थव्वा चेव मारी, नियघरे गवेसाहि, रण्णा गविट्ठा, दिट्ठा य, पाणा समाइट्ठा, से विहीए वावाएह, किंतु मज्झरत्तंमि अप्पसागारिए वावाएयव्वा, तहत्ति पडिस्सुए रत्तिं नीया सगिहं, सो य तत्थ पुव्वालोचियकयकवडो गतो, सखलियारं पाणेहिं मारिउमारद्धा, तेण भणियं–किमेयाए कयंति ?, ते भणंति–मारी एसत्ति मारिज्जइ, तेण भणियं–कहमेयाए आगिईए मारी हवइ ?, केणइ अवसद्दो मे दिण्णो, ता मा मारेह, मुयह एयं, ते नेच्छंति, गाढतरं लग्गो, अहं भे कोडिमोल्लं अलंकारं देमि, मुयह एयं, मा मारेह, बलामोडीए अलंकारो उवणीतो, तीएवि तंमि निक्कारणवच्छलोत्ति पडिबंधो जातो, तेहिं भणियं–जइ ते णिबंधो एयंपि न मारेमो, किंतु निव्विसयाए गंतव्वं, पडिस्सुते मुक्का, सो तं गहाय पलातो, पाणप्पदो वच्छलोत्ति दढतरं पडिबद्धा, आलावादीहिं घडिया, देसंतरंमि भोगे भुंजंता अच्छंति ॥ अन्नया सो पेच्छणए गंतुमारद्धो, नेहेण गंतुं न देइ, तेण हसियं, तीए पुच्छियं–किमेयंति ?, न साहइ, निब्बंधे सिट्ठं, निव्विण्णा, तहारूवाणं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा पव्वइया, इयरोऽवि अट्टदुहट्टो मरिऊण तद्दिवसं चेव नरगे उववण्णो ॥ एवं दुःखाय चक्षुरिन्द्रियं ॥

घ्राणेन्द्रिये उदाहरणम्–कुमारो गंधप्पिओ, सो अणवरयं नावाकडएण खेलइ, माइसवत्तीए एयस्स मंजूसाए विसं छोढूण नदीए पवाहियं, तेण रमंतेण दिट्ठा, उत्तारिया, उग्घाडेऊण पलोइउं पवत्तो, पडिमंजूसाइएहिं गहिओ, समुग्गको दिट्ठो, सो अणेण उग्घाडिऊण जिंघितो, मतो य, एवं दुक्खाय घाणिंदियं ॥

जिब्भिंदिए उदाहरणं–सोदासो राया, मंसप्पिओ, अन्नया अमाघाओ, पुव्वसंचियं मंसं सूयइस्स बिडालेण गहियं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सोयरिएसु मग्गियं, न लद्धं, डिंभरूवं मारियं, सुसंगियं, राया जिमिउमारद्धो, अतीव रुचिरं, राया पुच्छइ–कस्स एरिसं मंसं?, न कहइ, निब्बंधे कहियं, पुरिसा दिन्ना, मारेहत्ति, नगरेण नातो, भिच्चेहिं य रक्खसोत्ति महुं पाएत्ता अडवीए मुक्को, चच्चरे ठितो, धयं गहाय दिणे दिणे माणुसं मारेइ, केई भणंति–विरहे जणं मारेइ, अन्नया तस्संतेण सत्थो जाइ, तेण सुत्तेण न वेइतो, साहू य आवस्सयं करेंता सत्थातो फिडिया, ते दट्ठूण पिट्ठतो लग्गो, तवेण न सक्केइ अक्कमिउं, चिंतेइ–अहो महप्पहावा अमी साहू, संविग्गो, धम्मकहणं, पवज्जा। अन्ने भणंति–सो भणइ वच्चंते–ठाह, साहू भणंति–अम्हे ठिया, तुमं चेव ठाहि, चिंतेइ, साइसया आयरिया ओहिनाणी, केत्तिया एवं होहिंति, एवं दुक्खाय जिब्भिंदियं ॥

फासिंदिए उदाहरणं–वसंतउरे नयरे जियसत्तू राया, सुकुमालिया भज्जा, तीसे अतीव सुकुमालो फासो, राया रज्जं न चिंतेइ, सो ताए निच्चमेव परिभुज्जमाणो अच्छइ, एवं कालो वच्चइ, भिच्चेहिं समं मंतिऊण तीए सह निच्छूढो, पुत्तो से रज्जे ठविओ, ते अडवीए वच्चंति, तिसाइया जलं मग्गइ, अच्छीणि से बद्धाणि, मा वीहेहित्ति, सिरारुहिरं पज्जिया, रुहिरे मूलिया छूढा जेण न थिज्जइ, छुहाइया, ऊरुमंसं दिन्नं, ऊरुमंसं रोहिणीए रोहियं, जणवयं पत्ताणि, आभरगाणि साचवियाणि, एगत्थ वाणियत्तं करेइ, पंगू य से वीहीए गोवगो घडितो, सा भणइ–न सक्कुणोमि एगागिणी गिहे चिट्ठिउं, विइज्जयं लभाहि। चिंतियं च णेण–निरवाओ पंगू सोभणो य, ततोऽणेण सो निडुवालो निउत्तो, तेण गीयच्छलियक-हाईहिं आवज्जिया, पच्छा सा तस्सेव लग्गा, भत्तारस्स छिद्दाणि मग्गइ, जाहे न लहइ ताहे उज्जाणियाए गता, सो वीसत्थो बहुं मज्जं पाएत्ता गंगाए पक्खित्तो, सावि तं दव्वं खाइऊण तं वहइ, गायति य घरे घरे, पुच्छिया भणइ–माया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

पियराहिं एरिसो दिन्नो, किं करेमि ?, सो राया एगत्थ नगरे उच्छलिओ; रुक्खच्छायाए पसुत्तो, न परावत्तइ छाया, तत्थ य राया अपुत्तो मतो, आसो अहिवासितो, तत्थ गतो, जयजयसद्देण पडिबोहितो, राया जातो, ताणिवि तत्थ गयाणि, रण्णो कहियं, आणावियाणि, सा पुच्छिया साहइ–अम्मापिईहिं दिन्नो, राया भणइ–बाहुभ्यां शोणितं पीतं, ऊरुमांसं च भक्षितम्। गङ्गायां वाहितो भर्त्ता, साधु साधु पतिव्रते ! ॥ १ ॥ निर्विसयाणि आणत्ताणि, एवं फासिंदियं दोण्हवि दुक्खाय, विसेसतो सुकुमालियाए। किञ्च–"शब्दासङ्गे यतो दोषो, मृगादीनां शरीरहा। सुखार्थी सततं विद्वान्, शब्दे किमिति संगवान् ?॥ १ ॥ पतङ्गानां क्षयं दृष्ट्वा, सद्योरूपप्रसङ्गतः। स्वस्थचित्तस्य रूपेषु, किं व्यर्थः सङ्गसम्भवः ? ॥ २ ॥ उरगान् गन्धदोषेण, परतन्त्रान् समीक्ष्य कः। गन्धासक्तो भवेत् ? को वा, स्वभावं वा न चिन्तयेत् ? ॥ ३ ॥ रसास्वादप्रसङ्गेन, मत्स्यादु (द्यु) च्छादनं यतः। ततो दुःखादिजनने, रसे कः सङ्गमाप्नुयात् ? ॥ ४ ॥ स्पर्शाभिसक्तचित्तानां, हस्त्यादीनां समक्षतः। अस्वातन्त्र्यं समीक्ष्यापि, कः स्यात् स्पर्शनसङ्गमः ? ॥५॥ एवंविधानीन्द्रियाणि संसारवर्द्धनानि विषयलालसानि दुर्जयानि दुरन्तानि नामयन्तो नमोऽर्हा इति ॥

अधुना परीषहद्वारावसरः, तत्र मार्गाच्यवनार्थं निर्जरार्थं च परिषोढव्याः परिषहाः, तत्र मार्गाच्यवनार्थं दर्शनपरीषहः प्रज्ञापरीषहश्च, शेषा विंशतिर्निर्जरार्थं, एते च द्वाविंशतिसङ्ख्याः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृस्पर्शनमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाअज्ञानदर्शनानि, अमीषां यथाक्रमं सङ्क्षेपतोऽयमर्थः–"क्षुधार्त्तः शक्तिमान् साधुरेषणां नातिलङ्घयेत्। यात्रामात्रोद्यतो विद्वान्, अदीनोऽविक्लवश्चरेत् ॥ १ ॥ पिपासितः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ परिषह द्वारम् उच्यते

पथिस्थोऽपि, तत्त्वविद् दैन्यवर्जितः । शीतोदकं नाभिलषेत्, मृगयेत् कल्पितोदकम् ॥ २ ॥ शीताभिपातेऽपि यतिस्त्वग्व-स्त्रत्राणवर्जितः । वासोऽकल्प्यं न गृह्णीयादग्निं नो ज्वालयेदपि ॥३॥ उष्णतप्तो न तं निन्देच्छायामपि च संस्मरेत् । स्नान-गात्राभिषेकादि, व्यजनं चापि वर्जयेत् ॥ ४ ॥ सन्दष्टो दंशमशकैस्त्रासं द्वेषं न वा व्रजेत् । न वारयेदुपेक्षेत, सर्वाहारप्रियत्व-वित् ॥ ५ ॥ वासोऽशुभं न वा मेऽस्ति, नेच्छेत्तत्साध्वसाधु वा । लाभालाभविचित्रत्वं, जानन्नान्येन विप्लुतः ॥ ७ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्निषण्णो वा, नारतिप्रवणो भवेत् । धर्मारामरतो नित्यं स्वस्थचेता भवेन्मुनिः ॥ ६ ॥ सङ्गपङ्काः सुदुर्धावा, स्त्रियो मोक्षपथार्गलाः । चिन्तिता धर्मनाशाय, यतोऽतस्ता न चिन्तयेत् ॥ ८ ॥ ग्रामाद्यनियतस्थायी, सदा वाऽनियतालयः । विविधाभिग्रहयुक्तश्चर्यामेकोऽप्यधिश्रयेत् ॥ ९ ॥ श्मशानादिनिषद्याश्च, रुग्यादिकण्टकवर्जिताः । उपसर्गाननिष्टेष्टानेकोऽ-भीरस्पृहः क्षमेत् ॥ १० ॥ शुभाशुभासु शय्यासु, सुखदुःखे समुत्थिते । सहेत सङ्गं नेयाच्च, स्वास्थ्याद्येति च भावयन् ॥११॥ नाक्रुष्टो मुनिराक्रोशेत्, साम्याद् ज्ञानाद्यवर्जकः । अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥१२॥ हतः सहेतैव मुनिः, प्रति-हन्यान्न साम्यवित् । जीवानाशात् क्षमायोगात्, गुणासेः क्रोधदोषतः ॥ १३ ॥ परदत्तोपजीवित्वाद्, यतीनां नास्त्यया-चितम् । यतोऽतो याचनादुःखं, क्षाम्येन्नेच्छेदगारिताम् ॥ १४ ॥ परकीयं परार्थं वा, लभ्येतान्नादि नैव वा । लब्धेन माद्ये-न्निन्देद्वा, स्वपरान्नाप्यलाभतः ॥ १५ ॥ नोद्विजेत् रोगसम्प्राप्तौ, नवाऽभीप्सेच्चिकित्सितम् । विषहेत तथाऽदीनः, श्रामण्य-मनुपालयेत् ॥ १६ ॥ अहताल्पाणुचेलत्वे, कादाचित्कं तृणादिषु । तत्संस्पर्शोद्भवं दुःखं, सहेन्नेच्छेच्च तान् मृदून् ॥ १७ ॥ मलपङ्करजोदिग्धो, ग्रीष्मोष्णक्लेदनादपि । नोद्विजेत् स्नानमिच्छेद्वा, सहेतोद्वर्त्तयेन्न च ॥ १८ ॥ उत्थानं पूजनं दानं, स्पृह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येनात्मपूजकः । मूर्च्छितो न भवेल्लब्धे, दीनोऽसत्कारितो न च ॥ १९ ॥ अजानन् वस्तु जिज्ञासुर्न मुह्येत् कर्मदोषवित् । ज्ञानिनां ज्ञानमन्वीक्ष्य, तथैवेत्यन्यथा नतु ॥ २० ॥ विरतस्तपसोपेतश्छद्मस्थोऽहं तथापि च । धर्मादि साक्षान्नैवेक्षे, नैवं स्यात्क्रमकालवित् ॥ २१ ॥ जिनास्तदुक्तं जीवो वा, धर्माधर्मौ भवान्तरम् । परोक्षत्वान्मृषा नैवं, चिन्तयेन् महतो ग्रहात् ॥ २२ ॥ शारीरमानसानेवं, स्वपरप्रेरितान् मुनिः । परीषहान् सहेताभीः, कायवाङ्मनसा सदा ॥ २३ ॥ ज्ञानावरणवेद्येषु, मोहनीयान्तरायोः । कर्मसूदयभूतेषु, सम्भवन्ति परीषहाः ॥ २४ ॥ क्षुत्पिपासा च शीतोष्णे, दंशका मशकादयः । चर्या शय्या वधो रोगस्तृणस्पर्शमलावपि ॥ २५ ॥ वेद्यादमी अलाभाख्यस्त्वन्तरायसमुद्भवः । प्रज्ञाऽज्ञाने तु विज्ञेयौ, ज्ञानावरणसम्भवौ ॥ २६ ॥ चतुर्दशैते विज्ञेयाः, सम्भवेन परीषहाः । ससूक्ष्मसम्परायस्य, छद्मस्थारागिणोऽपि च ॥२७॥ क्षुत्पिपासा च शीतोष्णदंशचर्या वधो मलः । शय्या रोगतृणस्पर्शौ, जिने वेद्यस्य सम्भवात् ॥ २८ ॥ विस्तरार्थो ग्रन्थान्तरात् तत्त्वार्थटीकादेरवसेयः ॥ एते च परीषहा द्विविधाः, तद्यथा–द्रव्यपरीषहा भावपरीषहाश्च, तत्र द्रव्यपरीषहा नाम ये इहलोकनिमित्तं बन्धनादिषु वा परवशेनाधिसह्यन्ते, तत्रोदाहरणं यथा सामायिके चक्रदृष्टान्ते इन्द्रपुरे इन्द्रदत्तपुत्रस्य, भावपरीषहा ये संसारव्यवच्छेदमनसाऽनाकुलेन सताऽधिसह्यन्ते, तैरेव चात्राधिकारः ॥

अधुना उपसर्गद्वारावसरः–तत्र उप–सामीप्येन सर्ज्जनं उपसृज्यतेऽसाविति वा उपसर्गः, ते चतुर्विधाः, तद्यथा–दिव्या मानुषास्तैर्यग्योना आत्मसंवेदनीयाश्च, तत्र दिव्याश्चतुर्विधास्तद्यथा–हास्यात् क्रीडात इत्यर्थः १, प्रद्वेषात् अवज्ञापूर्वभावसम्बन्धादिकृतात् २, विमर्शात् किमयं स्वप्रतिज्ञातश्चलति नवेत्येवंरूपात् ३ पृथग्विमात्रातश्च, किमपि हास्यात् किञ्चित् प्रद्वेषा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

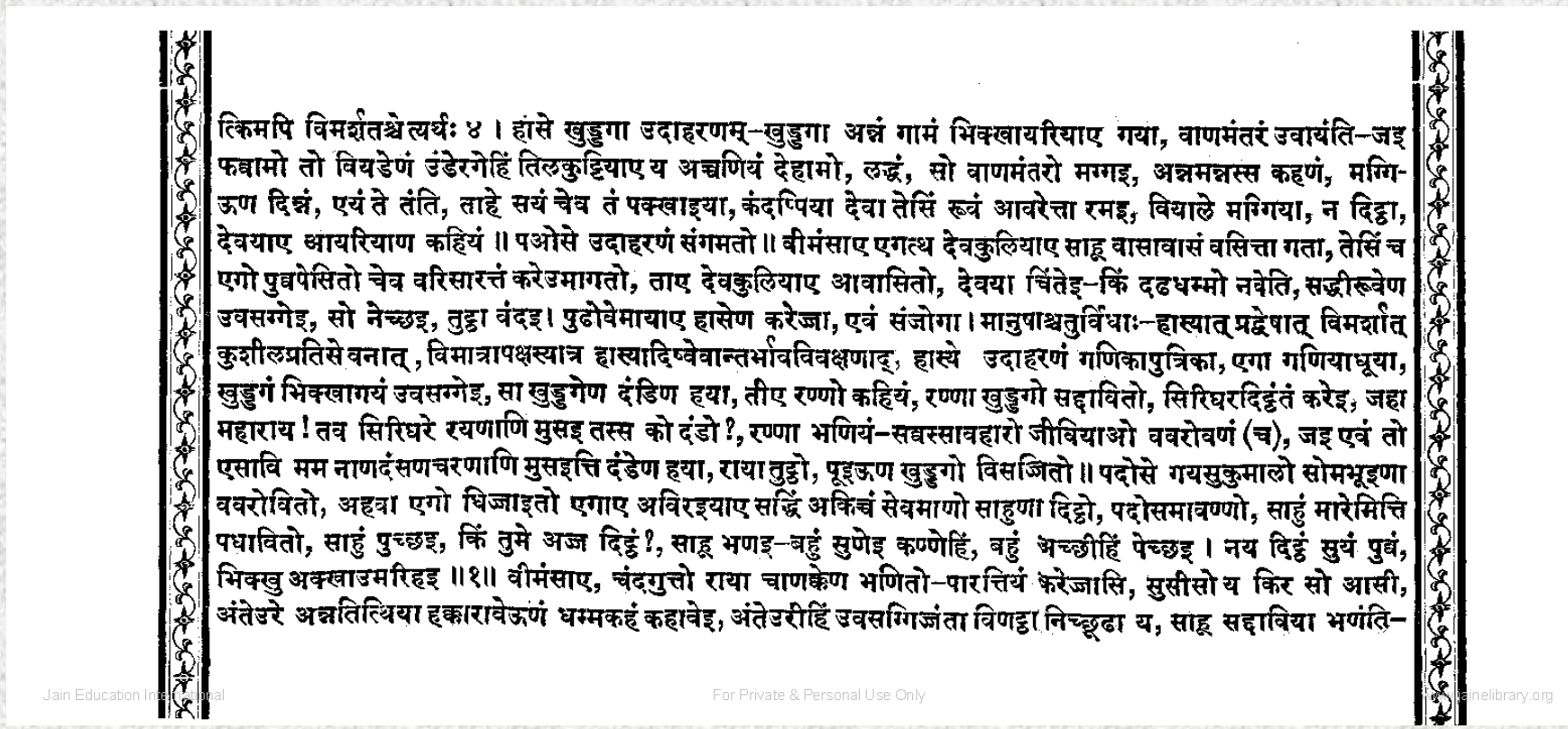

त्किमपि विमर्शतश्चेत्यर्थः ४ । हासे खुड्डगा उदाहरणम्–खुड्डगा अन्नं गामं भिक्खायरियाए गया, वाणमंतरं उवायंति–जइ फवामो तो वियडेणं उंडेरगेहिं तिलकुट्टियाए य अच्चणियं देहामो, लद्धं, सो वाणमंतरो मग्गइ, अन्नमन्नस्स कहणं, मग्गिऊण दिन्नं, एयं ते तंति, ताहे सयं चेव तं पक्खाइया, कंदप्पिया देवा तेसिं रूवं आवरेत्ता रमइ, वियाले मग्गिया, न दिट्ठा, देवयाए आयरियाण कहियं ॥ पओसे उदाहरणं संगमतो ॥ वीमंसाए एगत्थ देवकुलियाए साहू वासावासं वसित्ता गता, तेसिं च एगो पुव्वपेसितो चेव वरिसारत्तं करेउमागतो, ताए देवकुलियाए आवासितो, देवया चिंतेइ–किं दढधम्मो नवेति, सद्धीरूवेण उवसग्गेइ, सो नेच्छइ, तुट्ठा वंदइ। पुढोवेमायाए हासेण करेज्जा, एवं संजोगा। मानुषाश्चतुर्विधाः–हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनात्, विमात्रापक्षस्यात्र हास्यादिष्वेवान्तर्भावविवक्षणाद्, हास्ये उदाहरणं गणिकापुत्रिका, एगा गणियाधूया, खुड्डगं भिक्खागयं उवसग्गेइ, सा खुड्डगेण दंडिण हया, तीए रण्णो कहियं, रण्णा खुड्डगो सद्दाविओ, सिरिघरदिट्ठंतं करेइ, जहा महाराय! तव सिरिघरे रयणाणि मुसइ तस्स को दंडो?, रण्णा भणियं–सव्वस्सावहारो जीवियाओ ववरोवणं (च), जइ एवं तो एसावि मम नाणदंसणचरणाणि मुसइत्ति दंडेण हया, राया तुट्ठो, पूइऊण खुड्डगो विसज्जितो ॥ पदोसे गयसुकुमालो सोमभूइणा ववरोवितो, अहवा एगो धिज्जाइतो एगाए अविरइयाए सद्धिं अकिच्चं सेवमाणो साहुणा दिट्ठो, पदोसमावण्णो, साहुं मारेमित्ति पधावितो, साहुं पुच्छइ, किं तुमे अज्ज दिट्ठं?, साहू भणइ–बहुं सुणेइ कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ। नय दिट्ठं सुयं पुव्वं, भिक्खु अक्खाउमरिहइ ॥१॥ वीमंसाए, चंदगुत्तो राया चाणक्केण भणितो–पारत्तियं करेज्जासि, सुसीसो य किर सो आसी, अंतेउरे अन्नतित्थिया हक्कारावेऊणं धम्मकहं कहावेइ, अंतेउरीहिं उवसग्गिज्जंता विणट्ठा निच्छूढा य, साहू सद्दाविया भणंति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइ राया अच्छइ तो कहेमो, आगतो राया, पारद्धा धम्मकहा, राया उस्सरितो, अंतेउरिया उवसग्गंति दंडेण हयातो, सिरिघरदिट्ठंतं कहिंति, राया तुट्ठो परमसद्धो जातो ॥ कुसीलपडिसेवणाए ईसालुयभज्जातो चत्तारि, तेण सत्तवइपरिक्खित्तं घरं कारियं, ततो रायं विन्नविऊण तेण पडहएण घोसावियं, जहा अमुगस्स घरे समक्खं परोक्खं वा न केणई पविसिअव्वं, साहू अयाणंतो वियाले वसहिणिमित्तं अतिगतो, सो अ पविसिइल्लओ, तत्थ पढमे जामे पढमा आगया, भणइ–पडिच्छह, साहू कच्छं बंधिऊण आसणबंधं काऊण अहोमुहो ठिओ, चीरेण वेढितो, न सक्किओ खोभेउं, किसित्ता गया, इयरीओ पुच्छंति–केरिसो ?, सा भणइ–एरिसो अण्णो नत्थि मणूसो, एवं ताओवि कमेण एक्केक्कं जामं किसिऊण गयातो, मिलियातो साहेंति, उवसंताओ सद्धीतो जायातो ॥ तिरिच्छा चउव्विहा–भया १ पदोसा २ आहारहेउं ३ अवच्चलयणसारक्खणया ४-भएण सुणगाई व(ड)सेज्जा, पदोसे चंडकोसितो मक्कडाई वा, आहारहेउं सीहाई, अवच्चलयणसारक्खणट्ठयाए कागिमाई ॥ आत्मना संवेद्यन्ते–क्रियन्ते इति आत्मसंवेदनीयाः, ते चउव्विहा–घट्टणया पवडणया थंभणया लेसणया, तत्थ घट्टणया अच्छिम्मि रओ पविट्ठो, तेण चमढियं दुक्खिउमारद्धं, अहवा सयं चेव अच्छिम्मि गलके वा किंचि सालुगाइ उट्ठियं घट्टइ, पवडणया मंदपयत्तेण चंकमइ, ततो दुक्खाविज्जइ, थंभणया ताव बइट्ठो अच्छितो जाव पादो सुन्नो जातो, लेसणया पायं आउंटावेत्ता ताव अच्छितो जाव तत्थयावातेण लइओ, अहवा नट्ठं सिक्खामित्ति अइनामियं किंचि अंगं, तत्थेव लग्गं, अहवा आयसंवेयणीया चउव्विहा–वाइया पेत्तिया सिंभिया संनिवाइया, एए दव्वोवसग्गा, भावतो उवउत्तस्स एते चेव, उक्तं च–"दिव्वा माणुस्सया चेव, तिरिक्खा य वियाहिया । आयसंवेयणीया य, उवसग्गा चउव्विहा ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

हासप्पदोसवीमंसा, पुढोवेमायदिव्विया । माणुस्सया हासमादी, कुसीलपडिसेवणा ॥ २ ॥ तेरिच्छिया भया दोसा, आहारट्ठा तहेवय । अवच्चलेणरक्खट्ठा, एए चउहा वियाहिया ॥ ३ ॥ घट्टणा पवडणा चेव, थंभणा लेसणा तहा । आयसंवेयणीया य, उवसग्गा चउव्विहा ॥ ४ ॥" इत्यादि, अलं प्रसङ्गेन ॥ एतान्नामयन्तो नमोऽर्हा इति गाथार्थः ॥ सम्प्रति प्राकृतशैल्याऽनेकधा अर्हच्छब्दनिरुक्तसम्भव इति दर्शयन्नाह—

इंदियविसयकसाये परीसहे वेयणाओ उवसग्गे । एए अरिणो हन्ता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ ९१९ ॥

इन्द्रियादयः पूर्ववत्, वेदना त्रिविधा–शारीरी मानसी उभयरूपा च, 'एए अरिणो हंता' इत्यत्र प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च विभक्तिव्यत्ययः, ततोऽयमर्थः–एतेषामरीणां हन्तारोऽर्हन्त इति, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः ॥ स्यादेतत्–अनन्तरगाथायामेत एवोक्ताः, पुनरप्यमीषामेवेहोपन्यासोऽयुक्तः ?, उच्यते, अनन्तरगाथायां नमस्कारार्हत्वे हेतुत्वेनोक्ताः, इह पुनरभिधानं, निरुक्तिप्रतिपादनार्थं उपन्यासः ॥ साम्प्रतं प्रकारान्तरतोऽरय आख्यायन्ते, ते चाष्टौ–ज्ञानावरणादिसंज्ञाः सर्वसत्त्वानामेव, तथा चाह—

अट्ठविहंवि अ कम्मं अरिभूअं होइ सव्वजीवाणं । तं कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चन्ति ॥ ९२० ॥

अष्टविधम्–अष्टप्रकारम्, अपिशब्दादुत्तरप्रकृत्यपेक्षया अनेकप्रकारमपि, चशब्दो भिन्नक्रमः, स चावधारणे, ज्ञानावरणादिकमेव अरिभूतं–शत्रुभूतं भवति सर्वजीवानां–सर्वसत्त्वानां, अनवबोधादिदुःखहेतुत्वात्, तत्कर्म अरिं हंतारो यतस्तेनार्हन्त उच्यंते, रूपनिष्पत्तिः प्राग्वत् ॥ अथवा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ अर्हत् (अरिहंत) शब्दस्य निरुक्ति (व्याख्या) क्रियते

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥ ५१० ॥

अरिहंति वंदणनमंसणाणि अरिहंति पूअसक्कारे । सिद्धिगमणं च अरिहा अरहंता तेण वुचंति ॥ ९२१ ॥

'अर्ह पूजायाम्' अर्हन्ति वन्दननमस्करणे, तत्र वन्दनं शिरसा, नमस्करणं वाचा, तथा सिद्ध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्त्यस्यां प्राणिन इति सिद्धिः–लोकान्तक्षेत्रलक्षणा, वक्ष्यति–'इहं बोंदिं चइत्ताणं तत्थ गंतूण सिज्झइ' तद्गमनं च प्रति अर्हन्तीत्यर्हाः–योग्याः 'अच' इत्यच, तेन कारणेनार्हन्त उच्यन्ते, अर्हन्तः ॥ तथा—

देवासुरमणुएसुं अरिहा पूआ सुरुत्तमा जम्हा । अरिणो रयं च हंता अरहंता तेण वुचंति ॥ ९२२ ॥

देवासुरमनुजेभ्यः, सूत्रे पञ्चम्यर्थे सप्तमी प्राकृतत्वात्, पूजामर्हन्ति–प्राप्नुवन्ति, कुत इति चेत् आह–यस्मात् सुरोत्तमाः–उपचितसकलजनासाधारणपुण्यप्राग्भारतया समस्ता देवासुरमनुजोत्तमास्ततः पूजाम्–अष्टमहाप्रातिहार्यलक्षणामर्हन्तीत्यर्हन्तः, इत्थमनेकधाऽन्वर्थमभिधाय पुनः सामान्यविशेषाभ्यामुपसंहरन्नाह–'अरिणो हंता' इत्यादि, यतः अरीणां हन्तारः, तथा रजो–बध्यमानकं कर्म तस्य रजसो यतो हन्तारस्तेनार्हन्त उच्यन्ते, अरिहन्तार इति रजोहन्तार इति वा स्थितस्य अर्हत इति निष्पत्तिः प्राग्वत् ॥ इदानीममोघताख्यापनार्थमपान्तरालिकं नमस्कारफलमुपदर्शयति—

अरिहंतनमुक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्साओ । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥ ९२३ ॥

अर्हतां नमस्कारोऽर्हन्नमस्कारः, इह अर्हच्छब्देन बुद्धिस्था अर्हदाकारवती स्थापना गृह्यते, नमस्कारस्तु नमःशब्द एव, भावेन–उपयोगेन क्रियमाणः, अनेन नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणश्चतुर्विधो यद्यपि नमस्कारस्तथाऽप्यत्र भावनमस्कारो द्रष्टव्य इत्युक्तं वेदितव्यं, जीवम्–आत्मानं मोचयति–अपनयति भवसहस्रेभ्यः, यद्यपि सहस्रशब्दो दशशतसङ्ख्यायां वर्त्तते

अर्हच्छब्द-निरुक्तिः

॥ ५१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ अर्हत्/(अरिहंत)-नमस्कारस्य फ़लम् वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तथाऽप्यत्रार्थादनन्तसङ्ख्यायामवगन्तव्यः, अनन्तभवमोचनान्मोक्षं प्रापयतीत्युक्तं द्रष्टव्यम् । आह–न सर्वस्यैव भावतोऽपि नमस्कारकरणे तद्भव एव मोक्षः तत्कथमुच्यते–जीवं मोचयतीत्यादि ?, उच्यते, यदि तद्भव एव मोक्षाय न भवति, तथापि भावनाविशेषाद्भवति पुनर्बोधिलाभाय, बोधिलाभश्चाचिरादविकलो मोक्षहेतुरित्यतो न दोषः, तथा चाह—

अरिहंतनमोक्कारो धन्नाण भवक्खयं करेंताणं । हिययं अणुम्मुयंतो विसोत्तियावारओ होइ ॥ ९२४ ॥

धनं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणं लब्धारो धन्याः–साध्वादयः तेषां भवक्षयं–तद्भवजीवितक्षपणं कुर्वतां यावज्जीवं हृदयमनुञ्चन् विश्रोतसिकाया–विमार्गगमनस्यापध्यानस्य वारकोऽर्हन्नमस्कारो भवति, धर्मध्यानैकालम्बनतां करोतीत्यर्थः ॥

अरिहंतनमुक्कारो एवं खलु वण्णिओ महत्थुत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ ९२५ ॥

अर्हन्नमस्कार एवम्–उक्तप्रकारेण खलु वर्णितो महार्थ इति–महान् अर्थो यस्य स महार्थः, महार्थता चास्याल्पाक्षरत्वेऽपि द्वादशाङ्गसङ्ग्राहित्वात्, कथं पुनरेतदेवमित्याह–यो नमस्कारो मरणे–प्राणोपरमलक्षणे उपाग्रे–समीपे भूते अभीक्ष्णम्–अनवरतं क्रियते बहुशः–अनेकशः, ततो महत्यामापदि द्वादशाङ्गं मुक्त्वा तत्स्थानेऽनुस्मरणान्महार्थः, इयमत्र भावना–मरणकाले द्वादशाङ्गपरावर्त्तनाशक्तौ तत्स्थाने तत्कार्यकारित्वात् सर्वैरपि महर्षिभिरेष स्मर्यत इति द्वादशाङ्गसङ्ग्राहिता, तद्भावाच्च महार्थ इति ॥ तथा चाह भाष्यकृत्–"जलणादिभए सेसं मोत्तुं ए(उद)गरयणं महामोहं । जुहि वाऽभिभवे घेप्पइ अमोहसत्थं जह तहेह ॥ १ ॥ मोत्तुंपि बारसंगं स एव मरणंमि कीरए जम्हा । अरिहंतनमोक्कारो तम्हा सो बारसंगत्थो ॥ २ ॥ सव्वंपि बारसंगं परिणामविसुद्धिहेउमेत्तागं । तक्कारणभावातो कह न तदत्थो नमोक्कारो ? ॥ ३ ॥ न हु तम्मि देसकाले सक्को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥५११॥

वारसविहो सुयक्खंधो। सव्वो अणुचिंतेउं धंतंपि समत्थचित्तेण ॥ ४ ॥ अत्र 'देसकाल'त्ति देशः-प्रस्तावस्वरूपः कालो देशकालः, मरणकाल इत्यर्थः, तस्मिन्, धंतंपीति प्राकृतत्वात् लिङ्गव्यत्ययः, धातोऽपि, अत्यन्तमभ्यस्तोऽपीति भावः, तप्पणईणं तम्हा अणुसरियव्वो सुहेण चित्तेण। एसेव नमोक्कारो कयघुयं मन्नमाणेणं ॥ ५ ॥" उपसंहरन्नाह—

अरिहंतनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ ९२६ ॥

अर्हन्नमस्कारः 'सव्वपावप्पणासणत्ति पासयति-मलिनयति जीवं पिबति हितमिति वा पाति वा रक्षति भवान्निर्गच्छन्तमिति पापं-कर्म्म, औणादिकः पप्रत्ययः, सर्वम्-अष्टप्रकारमपि पापं कर्म्म, 'पापं कर्मैव तत्त्वत' इति वचनात्, प्रणाशयति-अपनयतीति सर्वपापप्रणाशनः, मङ्गलानां च सर्वेषां नामादिलक्षणानां प्रथममिति-प्रधानं प्रधानार्थकारित्वात्, अथवा पञ्चामूनि भावमङ्गलानि अर्हदादीनि तेषां प्रथमं-आद्यं भवति मङ्गलमिति ॥ उक्तस्तावदर्हन्नमस्कारः, सम्प्रति सिद्धनमस्कार उच्यते-सिद्ध्यति स्म सिद्धः, यो येन गुणेन निष्पन्नः-परिनिष्ठां प्राप्तो, न पुनः साधनीयः, सिद्धौदनवत्, स सिद्धः, स च सिद्धशब्दसामान्याक्षेपतोऽर्थतस्तावच्चतुर्दशविधः, तत्र नामस्थापनासिद्धौ सुप्रतीतौ, द्रव्यसिद्धो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तः सिद्धः ओदनः, तत्र नामस्थापनाद्रव्यसिद्धान् व्युदस्य (शेष) सिद्धप्रतिपादनार्थमाह—

कम्मे सिप्पे य विज्जाय, मंते जोगे य आगमे। अत्थ जत्ता अभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इय ॥ ९२७ ॥

कर्म्मणि सिद्धः कर्मसिद्धः, निष्ठां गत इत्यर्थः, एवं शिल्पसिद्धः विद्यासिद्धः मन्त्रसिद्धो योगसिद्धः आगमसिद्धः अर्थसिद्धः

अर्हन्नमनप्रभावः

॥५११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ सिद्ध शब्दस्य व्याख्या:, भेदा: एवं तेषां नमस्काराणां फ़लम् प्रतिपाद्यते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

यात्रासिद्धः अभिप्रायसिद्धः तपःसिद्धः कर्म्मक्षयसिद्धश्च, एष गाथासमासार्थः ॥ अवयवार्थं तु प्रतिद्वारमेव वक्ष्यति, तत्र कर्म्मसिद्धादिव्याचिख्यासया कर्मादिस्वरूपं प्रथमतः प्रतिपादयति—

कम्मं जमणायरिओवएसिअं सिप्पमन्नहाऽभिहिअं । किसिवाणिज्जाईअं घडलोहाराइभेअं च ॥ ९२८ ॥

इह यत् अनाचार्योपदेशजं सातिशयमनन्यसाधारणं कर्म्मेह परिगृह्यते, यत्पुनः कर्म सातिशयमाचार्योपदेशजं ग्रंथनिबद्धं वा तत् शिल्पं, तत्र कृषिवाणिज्यादि, आदिशब्दात् भारवहनादिपरिग्रहः, कर्म्म, घटकारलोहकारादिभेदं, भावप्रधानोऽयं निर्देशः, घटकारत्वलोहकारत्वादिभेदं कर्म्म पुनः, चशब्दः पुनःशब्दार्थः, शिल्पमिति ॥ सम्प्रति कर्म्मसिद्धं सोदाहरणमभिधित्सुराह—

जो सव्वकम्मकुसलो जो जत्थ सुपरिनिट्ठिओ होइ । सज्झगिरिसिद्धओविव स कम्मसिद्धुत्ति विन्नेयो ॥ ९२९ ॥

यः कश्चित् सर्वकर्मकुशलो यो वा यत्र कर्म्मणि सुपरिनिष्ठितो भवत्येकस्मिन्नपि कर्म्मणि सह्यगिरिसिद्धक इव स कर्मसिद्ध इति विज्ञेयः, कर्म्मसिद्धो ज्ञातव्य इत्यर्थः ॥ एष गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–कोंकणे एगंमि दुग्गे सज्झस्स भंडं ओरुहंति विलयंति य, ताणं च विसमे गुरुभारवाहित्तिकाऊण रण्णा समाणत्तं–एएसिं मएऽवि पंथो दायव्वो, न उण एएहिं कस्सवि । इतो य एगो सिंधवतो पुराणो, सो पडिभज्जंतो चिंतेइ, तहिं जामि जहिं कम्मेण एस जीवो भज्जइ, सुहं न विंदइ, सो तेसिं मिलितो, सो गंतुकामो रयणिपज्जवसाणे (सिद्धं) भणइ कुंदुरुक्कपडिबोहियलओ, सिद्धओ भणइ–(किं ?), सिद्धियं देहि मम, जह सिद्धयं सिद्धया, गयो सज्झयं, अत्र कुंदुरुक्कः कुर्क्कुटः, सह्यकं पर्वतं, सो य तेसिं महत्तरओ सव्ववडुं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारं वहइ, अन्नया साहू तेण मग्गेण आगच्छंति, तेण तेसिं साहूणं मग्गो दिन्नो, ते रुट्ठा राडले गया, रायाणं विन्नवेंति-अम्हं रायावि मग्गं देइ भारेण दुक्खाविज्जंताणं, एस पुण समणस्स रित्तस्स मग्गं देइ, रण्णा भणियं–अरे दुट्ठं ते कयं, मम आणा लंघिया, तेण भणियं–देव ! तुमे गुरुभारवाहित्तिकाऊणमेयमाणत्तं ?, रण्णा आमंति पडिस्सुयं, तेण भणियं–जइ एवं ता सो गुरुतरभारवाही, कहं ?, जं सो अवीसमंतो अट्ठारसीलंगसहस्सनिब्भरं भारं वहति जो मएवि वोढुं न पारिओ, एत्थंतरा धम्मकहा तेण कहिया–भो ! महाराय !–वुज्झंति नाम भारा, ते चिय वुज्झंति वीसमंतेहिं । सीलभरो वोढवो, जावज्जीवं अवीसामो ॥ १ ॥ राया पडिबुद्धो, सो य संवेगतो पुणरवि पव्वज्जाए अब्भुट्ठितो ॥ एसो कम्मसिद्धो, संप्रति शिल्पसिद्धं सोदाहरणमभिधातुकाम आह—

जो सव्वसिप्पकुसलो जो वा जत्थ सुपरिनिट्ठिओ होइ । कोकासवद्धई इव साहसओ सिप्पसिद्धो सो ॥ ९३० ॥

यः कश्चिदनिर्दिष्टस्वरूपः सर्वशिल्पेषु कुशलः, यो वा यत्रैकस्मिन्नपि शिल्पे सुपरिनिष्ठितः सातिशयश्च कोकासवर्द्धकिवत् स शिल्पसिद्ध इति ॥ एष गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–सोप्पारए रहकारस्स दासीए बंभणेण दासचेडो जातो, सो य मूयभावेण अच्छइ–मा नज्जीहामित्ति, रहकारो अप्पणो पुत्ते सिक्खावेइ, ते मंदबुद्धी न लएन्ति, दासेण सव्वं गहियं, रहकारो मओ, रायाए दासस्स सव्वं दिन्नं जं तस्स घरसारं । इतो य उज्जेणीए राया सावगो, तस्स चत्तारि सावगा, एगो महाणसितो रंधेइ जइ रुच्चइ जिमियमेत्तं जीरइ, अहवा एगेण जामेणं बिहिं तीहिं चउहिं पंचहिं, जइ रुच्चइ न चेव जीरइ, विइतो अब्भंगेइ सो तेल्लस्स कुलवं ससरीरे पवेसेइ, तं चेव नीणेइ, तइओ सेज्जं रएइ, जइ रुच्चइ पढमे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जामे विबुज्झइ, अहवा बितिए तइए चउत्थे, अहवा सुवति चेव, चउत्थो सिरिघरिओ, तारिसो सिरिघरो कतो जहा आगतो न किंचि पेच्छइ, एए गुणा तेसिं, सो राया अपुत्तो निविण्णकामभोगो पवज्जोवायं चिंतंतो अच्छइ, ततो पाडलिपुत्ते नयरे जियसत्तू राया, सो तस्स नयरिं रोहेइ, एत्थंतरंमि तस्स रन्नो पुवकयकम्मपरिणतिवसेण गाढं सूलमुप्पन्नं, ततोऽणेण भत्तं पच्चक्खायं, देवलोगं गतो, नागरगेहिं से नयरी दिन्ना, सावया सद्दाविया, पुच्छंति–किंकम्मगा?, भंडारिएण पवेसितो, किंचि न पेच्छति, अन्नेण दारेण दरिसियं १ सेज्जावालेण एरिसी सेज्जा कया जेण मुहुत्ते मुहुत्ते उट्ठेइ २ सूवेण एरिसं भत्तं कयं जेण वेलं वेलं जेमेइ ३ अब्भंगएण एक्कातो पायातो तेल्लं न नीणियं, जो मम सरिसो सो नीणेउ ४, चत्तारिवि पवइया, सो तेण तेल्लेण डज्झंतो कालतो जातो, कागवन्नो नामेण विक्खातो॥ इतो य–सोप्पारए दुब्भिक्खं जायं, सो कोक्कासो उज्जेणिं गतो, रायाणं किह जाणावेमित्ति कवोतेहिं गंधसालिं अवहरइ, कोट्ठागारिएण कहियं, मग्गिएण दिट्ठो, आणीतो, रण्णा णातो, वित्ती दिन्ना, तेणागासगामी खीलियापयोगनिम्मातो गरुडो कतो, सो य राया तेण कोक्कासेण देवीए समं तेण गरुडेण नहमग्गेण हिंडइ, जो न नमइ तं भणति–अहं आगासेणागंतूण मारेमि, ते सवे आणाविहेया कया, तं देविं सेसियातो देवीतो पुच्छंति जाए कीलियाए नियत्तइ जंतं, सा एगाए वच्चंतस्स ईसाए नियत्तणखीलिया गहिया, ततो नियत्तणवेलाए नायं जहा नत्थि नियत्तणखीलिया, ततो न नियत्तइ, ताहे उद्दामं गच्छंतस्स कलिंगे ईसिपाणिए तलाए पक्खा भग्गा, पंखाविगलोत्ति पडितो, ततो तस्संघायणनिमित्तं उवकरणट्ठा कोक्कासो नगरं गतो, तत्थेको रहकारो रहं निवत्तेइ, एक्कं चक्कं निवत्तियं, बीयस्स अद्धं निवत्तियं, सो ताणि उवगरणाणि मग्गइ, सो भणइ–जाव घरातो आणेमि, राउलातो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ५१३ ॥

न लब्भइ निक्कालेउं, सो गतो, इमेण संघातितं, उद्धं वा जाति, अभिमुहं नियत्तं पच्छतोमुहं जाति, उद्धियंपि न पडइ, इयरस्सवयं जाइ अप्फिडियं पडइ, सो आगच्छंतो पेच्छइ निम्मायं, नायं जहा एस कोक्कासो, अक्खेवेणं गंतूण रण्णो कहइ, जहा कोक्कासो देव ! आगतो, जस्स बलेण कागवण्णेण सवे रायाणो वसमाणीया, तो गहितो, तेण हम्मंतेण अक्खायं, जहा अमुगत्थ राया सह देवीए, भत्तं वारियं, नागरेहिं अयसभीएहिं कागपिंडी पवत्तिया, कोक्कासो भणितो–मम पुत्तस्स सत्तभूमियं पासादं करेहि, मम य मज्झे, तो सवे रायाणो आणवेस्सामि, तेण निम्मातो, कागवन्नपुत्तस्स लेहं पेसियं–'एहि अहं जाव एयं मारेमि, तो तुमं मायापियरं ममं च मोएहिसि', दिवसो दिन्नो, पासायं सपुत्तो राया विलइतो, खीलिया आहया, ततो सपुत्तगो राया मतो, कागवन्नपुत्तेण तं सवं नगरं गहियं, मायापियं कोक्कासो य मोयावियाणि, एस एवंविहो सिप्पसिद्धो ॥ साम्प्रतं विद्यासिद्धं प्रतिपादयन्नादौ तावत् तत्स्वरूपं प्रतिपादयति—

इत्थी विज्जाऽभिहिआ पुरिसो मंतुत्ति तव्विसेसोऽयं। विज्जा ससाहणा वा साहणरहिओ अ मन्तुत्ति (भवे मंतो) ९३१

स्त्री विद्या अभिहिता पुरुषो मन्त्र इति अयं तद्विशेषः–विद्यामन्त्रयोर्विशेषः, इयमत्र भावना–यत्र मन्त्रदेवता स्त्री विद्या, यत्र पुरुषो देवता स मन्त्र इति, अथवा साधनसहिता विद्या, साधनरहितो मन्त्रः, शाबरादिमन्त्रवत् इति तद्विशेषः ॥ अधुना विद्यासिद्धं सनिदर्शनमुपदर्शयति—

विज्जाण चक्कवट्टी विज्जासिद्धो स जस्स वेगावि। सिज्झिज्ज महाविज्जा विज्जासिद्धोऽज्जखउडुव ॥ ९३२ ॥

विद्यानां सर्वासां चक्रवर्त्ती–अधिपतिर्विद्यासिद्धो, विद्यासु सिद्धः विद्यासिद्ध इति व्युत्पत्तेः, यस्य वा एकापि महा-

शिल्पविद्या मंत्रसिद्धाः

॥ ५१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

विद्या–महापुरुषदत्तादि सिध्येत् स विद्यासिद्धः, सातिशयत्वात्, क इव ?–आर्यखपुटवदिति गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–विज्जासिद्धा आयरिया, तेसिं च बालो भागिणेज्जो, तेण तेसिं पासातो विज्जा कन्नाहेडिया, विज्जासिद्धस्स नमोक्कारेणावि किर विज्जातो भवंति, सो विज्जाचक्कवट्टी, सो तं भागिणेज्जं भरुकच्छे साहुसगासे ठविऊण गुडसत्थं नगरं गतो, तत्थ किल विज्जापरिवायतो साहूहिं वादे पराजितो अद्धितीए कालगतो तंमि गुडसत्थे नगरे वड्डुकरओ वाणमंतरो जातो, तेण तत्थ साहुणो सव्वे उवद्दविउं पारद्धा, तन्निमित्तं अज्जखउडा तत्थ गया, तेण गंतूण तस्स कन्नेसु उवाहणाओ ओलंबियातो, मुहे अवाणं ठविऊण उप्पाओ पंगुरिऊण सुत्तो, देवकुलिओ आगतो पेच्छइ, ततो जणं घेत्तूण आगतो, जतो जतो उग्घाडिज्जइ ततो ततो अहिट्ठाणं दीसइ, रण्णो कहियं, तेणवि दिट्ठं, कट्ठलट्ठीहिं पहतो सो, पहारे अंतेउरे संकामेइ, मुक्को, रण्णा सबहुमाणं बहुप्पगारं भणितो जहा पसायं करेह मुंच एयं देवंति, ततो संभंतो उट्ठितो चलितो य, पिट्ठतो य वड्डुकरगो अन्नाणि य वाणमंतराणि खडखडंताणि चलंति, लोगो राया य पायवडितो विण्णवेइ–मुयाहित्ति, तस्स देवकुले दोन्नि महतिमहालियातो पाहाणमईओ कुंडीओ, तातोवि चलियातो, ततो तातो सो वड्डुकरओ अण्णाणि य वाणमंतराणि खडखडेंताणि पिट्ठितो हिंडंति, जणो राया य तहेव विण्णवेइ, ततो गामपज्जंते वड्डुकरतो वाणमंतराणि य मुक्काणि सट्ठाणं गयाणि, तातो दोणीतो दोन्निवि अग्गतो आणित्ता छड्डियातो, जो मम सरिसो सो सट्ठाणं पावेस्सति, सो य भायणिज्जो आहारगेहीए निव्वीवायं वेलवज्जितो भरुकच्छे तच्चणियचेल्लओ जातो, तस्स विज्जापभावेण पत्ताणि आगासेण उवासगाणं घरेसु गच्छंति, भरियाणि पुण सट्ठाणमेंति, लोगो बहुओ तम्मुहो जातो, संघेण अज्जखउडाण माणुसं पेसियं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगया, अक्खायं–एरिसी अकिरिया उट्ठियत्ति, तेसिं कप्पराण अग्गतो मत्तओ सेएण वत्थेण उच्छाइतो जाति, टोप्परिया गया सव्वप्पवरे आसणे ठिया, पुणोवि भरिया आगया, आयरिएहिं अंतरा आगासे महासिला (ठविया) तत्थ अप्फिडियाणि, सव्वाणि भिन्नाणि, सो चेल्लओ भीतो नट्ठो, आयरिया तत्थ गया, तच्चणिया भणंति–एहि बुद्धस्स भगवतो पाएसु पडेहि, आयरिया भणंति–एहि पुत्ता! सुद्धोयणसुया वंद ममं, बुद्धो निग्गतो, पाएसु पडितो, तत्थ थूभो वारे, सोऽवि भणितो–एहि पाएसु पडाहित्ति पडितो, उट्ठेहित्ति भणितो अद्धावणतो ठितो, एवं चेव अच्छेहित्ति भणितो ठितो पासिल्लितो, नियंठोनामितो नामेण सो जातो, एस एवंविहो विज्जासिद्धो ॥ साम्प्रतं मन्त्रसिद्धं सनिदर्शनमुपदर्शयति—

साहीणसव्वमंतो बहुमंतो वा पहाणमंतो वा । नेओ स मंतसिद्धो थंभागरिसुव्व साइसओ ॥ ९३३ ॥

स्वाधीनसर्वमन्त्रो बहुमंत्रो वा प्रधानमन्त्रो वा–प्रधानैकमंत्रो वा ज्ञेयः स मन्त्रसिद्धः, क इव ?, स्तम्भाकर्षक इव सातिशयः, एष गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–एगम्मि नगरे उक्किट्ठसरीरा संजती रण्णा विसयलोलुपेण गहिया, संघसमवाओ कओ, राया न मुयइ, ततो एगेण मंतसिद्धेण रायंगणे जे खंभा अच्छंति ते अभिमंतिया, आगासेण उप्पइया खडखडेंति, पासायखंभावि चलिया, भीएण मुक्का, संघो खामितो, एस एवंविहो मंतसिद्धो ॥ साम्प्रतं सदृष्टान्तं योगसिद्धं प्रतिपादयन्नाह—

सव्वेऽवि दव्वजोगा परमच्छेरयफलाऽहवेगोऽवि । जस्सेह हुज्ज सिद्धो स जोगसिद्धो जहा समिओ ॥ ९३४ ॥

सर्वेऽपि–कात्स्न्येंन द्रव्ययोगाः परमाश्चर्यफलाः–परमाद्भुतकार्याः, अथवा एकोऽपि योगः परमाश्चर्यफलो यस्य भवे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

स्सिद्धः स योगेषु योगे वा सिद्धो योगसिद्धोऽतिशयवान् यथा समित आचार्य इति गाथाक्षरार्थः ॥ भावार्थः कथानकगम्यः, तच्चेदम्-आभीरदेसे कण्हाए बेण्णाए य नदीए अंतरा तावसा परिवसंति, तत्थेगो पायलेवेणं पाणीए चंकमंतो भमइ, एइ जाइ य, लोओ आउट्टो, सद्धा हीलिज्जंति, अज्जसमिया वइरसामिस्स माउलगा विहरंता आगया, सद्धावि उवट्ठिया, अकिरियत्ति आयरिया नेच्छंति, भणंति-किं अज्जो ! न ठाह, एस जोगेण केणवि मक्खेइ, तेहिं अट्ठपदं लद्धं, आणीतो, अम्हेवि दाणं देमोत्ति, अह सो सावगो भणइ-भयवं ! पाया धोवंतु, अम्हेवि अणुग्गहिया होमो, अणिच्छंतस्स पायाओ पाउयातो य धोयातो, ततो जले ओयरितो, पाणिए निब्बुड्डो, उक्किट्ठी कया, एवं डंभेहिं लोगो खज्जइत्ति, आयरिया निग्गया, जोगं परिकज्जइति आयरिया निग्गया, जोगं पक्खित्ता नदी भणिया-एहि पुत्ति ! परं कूलं जामो, दोऽवि तडा मिलिया, गया परं कूलं, ते तावसा आउट्टा पव्वइया, ते च बंभद्दीवगवत्थव्वत्ति बंभदीवगा जाया, एस एवंविहो जोगसिद्धो ॥ अधुना आगमार्थसिद्धौ प्रतिपादयति—

आगमसिद्धो सव्वंगपारओ गोअमुव्व गुणरासी। पउरत्थो अत्थपरुव्व मम्मणो अत्थसिद्धो उ ॥ ९३५ ॥

आगमसिद्धः सर्वाङ्गपारगो-द्वादशाङ्गवित्, अयं च महातिशयवानेव, यत उक्तम्-"संखातीतेवि भवे साहइ०" इत्यादि, अयं च गौतम इव गुणराशिरवगन्तव्यः, अत्र भूयांसः सातिशयचेष्टिता उदाहरणं ॥ तथा प्रचुरार्थः-प्रभूतार्थः, अर्थपरः-अर्थनिष्ठोऽर्थसिद्धः, अतिशययोगात्, मम्मणवदिति गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्-तत्थागमसिद्धो किर सयंभुरमणेवि मच्छगादीया। जं चेट्ठंति स भयवं उवउत्तो जाणइ तयंपि ॥१॥ अट्ठसिद्धो पुण रायगिहे नयरे मम्मणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ५१५ ॥

वाणिओ, तेण अतिकिलेसेण अइबहुगं दव्वजायं मेलियं, सो तं न खाइ न पिबति, पासादोवरिं चणेण अणेगकोडिनिम्मायगब्भसारो कंचणमतो दिव्वरयणपज्जलितो एगो वलहो कारावितो, बितिओ य आढत्तो, सोऽवि बहुनिम्मातो, एत्थंतरंमि वासारत्ते तस्स निम्मावणनिमित्तं कच्छोट्टगबितिज्जो सो नदिपूरातो कट्ठविरूढगो कट्ठाणि उत्तारेइ, इतो य–राया देवीए सह ओलोयणगतो अच्छइ, सो तहाविहो अतीव करुणालंबणभूतो देवीए दिट्ठो, ततो तीए सामिस्स भणियं–सच्चं सुवइ एयं मेहनइसमा हवंति रायाणो। भरियाइं भरंति दढं रित्तं जत्तेण वज्जेंति ॥ १ ॥ रण्णा भणियं–किह कह वा ?, तीए भणियं–जं एस दमगो किलिस्सइ, रण्णा सद्दावितो, भणितो य–किं किलिस्ससि ?, तेण भणियं–बलद्दसंघाडगो न पुज्जइ, रण्णा भणियं–बलद्दसयं गेण्ह, तेण भणियं–न मे तेहिं कज्जं, तस्स विइज्जं पूरेह, केरिसोत्ति ?, घरं नेऊण दरिसितो, रण्णा भणियं–सव्वभंडारेणवि न पुज्जइ, ता एत्तिगविभवस्स अलं ते तिण्हाए, तेण भणियं–जाहे सो न पूरितो ताव ण सुहं, पारद्धो य उवाओ, पेसियाणि दिसासु भंडाणि, आढत्तातो किसीओ, आढत्ताणि य गयतुरयबलद्दपोसणाणि, रण्णा भणियं–जइ एवं ता किं थेवस्स रत्तिं नइपूरतो कट्ठकट्ठणस्स कए किलिस्ससि ?, तेण भणियं–किलेससहं मे सरीरं, वावारंतरं चेदाणिं नत्थि, महग्घाणि य वासारत्ते दारुगादीणि, निव्वहियवा य पइण्णा, अतो किलिस्सामि, रण्णा भणियं–पुज्जंतु ते मणोरहा, तुमं चेव विइज्जगं पूरेउं समत्थो, न उण अहंति निग्गतो, तेण कालेण पूरितो, एस एवंविधो अत्थसिद्धो ॥ साम्प्रतं यात्रासिद्धप्रतिपादनार्थमाह—

जो निचसिद्धजत्तो लद्धवरो जो य तुंडियाइव्व। सो किर जत्तासिद्धोऽभिप्पाओ बुद्धिपज्जाओ ॥ ९३६ ॥

योगार्थ-सिद्धाः

॥ ५१५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

यो नित्यसिद्धयात्रः, किमुक्तं भवति ?, स्थलजलचारिपथेषु सदैवाविसंवादितयात्र इति, लब्धवरो यो वा तुंडिकादिवत् स किल यात्रासिद्धः । उत्तरद्वारानुसन्धानायाह–अभिप्रायो बुद्धिपर्याय इति गाथाक्षरार्थः, भावार्थस्तु कथानकगोचरः, तच्चेदम्–पढमं ताव जो किर बारस वारातो समुद्दं ओगाहित्ता कयकज्जो आगच्छइ सो जत्तासिद्धो, तं अन्नेवि जंतगा जत्ताए सिद्धिनिमित्तं पेच्छंति, यथा एगंमि नगरे तुंडिगो वाणिओ, तस्स सयसहस्सवारातो वहणं फुट्टं, तहावि न भज्जइ, भणइ य–जले नट्ठं जले चेव लब्भइ, सयणाईहिं दिज्जमाणं नेच्छइ, पुणो पुणो तं तं भंडं गहाय गच्छइ, निच्छएण से देवया पसण्णा, खद्धं खद्धं दव्वं दिन्नं, भणितो य–अन्नं किं ते करेमि ?, तेण भणियं–जो मम नामेण समुद्दं ओगाहइ सो अविवन्नो एउ, तहत्ति पडिस्सुयं, स जत्तासिद्धो, अण्णे भणंति–किल निज्जामगस्स वासुल्लतो समुद्दे पडितो, सो तस्स कए समुद्दं उल्लंघिउमाढत्तो, ततो अनिविन्नस्स देवयाए वरो दिन्नो। कृतं प्रसङ्गेन । साम्प्रतमभिप्रायसिद्धं प्रतिपादयन्नाह—

विउला विमला सुहुमा जस्स मई जो चउव्विहाए य । बुद्धीए संपन्नो स बुद्धिसिद्धो इमा सा य ॥ ९३७ ॥

विपुला–विस्तारवती, एकपदेनानेकपदानुसारिणीति भावः, विमला–संशयविपर्ययानध्यवसायमलरहिता, सूक्ष्मा–अत्यन्तदुःखबोधसूक्ष्मव्यवहितार्थपरिच्छेदसमर्था यस्य मतिः स बुद्धिसिद्धः । यदिवा यश्चतुर्विधया औत्पत्तिक्यादिभेदभिन्नया बुद्ध्या सम्पन्नः स बुद्धिसिद्धः ॥ सा च चतुर्विधा बुद्धिरियम्—

उप्पत्तिया वेणइया, कम्मिया परिणामिया । बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ ॥ ९३८ ॥

उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, आह–सर्वस्या अपि बुद्धेः क्षयोपशमः प्रयोजनं ततः कथमुच्यते–उत्पत्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** बुद्धे: चत्वार: भेदा: एवं तत्संबंधे: दृष्टांता: प्रतिपाद्यते

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ५१६ ॥

रेव प्रयोजनं यस्याः इति, सत्यमेतत्, किन्तु स खल्वन्तरंगत्वात् सर्वबुद्धिसाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रकर्म्माभ्यासादिकमपेक्षते, तत उक्तम्-उत्पत्तिरेवेत्यादि, विनयो गुरुशुश्रूषा स कारणमस्या वैनयिकी २ अनाचार्यकं कर्म्म साचार्यकं शिल्पं, यदिवा कादाचित्कं कर्म्म नित्यमभ्यस्यमानं कर्म्म शिल्पं, कर्मणो जाता कर्मजा ३ तथा परि-समन्तात्-नमनं-यथावस्थितवस्त्वनुसारितया गमनं परिणामः, सुदीर्घकालपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्य आत्मधर्मविशेष इत्यर्थः, स कारणमस्याः पारिणामिकी, बुद्ध्यतेऽनयेति बुद्धिः चतुष्प्रकारा उक्ता, तीर्थकरगणधरैः, किमिति ?, यस्मात्केवलिनाऽपि पञ्चमी बुद्धिर्नोपलभ्यते, असत्त्वात् ॥ साम्प्रतमौत्पत्तिक्या लक्षणमाह—

पुव्वमदिट्ठमस्सुअमवेइअ तक्खण विसुद्धगहिअत्था । अव्वाहयफलजोगा बुद्धी उप्पत्तिआ नाम ॥ ९३९ ॥

पूर्वं-बुद्ध्युत्पादात् प्राक् स्वयमदृष्टोऽन्यतश्चाश्रुतोऽविदितो-मनसाऽप्यनालोचितः तस्मिन्नेव क्षणे विशुद्धो गृहीतो-यथावस्थितो गृहीतोऽवधारितोऽर्थो यस्याः सा तथा, इह ऐकान्तिकमिहपरलोकाविरुद्धं फलान्तराबाधितं वाऽव्याहतमुच्यते, फलं-प्रयोजनं, अव्याहतं च तत् फलं च अव्याहतफलं तेन योगो यस्याः सा अव्याहतफलयोगा बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ संप्रति विनेयजनानुग्रहाय अस्या एव स्वरूपप्रतिपादनार्थमुदाहरणानि प्रतिपादयति—

भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३ खुड्डग ४ पड ५ सरड ६ काय ७ ऊवारे ८ ।
गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२ खुड्डग १३ मग्गित्थि १४ पइ १५ पुत्ते १६ ॥ ९४० ॥
भरहसिल १ मिंढ २ कुक्कुड ३ तिल ४ वालुअ ५ हत्थि ६ अगड ७ वणसंडे ८ ।

योगार्थसिद्धाः

॥५१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पायस ९ अइआ १० पत्ते ११ खाडहिला १२ पंच पिअरो १३ अ ॥ ९४१ ॥
महुसित्थ १७ मुद्दि १८ अंके १९ पणए २० भिक्खू २१ य चेडगनिहाणे २२ ।
सिक्खा २३ य अत्थसत्थे २४ इच्छाइ महं २५ सयसहस्से २६ ॥ ९४२ ॥

आसामर्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि चामूनि–तत्र प्रथमत उदाहरणं शिलाविषये–उज्जेणीए नयरीए आसन्नो नडाणं गामो, तत्थेगस्स भरहनामस्स नडस्स भज्जा मया, तस्स य पुत्तो डहरओ, तेण अन्ना आणीया, सा तस्स दारगस्स संमं न वट्टइ, तेण दारएण भणियं–मम लट्ठं न वट्टसि, तहा ते करेमि जहा मे पाएसु पडिहिसित्ति, तेण रत्तिं पिया सहसा भणितो–एस गोहित्ति, तेण नायं–महिला विणट्ठत्ति, सिढिलो रागो जातो, सा भणइ–पुत्त ! मा एवं करेहि, सो भणइ–मम लट्ठं न वट्टसि, भणइ–वट्टिहामि, तो लट्ठं करेहामि, सा वट्टिउमारद्धा, अन्नया रोहतो छाहीमुद्दिसिऊण एस गोहो एस गोहो एस गोहोत्ति भणइ, पियरेण पुट्ठो–कहिंति ?, छाहिं दंसेइ, ततो पिया से लज्जितो, सोऽवि एवंविहोत्ति तीसे घणो रागो जातो, सोऽवि विसभीतो पियरेण समं जेमेइ, अन्नया पियरेण समं उज्जेणिं गतो, दिट्ठा नगरी, निग्गया पियापुत्ता, पियरस्स किंचि ठवियं विसुमरियं, ततो सो पच्छा वलितो, सोऽवि रोहतो सिप्पानदीए पुलिणे नगरिं आलिहति, तेण नगरी सचच्चरा सदेवकुलरायकुला लिहिया, तेण य पदेसेण राया वाहियालियाए आगतो, कहमवि एगागी अस्सारूढो आगच्छति, सो वारिओ, भणइ–मा राउलस्स मज्झेण जाहि, तेण कोउहल्लेण पुच्छितो–किमेयं तए आलिहियं ?, तेण नगरी सदेवउलरायकुला कहिया, कहिं वससि ?, कइ वारा तए दिट्ठा नगरी ?, भणइ–एक्कसिं, इयाणिं चेव, एत्थंतरे से पिया आगतो, राइणो य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

एगूणगाणि पंच मंतिसयाणि, एक्कं मग्गइ जो सव्वप्पहाणो होज्जा, तस्स परिक्खणनिमित्तं तं गामं भणावेइ–जहा तुब्भं गामस्स बहिया महल्ली सिला तीए मंडवं करेह, न य सा ठाणातो चालियव्वा, ते गामेल्लया आदन्ना, सो रोहगदारगो छुहाइतो, पिया से गामेण समं अच्छइ, उस्सूरे आगतो, रोयइ–अम्हे छुहाइया अच्छामो, सो भणइ–सुहितोसि, तं न याणसि, तेण भणियं–कहं ?, ततो कहियं, भणइ–वीसत्था अच्छह, हेट्ठातो खण, थंभे य देह, ततो थोवथोवभूमी खाया, थंभा य अंतरा कया, तो उवलेवणे कतोवयारे मंडवे कए रण्णो निवेदितं, राइणा पुच्छियं–केण कयं ?, पुरिसेहिं कहियं–रोहएण भरहदारएण, एसा एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी, एवं सवेसु जोएज्जा १। मेढत्ति, ततो तेसिं रण्णा मेढगो पेसितो, भणिया–एस पक्खमित्तेण कालेण एत्तिओ चेव पच्चप्पिणेयव्वो, न दुब्बलतरो नावि बलियतरोत्ति, ततो तेहिं रोहतो पुच्छितो, तेण विरूवेण समं बद्धावितो, जवसं दिन्नं, तं चरंतस्स न हायइ बलं, विरूवं पेच्छंतस्स भएण नं बद्धए २। कुक्कुडोत्ति, ततो तेसिं राइणा कुक्कुडो पेसितो, भणिया–एस कुक्कुडो बीयकुक्कुडेण विणा जुज्झावेयव्वो, ततो पुणोऽवि तेहिं रोहतो पुच्छितो, तेण अद्दाएण समं जुज्झावितो ३। तिलत्ति, ततो रण्णा तिला पेसिया, तिलसमं तिलं दायव्वंति, रोह(अद्दा)एण मविया, तेलंपि तेण दिन्नं, ४। वालुगत्ति, रण्णा तेसिं मणुस्सा पेसिया, तत्थ सुब्भा वालुया अत्थि, ततो वालुयावरहए पेसह, तेहिं रोहओ पुच्छिओ, तेण भणियं–पडिच्छंदे देह जेण पेसामो ५। हत्थित्ति, ततो कइवयदिवसाइक्कमे रण्णा तेसिं जुण्णु हत्थी अप्पाउओ मरिउकामो पेसिओ, भणिया य–मतो न निवेइयव्वो, दिवसदिवसिया से पउत्ती कहेयव्वा, अकहणे निग्गहो, सो मतो, ते गामेल्लया अद्दण्णा, रोहओ पुच्छिओ–तस्स वयणेण निवेदितं, जहा–सो देव ! अज्ज हत्थी न उट्ठेइ न निसीयइ न आहारेइ न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

नीहारेइ न ऊससइ न नीससति एवमादि, ततो रण्णा भणियं–किं मओ ?, ते भणंति–तुज्झे एयं भणह, न अम्हे वयामो, देवो भणइ ६। अगडत्ति, ततो पुणरवि रण्णा तेसिं मणूसा पेसिया, भणिया–जहा तुज्झं गामे अतीव आसायणिज्जोदगो कूवो अत्थि, सो पेसियव्वो, ततो रोहओ पुच्छिओ, तेण भणियं–तुज्झे भणह–एस अम्हच्चओ अगडो आरण्णो, न तीरइ सहायमंतरेण एगागी आगंतुं, ततो नागरगं कूवं पेसह जेण तेण समं जाइ, मणुस्सा तुण्हिक्का ठिया, रण्णो निवेइयं, पुच्छियं केणेयमुत्तरं कयं ?, भरहपुत्तेणं रोहगेणंति ७। वणसंडत्ति, ततो पुणरवि पुरिसा पेसिया, भणिया य–जहा गामस्स पुवदिसाभागे वणसंडो अत्थि, सो पच्छिमदिसाभागे कायव्वो, ते अद्दण्णा, रोहगो पुच्छितो, तव्वयणेण गामो वणसंडस्स पुवपासं गतो, पुरिसेहिं रण्णो निवेइयं तं–कतो पच्छिमदिसीभागे वणसंडो, कहं ?, गामो पुवपासं गतो ८। पायसोत्ति, पुणरवि रण्णा मणूसा पेसिया, अग्गिं विणा परमन्नं निप्फादेतव्वं, रोहगो पुच्छितो, तव्वयणेण करीसउम्हाए निप्फाइयं ९। ततो रण्णा एवं परिक्खिऊणं पच्छा समादिट्ठं, जहा तेण दारगेण इहागंतव्वं, परं न सुक्कपक्खे न हि किण्हपक्खे, न राईए न दिवसतो, न छायाए न उण्हे, न छत्तगेण न आगासेण, न पाएहिं न जाणेणं, न पहेण न उप्पहेणं, न ण्हाएणं न मलिणेणंति, ततो तस्स रोहगस्स निवेइयं, पच्छा सो अंगोहलिं काऊण चक्कमज्झभूमीए एडक्कमारूढो चालणीनिम्मिउत्तरंगो, अण्णे भणंति–सगडवट्टणीपएसबद्धओ संझासमयंमि अमावसाए पडिवयाए य संधीए आगतो नरिंदपासं, रण्णा पूइओ, आसन्नो सो ठिओ, जामविबुद्धेण रण्णा सद्दावितो, भणितो य–सुत्तो जग्गसि ?, भणइ–देव ! जग्गामि, किं चिंतेसि ?, भणइ–छगलियालिंडीतो कहं वट्टुलीतो भवंति ?, रण्णा चिंतियं–साहु एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

विमरिसियं, पच्छा पुच्छितो भणति–देव ! तासिं उदरमज्झे संभावतो संवट्टगवातो अत्थि तेण वट्टलीतो जायंते १० । ततो सुत्तो, बिइयजामेऽवि जामसद्देण राया विबुद्धो, रोहगो पुच्छितो–सुत्तो जग्गसि ?, भणइ–देव ! जग्गामि, किं चिंतेसि ?, भणइ–आसोट्ठपत्ताणं किं दंडो महल्लो उयाहु से सिहत्ति ?, पच्छा पुच्छितो भणइ–दोऽवि समाणि ११ । एवं तइयजामे पुच्छितो–किं चिंतेसि ?, भणइ–खाडहिलाए कित्तिया पंडुरा रेहा ? कित्तिया कालगा ?, किं महल्लं पुच्छं ? उयाहु सरीरं ?, रण्णा चिंतियं–साहु एयंपि चिंतियं, पच्छा पुच्छितो, भणइ–जत्तिया पंडरा तत्तिया कालगा, जत्तियं पुच्छं तद्दहं सरीरं १२ । चउत्थे जामे सद्दावितो वायं न देइ, ततो रण्णा कंबियाए छिक्को उट्ठितो, पुच्छितो–सुत्तो जग्गसि ?, भणइ–जग्गामि, किं करेसि ?, चिंतेमि, किं चिंतसि ?, भणइ–कतिहि जातो सि ?, रण्णा पुच्छियं–साह, तेण भणियं–पंचहिं, केण केण ?, भणइ–रण्णा १ वेसमणेण २ चंडालेण ३ रयगेण ४ विच्छुगेण ५, ततो राया उट्ठिऊण कयसरीरचिंतो मायाए घरमुवागतो, पाएसु पडितो पुच्छति–अहं कतिहिं जातो ?, माया भणइ–नियपियरेण, ततो निब्बंधे कए साहइ–राया ताव तव पिया चेव, जम्मि दिणे रिउण्हाया अहं संवुत्ता तंमि वेसमणजक्खं पूइउं गया, वेसमणे अलंकियविभूसिए दिट्ठे तस्सुवरिं मे अणुरागो जातो, ततो घरमइंतीए मए अंतराले चंडालो दिट्ठो, सोऽवि अहिलसितो, ततो रजगो, सोऽवि आसंसितो, घरमागयाए कणिक्कमतो विच्छुओ ऊसवविसेसनिमित्तं कतो, हत्थेण फंसितो, ततो तस्सवि उवरि मे अणुरागो जातो, एवं जइ अणुरागमेत्तेण ते पियरो भवंति ततो हवंति, अन्नहा राया चेव तव पिया, ततो मायं पणमिऊण सभवणमागतो, रोहगमेगंते पुच्छति–कहं जाणसि जहाऽहं पंचहिं जातो मित्ति ?, सो भणति–यथान्यायं प्रतिपालयंतो नज्जसि जहा रायपु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

त्तोत्ति, वेसमणो दाणेणं, चंडालो रोसेणं, रयगो सव्वस्सहरणेणं, जं च वीसत्थसुत्तंपि कंबियाए चुंकसि तेण नज्जसि–विंछुएण जातो सित्ति १३। तुट्ठो राया, सव्वेसिमुवरि ठवितो, भोगा य से दिण्णा, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी १ ॥ पणियत्ति दोहिं पणियगं बद्धं, एगो नागरगो भणइ–जो एयातो तव लोमसियाओ खाइ तस्स तुमं किं देसि ?, इयरो गामेल्लतो लोमसियासामी भणइ–जो नगरद्दारे मोयगो न नीइ तं देमि, सक्खिणो कया, तेण सव्वातोवि लोमसिया चक्खिय चक्खिय मुक्कातो, जितो मग्गति, इयरो न मन्नइ, तेण भणियं–लोगो एत्थ पमाणं, जइ लोगो भणइ–एयातो सव्वातो खद्धातो तो मग्गेज्जा, ततो हट्टमज्झे ओयारियातो, कयगजणो आगच्छइ, जं जं लोमसियं पेच्छइ तं तं खद्धं, ताहे सो भणइ–एयातो सव्वातो खद्धातो किं गेण्हामो ?, ताहे सो भीतो रूवगं देइ, इयरो नेच्छइ, जाव सएणवि न तूसइ, ततो तेण नागरगा जूयारा ओलग्गिया, तेहिं दिन्ना बुद्धी, ताहे एगं पूइयावणा मोयगं गहाय इंदकीले ठवेइ, इयरो सद्दावितो, ततो मोयगं प्रति भणइ–निग्गच्छ भो मोयग ! निग्गच्छ भो मोयग !, सो न निग्गच्छइ, एवं सो पडिजितो, एसा जूयाराण उप्पत्तिया बुद्धी २। रुक्खत्ति, एगत्थ पहे पहिया वच्चंति, अंतरा वणसंडे फलभरोणया अंबगा दिट्ठा, मक्कडा फलाणि घेत्तुं न देंति, ताहे पहिएहिं पहाणा खित्ता, ते मक्कडा रुसिया अंबगफलाणि खिवंति, तेसिं पहियाणं पहाणपक्खेवगाणं उप्पत्तिया बुद्धी ३। खुड्डगत्ति खुड्डगं नाम अंगुलीयकरल्लं, रायगिहे नगरे पसेणई राया, तस्स सुतो सेणितो रायलक्खणसंपन्नो, तस्स किंचिवि न देइ, मा मारेहितित्ति, अद्धितीए निग्गतो, वेण्णातडमागओ, कइवयसहाओ, खीणविहवसेट्ठिस्स वीहीए उवविट्ठो, तस्स य तप्पुण्णपच्चयं तद्दिवसं सव्वभंडाणं विक्कओ जातो, खद्धखद्धं विढत्तं, अण्णे भणंति–सेट्ठिणा रयणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

यरो सुमिणंमि घरमागतो नियकण्णं परिणेन्तगो दिट्ठो, ततोऽणेण चिंतियं–एतीए पसाएण महई विभूई भविस्सइ, पच्छा सो वीहीए उवविट्ठो, तेण तमणण्णसरिसाए आगईए दट्ठूण चिंतियं–एसो सो रयणायरो भविस्सइ, तप्पभावेण अणेण मिलक्खुहत्थातो अणग्घेज्जा रयणा पत्ता, पच्छा पुच्छितो–कस्स तुज्झे पाहुणगा ?, तेण भणियं–तुज्झंति, घरं नीतो, कालेण से धूया दिन्ना, भोगे भुंजति, कालेण य नंदाए सुमिणंमि धवलगयपासणं, आवण्णसत्ता जाया, पच्छा रण्णा से ऊढवाला पेसिया–सिग्घं एहित्ति, ततो सेणिओ नंदं आपुच्छति, भणति य–अम्हं रायगिहे नगरे पंडरकुड्डगा पसिद्धा गोवाला, जइ अम्हेहिं कज्जं सिग्घमेज्जाहित्ति, ततो गतो, देवलोगचुयगब्भाणुभावेण तीए दोहलो–वरहत्थिखंधगया अभयं सव्वजंतूण देमित्ति, सेट्ठी दव्वं गहाय रण्णो उवट्ठितो, रायाणएण गहियं, पडिपुन्नो कतो दोहलो, जातो पुत्तो, अभओ नामं कयं, पाढवयसंपन्नो पुच्छइ–मम पिया कहिंति ?, कहियं तीए, तत्थ वच्चामोत्ति भणइ, पडिवण्णं तीए, सत्थेण समं वच्चंति, रायगिहस्स बहिया ठियाणि, अभओ गवेसओ गतो, राया मंतिं मग्गइ, कूवे खुड्डगं पाडियं, जो गिण्हइ हत्थेण तडे संतो तस्स राया वित्तिं देइ, अभएण दिट्ठं, छगणेण आहयं, सुक्के पाणियं मुक्कं, तडि संतएण गहियं, रायाए समीवं गतो, पुच्छितो–को तुमं ?, तुज्झ पुत्तो, किह वा किं वा ?, सव्वं परिकहियं, तुट्ठो उस्संगे कतो, माया पविसिज्जंती मंडिउमारद्धा, अभएण वारिया, अमच्चो जातो, एसा एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ४। पडत्ति दो जणा व्हायंति, एगस्स पडो दढो एगस्स जुण्णो, जुण्णइत्तो दढं गहाय पट्ठितो, इयरो मग्गइ, न देइ, भणइ य–एसेव मे पडो, राउले ववहारो जातो, कारणिगेहिं पुच्छियं–एए पडा कीया घरवूया वा ?, दोहिवि कहियं–घरवुया, ततो महिला कत्ताविया, ततो सुत्ताणुसारेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

जो जस्स पडो सो तस्स दिन्नो, अन्ने भणंति–दोण्हंपि सीसाणि ओलिहावियाणि, जस्स उण्णामओ पडो तस्स उण्णा-तंतू विणिग्गया, जस्स सोत्तिओ तस्स सुत्ततंतू, ततो जो जस्स सो तस्स समप्पितो, कारणियाणमुप्पत्तिया बुद्धी ५। 'सरड'त्ति एगो पुरिसो सन्नं वोसिरइ, तस्स सण्णं वोसिरंतस्स सरडाणं परोप्परं भंडंताण एगो सरडो अहिट्ठाणस्स हिट्ठा बिलं पविट्ठो, पुच्छेण य छिक्को, घरं गतो, अद्धितीए दुब्बलो जातो, मम उदरे सरडो पविट्ठोत्ति, वेज्जो पुच्छितो, जइ सयं रूवगाणं देह तो पगुणीकरोमि, मन्नियं, विज्जेण घडए सरडो छूढो लक्खाए विलिंपितो, विरेयणं दिन्नं, घडगो ठाविओ, सन्ना वोसिरिया, दिट्ठो तडफडंतो, सो जातो लट्ठीभूतो, विज्जस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ बिइयं सरडोदाहरणं–भिक्-खुणा खुड्डुगो पुच्छिओ–एस किं सीसं चालेइ ?, सो भणइ–किं भिक्खू भिक्खुणी वा, खुड्डुगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ६। 'काग'त्ति, तच्चणिएण चेल्लतो पुच्छितो–अरिहंता सव्वण्णू ?, चेल्लतो भणइ– बाढं, कित्तिया इहं कागा ?, सट्ठिं कागसहस्सा जाइं बेण्णातडे परिवसंति । जइ ऊणगा पवसिया अब्भहिया पाहुणा आया ॥ १ ॥ खुड्डुगस्स उप्पत्तिया बुद्धी ॥ बिइयं कागोदाहरणं–एगो वाणियओ, तेण बाहिं गएण निही दिट्ठो, तेण चिंतियं–मम घरे महिला पहाणा, सा रहस्सं धरेइ नवेति परिक्खेमि, ततो घरमागतो भणइ–पंडरगो मे कागो अहिट्ठाणं पविट्ठो, तीए सयज्झियाण कहियं, ताहिं नियभत्ता-राणं जाव रायाए सुअं, ततो राइणा सिट्ठी हक्कारावितो, पुच्छियं, कहियं जहावट्ठियं, तुट्ठो राया, दिण्णं निहाणं, मंती कतो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी ७। 'उच्चारे'त्ति एगस्स धिज्जाइयस्स तरुणी भज्जा, गामंतरं निज्जमाणा अंतरा धुत्तेण समं संपलग्गा, ततो तेसिं दोण्हंपि कलहो जातो, धिज्जाइओ भणइ–मे भज्जा, इयरो भणइ–ममं, सा पुच्छिया, धुत्तं भत्तारं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिवज्जइ, गामे ववहारो जातो, ततो कारणिगेहिं सव्वाणि पुच्छियाणि-कल्लं को आहारो आसि ?, सव्वेहिं भणियं-तिलसकुलिया, ततो आहारविरेयणं दिन्नं, धिज्जाइयस्स सभज्जस्स तिला दिट्ठा, इयरस्स नेति, निद्धाडितो, कारणिगाण उप्पत्तिया बुद्धी ८। गयत्ति, वसंतपुरे राया मंतिं मग्गइ, पाओ लंबिओ-जो महइमहालयं गयं तोलइ तस्स सयसहस्सं देमि, ततो एगेण पुरिसेण सो हत्थी नावाए छूढो, अत्थाघे जले धरिओ, जत्तिए भारे तीसे नावाए पाणियं तत्थ रेहा कड्ढिया, ओयारिओ हत्थी, कट्ठपाहाणेण भरिया नावा ताव जाव रेहा, ततो ताणि कट्ठपाहाणाणि उत्तारेउं तोलियाणि, जियं तेण सयसहस्सं, मंती कतो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी। अण्णे भणंति 'गय'त्ति गाविमग्गो सिलाए नट्ठो, सो एगेण पोट्टपडिएण कड्ढिओ ९। घयणो नाम भंडो सव्वरहस्सितो, अन्नया राया देवीए गुणे लएइ-अतीव निरामया देवी, नो अहो वातो निस्सरइ, सो भणइ-देव ! एवं न हवइ, किह ?, जया पुप्फाणि केसरा वा ढोएइ तया जाणेज्ज-निग्गतो अहोवायोत्ति, रण्णा तहत्ति विन्नासियं, नाए हसियं, ततो देवीए पुच्छियं-किहमकंडे हसियं ?, राया न कहेइ, निब्बंधे कहियं, देवीए भंडो निब्विसओ आणत्तो, सो उवाहणाणं भारेण उवट्ठितो, देवीए पुच्छितो-किं एत्तियातो उवाहणातो ?, सो भणइ-देवि ! एयाहिं जावंति देसंतराणि गंतुं तरिस्सामि तत्थ सव्वत्थ देवीगुणा पगासियव्वा, ततो उड्डाहभीयाए रुद्धो, घयणस्स उप्पत्तिया बुद्धी १०। गोलत्ति एगस्स दारगस्स जतुगोलगो नक्कं पविट्ठो, ततो एगेण सलागाए तावित्ता कड्ढितो, कड्ढंतस्स उप्पत्तिया बुद्धी ११। 'खंभ' त्ति, एगो राया मंतिं गवेसेइ, पाओ लंबितो-खंभो तलागमज्झे, जो तडे संतओ बंधइ तस्स सयसहस्सं देमि, ततो एगेण तडे खीलं बंधिऊण वेढेण बद्धो, जियं सयसहस्सं, मंती कतो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

१२। 'खुड्डगे'त्ति एगा परिव्वाइया पइण्णापुव्वगं भणइ–जो जं करेइ तं मए कायव्वं, रण्णा पडहगो दवावितो, खुड्डगो भिक्खापविट्ठो सुणेइ, वारितो पडहतो, गओ राउलं, दिट्ठो तीए, भणइ–कतो गिलामि ?, तेण सागारियं दाइऊण काइयाए पउमं लिहियं, सा न तरइ, जिया, खुड्डगस्स उप्पत्तिया बुद्धी १३। 'मग्गित्थि'त्ति, एगो भज्जं गहाय गामंतरं वच्चइ, सा सरीरचिंताए उत्तिन्ना, से रूवेण वाणमंतरी विलग्गा, इयरी पच्छा आगया, रडइ, ततो गामे ववहारो जातो, एगा भणइ–मम भत्ता, एसा कावि वाणमंतरी, इयरीवि एवं भणइ, ततो कारणिगेहिं चिंतिऊण पुरिसो दूरे ठवितो, जो पढमं हत्थेण गिण्हइ तीसे भत्ता, वाणमंतरीए हत्थो दूरेण पसारिओ, नायं वाणमंतरी एसा, निद्धाडिया, कारणिगाण उप्पत्तिया बुद्धी १४। बिइयं उदाहरणं–मग्गे मूलदेवो कंडरीतो य वच्चंति, इतो य–एगो पुरिसो समहिलो दिट्ठो, कंडरीतो तीसे रूवेण मुच्छितो, मूलदेवेण भणियं–अहं ते घडेमि, ततो मूलदेवो तं एगंमि वणनिगुंजे ठविऊण पंथे आगतो अच्छइ, जाव सो पुरिसो समहिलो आगतो, मूलदेवेण भणियं–एत्थ मम महिला पसवइ, एयं महिलं विसज्जेह, विसज्जिया, गया, सा तेण समं अच्छिऊण आगया, आगंतूण य तत्तो पडयं घेत्तूण मूलदेवस्स धुत्ती भणइ हसंती–पियं खु णे दारओ जातो, दोण्हवि उप्पत्तिया बुद्धी १४। 'पइ'त्ति, दोण्हं भाउगाणं एगा भज्जा, लोगस्स महल्लं कोट्टं–दोण्हवि समा, परंपरएण रण्णा सुयं, परं विम्हयं गतो, अमच्चो भणइ–कतो एवं होहित्ति ?, अवस्सं विसेसो अत्थि, एतेण तीसे महिलाए लेहो दिन्नो, जहा–एएहिं दोहिवि गामं गंतव्वं, एगो पुव्वेण एगो अवरेण, तद्दिवसं चेव आगंतव्वं, ताए महिलाए एगो पुव्वेणं पेसितो, एगो अवरेण, जो वेसो तस्स पुव्वेण, एन्तस्सवि जंतस्सवि निडाले सूरो, एवं नायं, असद्दहंतेसु पुणोऽवि पट्टविऊण समगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसा पेसिया भणंति–दढं अपडुगा, एसो मंदसंघयणोत्ति तं चेव पवन्ना, ततो उवगयं–अत्थि विसेसो, मंतिस्स उप्पत्तिया बुद्धी १५। 'पुत्त'त्ति, एगो वाणियगो दोहिं भज्जाहिं समं दूरे अन्नरज्जं गतो, तस्स एगाए भज्जाए पुत्तो, सो विसेसं न याणइ, एगा भणइ–मम पुत्तो, बितीया भणइ–पुत्तो मम, रायउले ववहारो, न छिज्जइ, अमच्चो भणइ–दवं विरंचिऊण दारगं दो भागे करेह करकएणं, माया भणइ–एईए चेव पुत्तो, मा मारिज्जउ, ततो मंतिणा नायं–एईए चेव पुत्तो, जा तद्दुक्खेण गज्जइ, तीसे चेव दिन्नो, मंतिस्स उप्पत्तिया बुद्धी १६। 'मधुसित्थ'त्ति, मधुमिश्रं सिक्थं-मदनं मधुसिक्थं, तत्र उदाहरणम्–एगा कोलगिणी उब्भामिया, तीए जारेण समं निहुवणे ठियाए उवरिं भामरं दिट्ठं, पच्छा भत्तारो सित्थगकयं करेंतो वारितो, मा किणिहि, अहं ते भामरं दंसेमि, गया दोवि, जालं न दीसइ, ततो धुत्तीए तेणेव विहिणा ठाइऊण दरिसियं, नाया भत्तारेण जहा एसा उब्भामियत्ति, कहमन्नहा एयमेवं भवइत्ति, तस्स उप्पत्तिया बुद्धी १७। 'मुद्दियत्ति', पुरोहितो निक्खेवए घेत्तूण देइ, लोगे साहुवादो–अहो सच्चवादी पुरोहितो निल्लोभो य, अन्नया दमगेण ठवियं पडिआगयस्स न देइ, पिसातो जातो, अमच्चो वीहीए जाइ, भणइ–देह पुरोहिया मम तं सहस्सं, मंतिस्स किवा जाया, रण्णो कहियं, राइणा पुरोहितो भणितो–देहि एयस्स सहस्सं, भणइ–न गेण्हामि, रण्णा दमगो सवं सप्पच्चयं दिवसमुहुत्तट्ठवणयासमीववत्तिमाइयं पुच्छितो, अन्नया जूयं रमइ रायाए समगं पुरोहिते परोप्परं मुद्दासंचरणं, रन्ना पुरोहियस्स नाममुद्दा गहेऊण अलक्खं अण्णस्स मणुस्सस्स हत्थे दिन्ना, अमुगंमि काले साहस्सिगो नउलो दमगेण ठवितो तं देहि, इमं अभिण्णाणं, दिन्नो, आणीतो, अण्णेसिं नउलगाण मज्झे कतो, सद्दावितो दमगो, तेण पच्चभिण्णातो नउलो, पुरोहिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्स जिब्भा छिण्णा, रण्णो उप्पत्तिया बुद्धी १८। 'अंके'त्ति, एगो पुरोहितो निक्खेवे घेत्तूण सवेसिं अप्पप्पणो समप्पेइ, उच्छलितो साहुवादो, अन्नया एगेण दमगेण निमि(सि)त्तं, ततो तेण पुरोहिएण सो नउलतो लंछिऊण उस्सिवित्ता कूडरूवगाण भरितो, तहेव सिवितो, आगयस्स समप्पितो, सा मुद्दा उग्घाडिया, कूडरूवगा दिट्ठा, राउले ववहारो जातो, कारणिगेहिं दमगो पुच्छितो–कित्तियं आसि ?, सहस्सं, गणिऊण भरिओ तहा ताडीओ जहा न तीरइ सिव्वेउं, ततो रण्णो निवेइयं, रण्णा पुरोहितो दंडिओ, कारणियाण उप्पत्तिया बुद्धी १९। 'पणयत्ति', तहेव एगेण दमगेण पुरोहियस्स पणा छोढूण नउलतो निक्खित्तो, आगयस्स कूडपणे छोढूण दिण्णा, दिट्ठा, पणा, राउले ववहारो जातो, कारणिगेहिं पुच्छियं–को कालो आसि ?, दमगेण भणियं–अमुगो, अहुणत्तणा पणा, सो चिराणतो कालो, तम्हा कूडमेयं, ततो रण्णो निवेदितं, दंडितो पुरोहितो, कारणिगाण उप्पत्तिया बुद्धी २०। 'भिक्खु'त्ति, एगेण दमगेण भिक्खुसगासे निक्खेवगो मुक्को, सो आगयस्स तं निक्खेवं न देइ, तेण जूयारा ओलग्गिया, तेहिं पुच्छिएण सब्भावो कहितो, ततो ते रत्तपडवेसेण भिक्खुसगासं गया, सुवण्णस्स खोडीतो गहाय, अम्हे वच्चामो चिइयवंदगा, एयातो सुवण्णखोडीतो अच्छंतु, एयंमि अंतरे सो दमगो पुवसंकेतितो समागतो, मग्गियं, ततो भिक्खुगेणं चिंतियं–जइ न देमि तो एएसिमप्पच्चतो होहिइत्ति लोलयाए दिन्नं, जूआरेहिं भणियं–अन्नेऽवि भिक्खू एंतगा सुवंति तो समुदाएण निक्खिविस्सामत्ति भणिऊण निग्गया, जूयकाराण उप्पत्तिया बुद्धी २१। 'चेडगनिहाणे' त्ति, दो मित्ता, तेहिं निहाणगं दिट्ठं, एगेण भणियं–कले सुनक्खत्ते गिण्हिस्सामो, ततो रत्तिं हरिऊण इंगाला छूढा, बीयदिवसे दोवि समगं गया, इंगाले पेच्छंति, सो धुत्तो भणइ–अहो ! मंदपुन्ना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

अम्हे, किह इंगाला जाया ?, तेण बिइएण नायं, हिययं न दंसेइ, ततो सो धुत्तपडिधुत्तिं करेमाणो तस्स नियघरे पडिमं करित्ता दो मक्कडए लएइ, ततो तीए पडिमाए ओच्छंगे बाहूसु उवरिं भत्तं निवेसेइ, ते छुहाइया तं पडिमं सवतो चडुंति, अण्णया भोयणं सज्जियं, दारगा निमंतिया, घरं नीया, संगोविया य, न दरिसेइ, भणइ य-मक्कडा जाया, ततो पुत्तदुक्खसंतत्तो तस्स घरमागतो, लेप्पगपडिमाठाणे ठावितो, मक्कडा मुक्का, किलकिलंता विलग्गा, सवतो फुसंति, भणिओ-एए तव पुत्ता, सो भणइ-कहं दारगा मक्कडा भवंति ?, इयरो भणइ-जहा दीणारा इंगाला जाया तहा दारगावि मक्कडा, एवं नाए दिन्नो भागो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी २२। शिक्षाशास्त्रं-धनुर्वेदः, तत्रोदाहरणम्-एगो कुलपुत्तगो धणुर्वेदकुसलो, सो हिंडतो एगत्थ ईसरपुत्ते सिक्खावेइ, दवं विढत्तं, तेसिं पिइनिस्सिया चिंतेति-बहुगं दवं एयस्स दिन्नं, जइया जाहिइ तइया मारिज्जिहिति, गेहातो य नीसरणं केणवि उवाएणं न देंति, तेण नायं, ततो दवं सन्नायगाणं संचारियं, जहा अहं रत्तिं छाणपिंडगे नदीए छुहिस्सामि ते लएज्जाह, तेण छाणगोलगा दवेण समं संवलिया, एसा अम्हं विहित्ति पवतिहीसु तेहिं दारगेहिं समं नदीए छुहइ, एवं निवाहेऊण नट्ठो, एयस्स उप्पत्तिया बुद्धी २३॥ अत्थसत्थे उदाहरणं-एगो वाणियगो दोहिं भज्जाहिं समं देसंतरं गतो, तत्थ मतो, तस्स एगाए भज्जाए पुत्तो, सो विसेसं न याणइ, तासिं परोप्परं भंडणं, एगा भणइ-मम पुत्तो, बिइया भणइ-मम, रायउले ववहारो जातो, नो छिज्जइ, ततो भगवतो सुमइनाहस्स गब्भत्थस्स माऊए मंगलादेवीए नायं, ततो सद्दावियातो, भणियातो य-मम पुत्तो जाहिति सो एयस्स असोगवरपायवस्स हेट्ठा ठिओ ववहारं छिंदिहिति, ताव दोवि अविसेसेण खाह पिवहत्ति, जीसे न पुत्तो सा चिंतेइ-एत्तिगो ताव कालो लद्धो, पच्छा न याणामो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं भविस्सइत्ति पडिस्सुयं, देवीए नाया–न एसा पुत्तमायत्ति, देवीए उप्पत्तिया बुद्धी २४॥ 'इच्छाए महंति', एगाए भत्तारो मतो, वड्ढिप्पउत्तं न लहइ, तीए पइमित्तो भणितो–उग्गमेहि, सो भणइ–जइ मम विभागं देसि, तीए भणियं–जं इच्छसि तं मम देज्जाहि, तेण उग्गमियं, तीसे थोवयं देइ, सा नेच्छइ, ववहारो राउले जाओ, आणावियं दव्वं, दो पुंजा कया, कयरं तुमं इच्छसि ?, भणइ–महंतीं रासिं, ततो कारणिगेहिं भणियं–एतीए इमं वुत्तं–जं इच्छसि तं ममं देज्जासि, ता अमुं भागं एतीसे चेव देह, दवाविंतो, कारणिगाण उप्पत्तिया बुद्धी २५ ॥ सयसहस्से उदाहरणम्–एगो परिव्वायतो, तस्स सयसहस्सो खोरी, सो भणइ–जो मम अपुव्वं सुणावेइ तस्स एयं देमि, तत्थ सिद्धपुत्तेण सुयं, तेण भण्णइ–तुज्झ पिया मह पिउणो धारेइ अणूणगं सयसहस्सं । जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देहि ॥ १ ॥ जितो, सिद्धत्थपुत्तस्स उप्पत्तिया बुद्धी २६ ॥ एष गाथात्रयभावार्थः, उक्ता सोदाहरणोत्पत्तिकी बुद्धिः । अधुना वैनयिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

भरनित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहिअपेयाला । उभयलोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ९४३ ॥

इहातिगुरुकार्यं दुर्निवहत्वाद् भर इव भरः, तन्निस्तरणे समर्था भरनिस्तरणसमर्थाः, त्रयो वर्गास्त्रिवर्गं, लोकरूढ्या धर्मार्थकामाः सूत्रं–तदर्जनपरोपायप्रतिपादननिबन्धनं अर्थः–तदभिधायकं शास्त्रं, सूत्रं च अर्थश्च सूत्रार्थौ, त्रिवर्गस्य सूत्रार्थौ त्रिवर्गसूत्रार्थौ तयोर्गृहीतं पेयालं–प्रमाणं सारो यया सा त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला, आह–नन्वध्ययने अश्रुतनिश्रिताभिनिबोधिकाधिकारे औत्पत्तिक्यादिबुद्धिचतुष्टयमुपन्यस्तं, त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वे च सत्यश्रुतनिश्रितत्वं विरुध्यते, नहि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतसारत्वसम्भवः, उच्यते, इह प्रायोवृत्तिमङ्गीकृत्य अश्रुतनिश्रितत्वमुक्तं, ततः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वल्पश्रुतनिश्रितभावेऽप्यदोष इति, उभयलोकफलवती-ऐहिकामुष्मिकफलवती, विनयसमुत्था-विनयप्रादुर्भूता भवति बुद्धिः ॥ अस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थमुद्राहरणै स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

निमित्त १ अत्थसत्थे २ य लेहे ३ गणिये ४ य कूव ५ अस्से ६ य ।
गद्दह ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १० गणिया य रहिए य ११ ॥ ९४४ ॥
सीया साडी दीहं च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स १२ ।
निव्वोदए १३ य गोणे घोडगपडणं च रुक्खातो १४ ॥ ९४५ ॥

गाथाद्वयस्याप्यर्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि चामूनि, तत्र निमित्ते इदं कथानकम्-एगस्स सिद्धपुत्तगस्स दो सीसगा, ते निमित्तं सिक्खाविया, अन्नया तणकट्ठस्स कए गामंतरं वच्चंति, अंतराले हत्थिपया दिट्ठा, एगो भणइ-कस्सेमे पया ?, बितिओ भणइ-हत्थिणियाए, कहं ?, काइयाए, अन्नत्थ खलु भो हत्थिणियाए काइया, अन्नत्थ हत्थिस्स, सा य हत्थिणी काणा, कहं ?, एगपासे जतो तणाई खइया दीसंति, न बीयपासे, तहा तीए चेव काइयाए नायं जहा इत्थी पुरिसो य विलग्गाणि गच्छंति, सा य इत्थी गुविणी, कहं ?, जतो हत्थानि थंभेत्ता उट्ठिया, एयंपि नज्जइ, पडिबिंबेण दारगो से भविस्सइ, जतो दक्खिणो पातो गुरुओ, तहा तीए इत्थीए रत्ता पोत्ता, जेण दसिया रत्ता रुक्खे लग्गा दीसइ, ततो ते दोऽवि नदीतीरं पत्ता, एत्थंतरे एगाए वुड्ढाए पुत्तो पवसितो, सा तस्सागमं पुच्छिउमागया, तीसे य पुच्छंतीए चेव घडगो भिन्नो, तत्थेगो भणइ-मतो, जतो निमित्तसत्थे भणियं एयं-'तज्जाएण य तज्जाय'मिति, बिइतो भणइ-मा एवं वयाहि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाहि वुड्ढे ! सो घरे आगतो, सा गया, दिट्ठो पुव्वागतो, जुयलगरूवगे गहाय सक्कारिओ, ततो दोऽवि कयकज्जा गुरुसमीवमागया, अविसंवादिनिमित्तेण गुरू पणमितो, इयरो न पणमेइ, गुरुणा पुच्छिओ–कीस न पणमसि ?, सो भणइ–मम निमित्तसत्थसब्भावो तुमे न कहितो, ततो जहाभूयं परिकहियं, मए परिणामियं पसिणकाले घडरस विवत्ती ततो मरणं कहियं, गुरुणा विइतो पुच्छितो, सो भणइ–मए एवं परिणामियं–एसो घडो भूमीए उट्ठितो भूमीए मिलितो, एवं सोऽवि दारगो माऊए मिलितो, जतो भणियं–'तज्जाएण य तज्जाय'मित्यादि, गुरुणा भणितो–को मम दोसो ?, न तुमं सम्मं परिणामेसि, एअस्स वेणइगी बुद्धी १ ॥ अत्थेसत्थे पच्चंतरायाण वित्तासणे कप्पओ दिट्ठंतो सो उवरि भण्णिहिइ २ । लेहे अट्ठारसलिविजाणगे, अण्णे भणंति–गणिए जहा विसमगणितजाणगो, अण्णे भणंति–कुमारा वट्टेहिं रमंता अक्खराणि सिक्खावियाणि ३ । गणिएवि, एसावि तस्स सिक्खावयस्स वेणइगी बुद्धि ४ ॥ कूवे, खायजाणगेण भणियं–जहा एदूरे पाणियंति, तेहिं खयं, तं वोलीणं, सिला उम्मग्गा, तस्स कहियं, तेण भणियं–पासे आहणह, आहया, थासगसद्देण जलमुद्धाइयं, एयस्स वेणइगी बुद्धी ५ । आसे, आसवाणियगा बारवतिं गया, सबे कुमारा थुल्ले वड्डे य आसे गेण्हंति, वासुदेवेण दुब्बलओ लक्खणजुत्तो जो सो गहितो कज्जनिवाही अणेगआसावहो य जातो, वासुदेवस्स वेणइगी ६ । गद्दभे एगो राया, सो तरुणप्पिओ, थेरे नियदरिसावं वारिता, अन्नया विजयजत्ताए गतो, अडवीए पविट्ठो, तिसाए बाहितो, खंधावारो, राया अद्दन्नो, तरुणा जंकिंपि जंपंति, एगेण भणियं–देव ! जइ परमिथाणिं थेरबुद्धीए जीवामो, थेरो मग्गितो, न लब्भइ, पडहतो घोसावितो, एगेण पितिभत्तेण पिया थेरो आणीओ आसि, तेण पडहतो वारितो, राया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमुवट्ठितो, जइवि तुमए थेरो निवारितो तहवि मए पितिभत्तेण नियपिया आणीतो सो अच्छइ, रण्णा सद्दावितो, पुच्छितो य–कहं पाणियं भविस्सइ?, तेण कहियं–देव! गद्दभा–चरंता जं भूमिं ओरिंसंघंति, तत्थ आसण्णं सिरापाणियं, तहेव विन्नासियं, खायं, लद्धं पाणियं, थेरस्स वेणइगी बुद्धी ७। लक्खणे पारसविसए आसरक्खगो, तस्स आससामिस्स धूयाए समं संसग्गी, आगतो मुल्लकालो, तेण सा आससामिस्स धूया पुट्ठा–कं घोडयं गेण्हामि?, तीए भणियं–वीसत्थं ठियाण घोडाणमंतराले कूयडं पाहाणाण भरेऊण रुक्खातो मुयाहि, तत्थ जो खडखडसद्देण न उत्तसइ तं लएहि, पडहयं च वाएहि, निब्भरपसुत्ता य खक्खरएणं पडिबुज्झावेहि य, तत्थवि जो न उत्तसइ तं पडिगेण्हाहि, तेण परिक्खिया, लद्धा दो पहाणा अस्सा, ततो वेयणकाले सो भणइ–मम दो देहि, अमुगं अमुगं च, सो भणइ–सव्वं गेण्हाहि एए मोत्तूण, किं तव एएहिं?, सो नेच्छइ, भज्जाए कहियं–धीया दिज्जउ, भज्जा से नेच्छइ, ततो सो तीसे लक्खणजुत्तेण कुडुंबं परिवड्ढइत्ति दारगं दिट्ठंतीकरेइ, एगो वड्ढई, सो माउलगघरं गतो, तेण धूया दिन्ना, कम्मं न करेइ, भज्जाए चोइओ, दिवसे दिवसे अडवीओ रित्तओ एइ, छट्ठे मासे लद्धो, चडुतो घडितो, भज्जा पेसिया, सहस्सेण दिज्जाहि, एयस्स एस गुणो–एएण दिज्जमाणं न निट्ठाइ, एगेण सेट्ठिणा विन्नासितो, ततो सुवण्णाण डलं भरिऊण तेणेव चडुएण सयसहस्सा दिन्ना, सुवण्णडलं तहेव भरियं चिट्ठइ, ततो महया सक्कारेण सक्कारेऊण विसज्जिया, एवं दिट्ठंते कहिए भज्जाए पडिवन्नं, धूया दिन्ना, आससामिस्स वेणइगी बुद्धी ८॥ (ग्रंथाग्रं० २१०००) गंठीति उदाहरणं–पाडलिपुत्ते नयरे मुरुंडो राया, पालित्ता आयरिया, तत्थ पररईहिं जाणगेहिं इमाणि विसज्जियाणि–सुत्तं मोणियं छिण्णा लट्ठी समो समुग्गतोत्ति, सुत्तस्स अंतो लहे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यवो, लट्ठीए आदिभागो, समुग्गकस्स बारमिति, केणइ ताणि न नायंणि, रन्ना पालित्ता आयरिया सद्दाविया, तुज्झे जाणह भयवंति ?, भणंति–बाढं जाणामि, सुत्तं उण्होदए छूढं, मयणं विरायं, दिट्ठाणि अग्गिलगाणि, दंडो पाणिए छूढो, मूलं गुरुगं, समुग्गको जउणा धोलितो, उण्होदए कड्ढितो उग्घाडितो, ततो पुणोऽवि पालित्तायरिएहिं दोद्धियं सगलगं राइलेऊण तत्थ रयणाणि छूढाणि, ततो तेणगसिब्बिणीए सीवेऊण विसज्जियं, अभिंदंता फोडेह, न सक्कियं, पालित्तायरियाणं वेण-इगी बुद्धी ९ ॥ 'अगए' इति, एगो राया, तस्स नगरं गहेउं परबलं एइ, रण्णा पाणियाणि विणासियव्वाणित्ति विसकरो पाडितो, पुंजा विसस्स कता, विज्जो एगो (थोवेण विसेण उवट्ठिओ) राया थोवं दट्ठूण रुट्ठो, वेज्जो भणइ–सयसहस्सवेधी एयं विसं, नो थोवं, राया भणइ–कहं ?, ततो खीणाऊ हत्थी आणावितो, पुच्छवालो उप्पाडितो, तेण चेव रोमकूवेण विसं दिन्नं, विवन्नं सरीरं करेंतं गच्छंतं च दीसइ, एस सव्वो विसं, जोवि एयं खाइ सोवि विसं, एवं सयसहस्सवेही, राया भणइ–अत्थि निवारणविही, बाढं अत्थि, तहेव अगदो दिन्नो, तं समेंतो जाइ, वेज्जस्स वेणइगी १० ॥ रहियो गणिया य एक्कं उदाहरणं, पाडलिपुत्ते नयरे दो गणियातो–कोसा उवकोसा य, कोसाए समं थूलभद्दसामी अच्छितो आसि, पव्वइतो, जाव वरिसारत्तो तत्थेव कतो, ततो साविया, पच्चक्खाइ अबंभस्स अन्नत्थ रायनिओएणं, रहिएण राया आराहितो, सा कोसा तस्स दिन्ना, सा य थूलभद्दसामिणो अभिक्खणं गुणग्गहं करेइ, तं न तहा उवचरइ, सो तीए अप्पणो विन्नाणं दरिसेउ-कामो असोगवणियं नेइ, भूमीगएणं अंबलुंबी कंडेण विंधित्ता कंडपोंखे अन्नोन्नं कंडं लाएंतेण हत्थब्भासं कंडसंतइं (पविय) अंबलुंबी अद्धचंदेण छिन्ना गहिया य, तहवि न तूसति, भणइ–किं सिक्खियस्स दुक्करं ?, सा भणइ–पेच्छ ममंति, सिद्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्थरासिंमि सूईण अग्गयंमि कणियारकुसुमेसु पोइएसु नच्चिया, रहितो सुलसो आउट्टो पर्ससति, सा भणइ–न दुक्करं तोडिय अंबलुंबिया, न दुक्करं नच्चिय सिक्खियाए । तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो ॥ १ ॥ तो तस्स थूलभद्दसामिस्स संतगो वुत्तंतो सिट्ठो, पच्छा उवसंतो रहितो, दोण्हवि वेणइगी बुद्धी ११ ॥ सीया साडी दीहं च तणं कोंचस्स अवसव्वयं एक्कं चेव उदाहरणं–एगो राया, पुत्ता आयरिएण सिक्खविया, दवलोभी सो राया, ततो तं आयरियं मारेउं इच्छति, ते दारगा चिंतेंति–एएण अम्हं विज्जा दिन्ना, उवाएण नित्थारेमो, ततो जाहे सो ण्हाणसाडियं मग्गइ, ते भणंति–अहो सीया साडी, तो बारसंमुहं तणं ठवेंति, भणंति य-अहो दीहं तणं, पुव्वं कोंचएण पयाहिणीकिज्जइ, तद्दिवसं अपयाहिणीकतो, ततो आयरियस्स परिगयं–जहा विरत्ताणि, सीया साडीति ममं राया मसाणीकाउं मग्गइ, दीहं तणंति कुमारेहिं मम भत्तिं करेंतेहिं दीहो पंथो दरिसितो, दोण्हवि वेणइगी बुद्धी १२ ॥ 'निब्बोदए' उदाहरणं–एगा वाणियगभज्जा, सा चिरपउत्थे पइंमि दासीए सब्भावं कहेइ–पाहुणगं आणेहि, तीए पाहुणगो आणीतो, नखकम्मं से कारावियं, रत्तिं वासहरे पवेसिओ, जेमिता य, ततो अद्धरत्ते तिसाइतो पाणियं मग्गइ, मेघो य निब्भरं वरिसइ, ततो निव्वोदयं पाइतो, तं च तयाविससप्पसंफरिसणतो विसीभूयंति, ततो दासीए देवउलियाए उज्झितो, दिट्ठो लोगेणं, आगया रायपुरिसा, दिट्ठं पच्चग्गं नहकम्मं तं, तो ण्हाविया पुच्छिया (केण) कम्मं कारियं ?, कहियं–अमुगीए दासीए, सा पहया, तीए वाणिगिणी कहिया, सा पुच्छिया सब्भावं साहइ, निव्वं पलोइयं, दिट्ठो तयाविसो घोणसो, नयरमयहरगाणं वेणइगी बुद्धी १३ ॥ 'गोणे घोडगपडणं च रुक्खातो' इति एक्कं उदाहरणं–एगो अकयपुन्नो जं जं करेइ तं से

वैनयिक्याः उदाहरणानि ॥ ५२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवज्जइ, मित्तसगासातो जाइएहिं बइल्लेहिं हलं वाहइ, वियाले आणीय वाडए छूढा, सो य किल मित्तो जेमेइ, ततो लज्जाए तस्स पासे न गतो, वइल्ला तेणवि दिट्ठा, ते वाडातो निप्फिडिया, चोरेहिं हरिया, ततो मित्तेण सो गहितो, मम बइल्ले देहि, रायकुलं निज्जइ, पडिपंथेण पुरिसो घोडएण संमुहो एइ, सो घोडएण पाडितो, घोडगो पलातो, तेण भणितो-आहणत्ति, तेण पुरिसेण मम्मे आहतो, मतो, तेणवि सो गाहितो, मम घोडयं देहि, एत्थंतरे गच्छंताण वियालो जातो, नगरबाहिरियाए वुच्छा, तत्थ नडा सुत्ता, इमेऽवि, सो चिंतेइ–जावज्जीवं बंधणे जीविस्सामि तो वरं मे अप्पा उब्बद्धो, ताहे सुत्तेसु तेसु दंडखंडेण तंमि वडरुक्खे अप्पाणं उक्कलंबेइ, तं दंडिखंडं दुब्बलंति तुट्टं, पडिएण लोमंथियमयहरतो मारितो, तेहिवि गहितो, करणं नीतो, सबेहिं कहियं जहा वुत्तं, सो पुच्छितो भणइ–आमं, कुमारामच्चस्स तस्सुवरि अणुकंपा जाया, बतो सो भणइ–एसो बलद्दे देउ, तुज्झ पुण अच्छीणि उक्खणंतु, तहा एसो आसं देउ, तुज्झ जीहा उप्पाडिज्जउ, तहा एसो हेट्ठा सुवउ, तुज्झं एगो उब्बज्झउ, एवं सबे निप्पडिभा मंतिणा काउं सो मुक्को, मंतिस्स वेणइगी बुद्धी १४। उक्ता सोदाहरणा वैनयिकी, सम्प्रति कर्मजा या बुद्धिर्लक्षणं तस्याः प्रतिपादयति—

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला। साहुक्कारफलवई कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ ९४६ ॥

उपयोगः–विवक्षितकर्म्मणि मनसोऽभिनिवेशः सारः–तस्य कर्म्मणः परमार्थः उपयोगेन दृष्टः सारो यया सा उपयोग-दृष्टसारा, अभिनिवेशोपलब्धकर्म्मपरमार्था इत्यर्थः, तथा कर्म्मणि प्रसङ्गः–अभ्यासः परिघोलनं–विचारः कर्म्मप्रसंगपरि-घोलने ताभ्यां विशाला–विस्तीर्णा कर्म्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला, अभ्यासविचाराभ्यां विस्तीर्णेति भावः, साधु कृतं–सुष्ठु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतमिति विद्वद्भ्यः प्रशंसा साधुकारः तेन फलवती साधुकारफलवती, कर्म्मसमुत्था–कर्मोद्भवा भवतीति बुद्धिः ॥ अस्या अपि विनेयजनानुग्रहायोदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयति—

हेरन्निए १ करिसए २ कोलिअ ३ डोवे ४ अ मुत्ति ५ घय ६ पवए ७ ।
उन्नाग ८ वड्ढई ९ पूइए १० य घड ११ चित्तकारे १२ य ॥ ९४७ ॥

हैरिण्यको अभीक्ष्णयोगेनान्धकारेऽपि हस्तामर्षेण रूपकं शुद्धं कूटं वा जानाति, ततो हैरण्यिकेऽतिशयवति कर्म्मजा बुद्धिः १, एवं सर्वत्र योजनीयं, कर्षकोऽभीक्ष्णयोगेन फलनिष्पत्तिं जानाति, एत्थ उदाहरणं–एगेण चोरेण खत्तं पउमागारं खयं, पभाए सो आगतो जणवायं निसामेइ, तत्थ एगो करिसगो आगतो, सो भणइ–किं सिक्खियस्स दुक्करं ?, चोरेण सुयं, अमरिसं गतो, पुच्छितो य–को एसो ?, ततो अन्नया खेत्ते ठियं जाणिऊण तस्स सगासं गतो, छुरियं अंछिऊण मारेमि; तेण भणियं–कीस ?, तो भणइ–तया अहं निंदितो–किं सिक्खियस्स दुक्करंति ?, तेण भणियं–सच्चमेवं, पेच्छ मे विण्णाणं, ततो तेण पडयं पत्थरेत्ता वीहीणं मुट्ठी भरिया, किं परम्मुहा पडंतु उरंमुहा पासिल्ला वा ?, जहा भणियं तह कयं, तुट्ठो चोरो उवसंतो य २ । तथा कोलिको मुष्टिगृहीतैस्तन्तुभिर्जानाति, यथा एतावद्भिः कण्डकैरूयते इति ३ । डोएत्ति वर्द्धकिर्जानाति यथा दव्यामेतावन्मात्रं मातीति ४ । मौक्तिकं प्रोति यत्रा(तयत्रा)काशे तथा कथंचनाप्युत्क्षिपति यथा सूकरवाले पतति ५ । घएत्ति, घृतविक्रयी यदि रोचते ततः कुण्डिकानाले प्रक्षिपति ६ । पवएत्ति प्लवकः कोऽपि तथा शिक्षामधिगतो यथा आकाशेऽपि करणानि करोति ७ । तुण्णागत्ति सूच्याजीवाः, पूर्वं स्थूलं सीवनं कृतवान्, पश्चादभ्यासतस्तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथंचनापि सीवितं यथा सर्वथा न ज्ञायते, यथा स्वामिसत्कं देवदूष्यं धिग्जातीयेन कारितं ८ । वड्ढइत्ति वर्द्धकिरभ्यासतः कोऽप्यमाप्यापि देवकुलरथादीनां प्रमाणं जानाति ९। पूइयत्ति आपूपिकः कणिकादिकममाप्यापि पूपपरिमाणं जानाति, यथा एतावत्कणिकादेरेतावत्यः पूपा भविष्यन्ति, सर्वा अपि वा समाः करोति १० । 'घडे' त्ति घटकारः प्रथमत एतावत्प्रमाणां मृत्तिकां गृह्णाति यावन्मात्रया विवक्षितं घटादिकं निष्पद्यते इति ११। चित्तकारेत्ति चित्रकारो अमाप्यापि रेखादिकं प्रमाणयुक्तं चित्रं करोति, तावन्मात्रं वा वर्णकं गृह्णाति यावन्मात्रेण समाप्यते इति २१ । सर्वेषामेतेषां कर्म्मजा बुद्धिः । उक्ता कर्म्मजा बुद्धिः, सम्प्रति पारिणामिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

अणुमाण-हेउ-दिट्ठंतसाहिआ वयविवागपरिणामा । हिअनिस्सेयसफलवई बुद्धी परिणामिआ नाम ॥ ९४८ ॥

अनुमानहेतुदृष्टान्तैः साध्यमर्थं साधयतीति अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका, इह लिङ्गज्ञानमनुमानं, स्वार्थमित्यर्थः, तत्प्रतिपादकं वचो हेतुः, परार्थमनुमानमित्यर्थः, अथवा ज्ञापकमनुमानं, कारको हेतुः, दृष्टमर्थमंतं नयतीति दृष्टान्तः, ननु अनुमानग्रहणादेव दृष्टान्तो गत इति किमर्थमस्योपन्यासः ?, तदसम्यक्, अनुमानस्य तत्त्वत एकलक्षणत्वात्, उक्तं च-'अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम् ? । नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥ १ ॥ इत्यादि साध्योपमाभूतस्तु दृष्टान्तः, उक्तं च-"यः साध्यस्योपमाभूतः स दृष्टान्त इति कथ्यते" इति, वयोविपाकपरिणामा इति कालकृतो देहावस्थाविशेषो वयः तद्विपाकेन परिणामः-पुष्टता यस्याः सा वयोविपाकपरिणामा, तथा हितम्-अभ्युदयः तत्का-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

रणं वा निःश्रेयसं–मोक्षः तन्निबन्धनं च हितनिःश्रेयसफलवती बुद्धिः पारिणामिकी नाम ॥ अस्या अपि शिष्यगणहितायोदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयति—

अभए १ सेट्ठि २ कुमारे ३ देवी ४ उदितोदिए हवइ राया ५।
साहू अ नंदिसेणो ६ धणदत्ते ७ सावग ८ अमच्चे ९ ॥ ९४९ ॥
खमए १० अमच्चपुत्तो ११ चाणक्के १२ चेव थूलभद्दे १३ च।
नासिक्कसुंदरी नंदे १४ वइरे १५ परिणामिआ बुद्धी ॥ ९५० ॥
चलणे य (तह) १६ आमंडे १७ मणी १८ य सप्पे १९ य खग्गी २० थूभि २१ दे २३।
परिणामिअबुद्धीए एवमाई उदाहरणा ॥ ९५१ ॥

आसां तिसृणामपि गाथानामर्थः कथानकेभ्योऽवसेयः, तानि चामूनि–तत्र प्रथममभयोदाहरणं–पज्जोएण रायगिहं नगरं रोहियं, अभयकुमारेण य पज्जोए अणागए चेव खंधावारनिवेसे जाणिऊण पभूतं दव्वं निक्खातियं, ततो आगते पज्जोए अभयकुमारेण जाणावितो, जहा तव सव्वोवि खंधावारो ताएण भेइओ, जइ न पत्तियसि तो खंधावारनिवेसे निभालेहि, तहेव कयं, ततो भीतो अप्पपरिवारो नट्ठो, पच्छा अभएण सव्वं गहियं, एसा अभयस्स परिणामिया बुद्धी। अहवा एसा–जाहे गणियाए कवडेण नीतो, बद्धो, जाव तोसितो पज्जोओ, लद्धा चत्तारि वरा, चिंतियं च णेण–मोयावेमि अप्पाणगं, वरो मग्गितो–अग्गिं पविसामित्ति, मुक्को, भणइ–अहं ते छलेण आणीतो, अहं पुण दिवसतो पज्जोओ हीरइत्ति कंदं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तं नेमि, गतो रायगिहं, सयं वाणियगो जातो, दासो उम्मत्तगो कतो, वाणियदारातो कयातो, ततो उज्जेणीए रडंतो पज्जोओ गहितो, एवमाइयातो बहूइओ अभयस्स परिणामियातो बुद्धीतो १। सेट्ठित्ति कट्ठो नाम सेट्ठी एगत्थ नगरे परिवसति, तस्स वज्जा नाम भारिया, तस्स नियइल्लो देयसम्मो नाम बंभणो, सिट्ठी दिसाजत्ताए गतो, भज्जा य तेण समं संपलग्गा, तस्स य घरे तिन्नि पक्खी–सूयतो मयणसलागा कुक्कुडगो, सो ताणि उवनिक्खिवित्ता गतो, सो धिज्जाइतो रत्तिं अइति, मयणसलागा भणइ–को तायस्स न बीहइ ?, सूयओ वारेइ–जो अग्गियाए दइओ सो अम्हं तातो होइ, सा मयणसलागा न सम्मं एयं अहियासेति, तो धिज्जाइयं निच्चमेव परिवयति, ताहे वज्जाए सा मारिया, सूओ न मारिओ, अन्नया साहू भिक्खानिमित्तं तं गिहमतिगया, कुक्कुडं पेच्छिऊण एगो दिसालोयं काऊण भणइ–जो एयस्स सीसं खाइ सो राया भवतित्ति, तं कहवि तेण धिज्जाइएण अंतरिएणं सुयं, ततो सो वज्जं भणइ–मारेहि खामि, सा भणइ–अन्नं मंसं आणिजइ, मा पुत्तभंडसंवड्ढियं इमं मारावेह, निब्बंधे कए मारितो, ततो जाव ण्हाउं गतो ताव तीसे पुत्तो लेहसालाओ आगतो, तं च मंसं सिद्धं, सो छुहाइतो रोयइ, सीसं दिन्नं, आगतो सो धिज्जाइतो, भाणए छूढं, सीसं मग्गइ, न पेच्छइ, सीसं देह, सा भणइ–चेडस्स दिन्नं, सो रुट्ठो, एयस्स कए मए मारावितो, जइ परं एयस्स चेडस्स सीसं खाएज्ज तो होज्ज कज्जं, निब्बंधे ववसिया, दासीए सुयं, ततो चेव चेडं गहाय पलाया, अन्नं नगरं गया, तत्थ अपुत्तो राया मतो, आसेण सो चेडो परिक्खितो, राया जातो, इतो य–कट्ठो सेट्ठी नियघरमागतो, पडियसडियं नियघरं पासति, सा वज्जा पुच्छिया, न कहेइ, सूयओ पुच्छितो, सो बीहेइ, ततो सो मा मारिज्जउत्ति पज्जरातो मुक्को, तेण पंजरमुक्केण सव्वो बंभणाइवुत्तंतो कहितो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ५२८ ॥

सो तं सोऊण संविग्गो–अलं संसारववहारेण, अहं तीसे कएण किलेसमणुभवामि, एसा पुण एवंविहत्ति पवइतो । इयराणि तं चेव नगरं गयाणि जत्थ सो दारगो राया जातो, साहूवि विहरंतो तत्थेव गतो, पविट्ठो कहमवि तीए घरे भिक्खानिमित्तं, तीए भिक्खाए समं सुवण्णं दिन्नं, कूवियं–एसो समणो सुवण्णं गहाय गतो, गहितो य रायपुरिसेहिं, दिट्ठं भिक्खमज्झे सुवण्णं, रण्णो निवेइयं, रायाए भणियं–सूलाए पोइज्जउ, धातीए नातो, रण्णो कहियं–एस ते पिया, राया ससंभमं उट्ठिऊण पाएसु पडितो, ताणि निविसयाणि आणत्ताणि, पिया भोगेहिं रन्ना निमंतितो, नेच्छइ, राया सड्ढो कतो । वरिसारत्ते पुण्णे वच्चंतस्स अकिरियानिमित्तं धिज्जाइएहिं दुअक्खरिया भद्दपरिव्वाइयारूवधारिणी उवट्ठिया, गुव्विणी सा, राया अणुवयइ, तीए गहितो–मम चिंतं करेह, ततो मा पवयणस्स उड्डाहो होउत्ति चिंतिऊण कट्ठसाहू भणइ–जइ मम एस गब्भो तो जोणीए नीउ, अह न मम तो पोट्टं भिंदित्ता णीउ, एवं भणिए भिन्नं पोट्टं, पवयणस्स वण्णो जातो, कट्ठसेट्ठिस्स पारिणामिया बुद्धी, जीए वा पव्वावितोत्ति ॥ कुमारोत्ति खुड्डगकुमारो, सो उवरिं जोगसंगहे भण्णिहिइ । तस्स पारिणामिया बुद्धी २ ॥ देवीवि पुप्फभद्दे नगरे पुप्फसेणो राया, पुप्फवती देवी, तीसे दो पुत्तभंडाणि–पुप्फचूलो पुप्फचूला य, ताणि अणुरत्ताणि, रण्णा दोऽवि परोप्परं परिणावियाणि, भोगे भुंजंति, देवी निवेएण पव्वइया, देवलोगे देवो उववन्नो, सो चिंतेइ–जइ एयाणि एवं रमंति ता नरगतिरिएसु उववज्जिहिंति, सुविणए सो तेसिं नरगे दंसेइ, सा भीया, पुच्छइ–पभाए पासंडिए, ते न याणंति, अन्नियापुत्ता आयरिया, ते सद्दाविया, ते सुत्तं कड्ढंति, सा भणइ–किं तुब्भेहिवि सुमिणगो दिट्ठो ?, सो भणइ–आगमे अम्हे एरिसं दिट्ठं, पुणोऽवि देवलोगे दरिसेइ, तेवि से अन्नियापुत्तेहिं कहिया, ततो भणइ–कहं एरिसा देवलोगा

पारिणामिक्याः उदाहरणानि

॥ ५२८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गम्मंति ?, कहं वा तारिसेसु नरगेसु न गम्मइ ?, आयरिएहिं कहियं–जिणदेसियधम्मप्पभावेण, ततो धम्मकहा, संविग्गा, पवइया, देवस्स पारिणामिगी बुद्धी । उदितोदएत्ति, पुरिमताले नगरे उदितोदओ राया, सिरिकंता देवी, दोन्निवि सावगाणि, अन्नया अंतेउरे परिव्वाइया पविट्ठा, सा सिरिकंताए देवीए जिया, दासीहिं मुहमक्कडियाहिं वेलंबिया निच्छूढा, पदोसमावन्ना । वाणारसीए धम्मरुईनाम राया, तत्थ गया, फलगपट्टियाए सिरिकंताए रूवं लिहिऊण दरिसेइ धम्मरुइस्स रन्नो, सो अज्झोववन्नो दूयं विसज्जेइ, उदितोदएण रण्णा पडिहतो अवमाणितो निच्छूढो, ताहे सबबलेणागतो धम्मरुई, पुरिमतालं नगरं रोहेइ, उदितोदओ चिंतेइ–किं एवडुएण जणक्खएणं कएणंति ?, उववासं करेइ, वेसमणो देवो आउट्टो, तेण धम्मरुई सनगरं साहरितो, उदितोदयस्स पारिणामिया बुद्धी ॥ साहू य नंदिसेणे इति, सेणियपुत्तो नंदिसेणो सामिसीसो साहू, तस्स सीसो ओहाणुप्पेही, तस्स चिंता–जइ भगवं ! रायगिहं जाएज्जा तो देवीतो अण्णे य सातिसए पेच्छिऊण थिरो जइ होज्जत्ति, सामी रायगिहमागतो, सेणितो संतेउरो नीति, अन्ने य कुमारा संतेउरा, नंदिसेणस्स अंतेउरं वरं सेयंबरवसणं पउमिणिमज्झे हंसीतो इव मुक्काभरणातो सब्बासिं छायं हरेंति, सो तातो दट्ठूण चिंतेति–जइ भट्टारएण मम आयरिएण एरिसितो मुक्का तो किमंग पुण मज्झ मंदपुण्णस्स असंताणं परिच्चइयवतेणंति निबेयमावण्णो, आलोइय पडिक्कंतो थिरो जातो, दोण्हवि पारिणामिगी बुद्धी ॥ धणदत्तेत्ति, धनदत्तः सुसुमायाः पिता, स एवं परिणामेति–यद्येनां मारितां न भक्षयामस्तर्हि क्रियामहे, तस्य पारिणामिकी बुद्धि ॥ सावगत्ति, सावगो साबियाए वयंसियाए मुच्छितो, तीए परिणामियं–एस मुच्छितो मरिहिति, मतो य अट्टवसट्टो नरएसु तिरिएसु वा उववज्जिहिइ, ततो तीसे आभरणाणि वत्थाणि य परिहि-

आ. सू. ८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ऊण रयणीए उवट्ठिया, बिइयदिणे तस्स संवेगो–मए भग्गं वयंति, तीसे जहावट्ठियकहणं, तीसे पारिणामिगी बुद्धी ॥ अमच्चेत्ति, वरधणुपिया जउघरे कए चिंतेइ–कुमारो कहंपि रक्खियव्वो, सुरंगाए नीणितो, पलातो, एयस्स पारिणामिगी बुद्धी ॥ अण्णे भणंति–एगो राया, देवी से अइप्पिया कालगया, सो मुद्धो, तीए वियोगदुक्खितो न सरीरत्थितिं करेइ, मंतिहिं भणितो–देव ! एरिसि संसारत्थिती, किं कीरउ ?, सो भणइ–नाहं देवीए सरीरत्थितिं अकरेंतीए करेमि, मंतीहिं परिचिंतियं–न अन्नो उवायोत्ति, पच्छा भणियं–देव ! देवी सग्गं गया, तत्थट्ठियाए य से सव्वं पेसिज्जउ, लद्धकयदेविट्ठिति-पउत्तिए पच्छा करेज्जसु, रण्णा पडिस्सुयं, माइठाणेण एगो पेसितो, रण्णो सगासं सो आगंतूण साहइ–कया सरीत्थिती देवीए, पच्छा राया करेइ, एवं पइदिणं करेंताण कालो वच्चइ, देवीपेसणवावएसेण बहुं कडिसुत्तमाइ खज्जई राया, एगेण चिंतियं–अहंपि खाएमि, गतो रायसगासं, तेण भणियं–कुतो तुमं ?, भणइ–देव ! सग्गातो, रण्णा भणियं–देवी दिट्ठा ?, सो भणइ–तीए चेव पेसितो कडिसुत्तमाइनिमित्तगंति, दावियं से, जहिच्छियं किंपि न संपडइ, रण्णा भणियं–कया गमिस्ससि ?, तेण भणियं–कल्लं, ते संपाडिस्सं, मंती आदिट्ठा–सिग्घं संपाडेह, तेहिं चिंतियं–विणट्ठं कज्जं, को एत्थ उवाउत्ति विसण्णा, एगेण भणियं–धीरा होह, अहं भलिस्सामि, तेण संपाडिऊण राया भणितो–देव ! एस कहं जाहिइ ?, रण्णा भणियं–अण्णे कहं जंतगा ?, तेण भणियं–अम्हे जं पट्ठवेंता तं जलणप्पवेसेण, न अन्नहा सग्गं गम्मइ, रण्णा भणियं–तहेव पेसेह, तहा आढत्ता, सो विसण्णो, अण्णो धुत्तो वायालो रण्णो समक्खं बहुं उवहसइ, जहा देवी भणिज्जासि–सिणेहवंतो राया, पुणोऽवि जं कज्जं तं संदिसिज्जासि, अण्णं च इमं च बहुविहं भणिज्जासि, तेण भणियं–देव ! नाहमेत्तियग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मविकलं भणिउं जाणामि, एसो चेव लट्ठो पेसिज्जउ, रण्णा पडिस्सुयं, सो तहेव विसज्जेउमाढत्तो, इयरो मुक्को, अवरस्स माणुसाणि विसण्णाणि, पलवंति य–हा देव ! अम्हे किं करेज्जामो ?, मंतिणा भणियं–नियतुंडं सारक्खेज्जाह, पच्छा खरंटिय मुक्को, अणाहमडगं दट्ठं, मंतिस्स पारिणामिया बुद्धी ॥ खमएत्ति, खमगो चेल्लएण समं भिक्खं हिंडइ, तेण मंडुक्कलिया मारिया, आलोयणवेलाए नालोएइ, खुड्डएण भणितो–आलोएहित्ति, रुट्ठो आहणामित्ति पधावितो, खंभे अप्फिडितो मतो, एगत्थ विराहियसामन्नाणं कुले दिट्ठीविसो सप्पो जातो, जाणेंति परोप्परं, रत्तिं चरेंति, मा जीवे मारेहामोत्ति, फासुयमाहारमाहारेंति, अण्णया रण्णो पुत्तो अहिणा खइतो, मतो य, राया पदोसमावन्नो, जो सप्पं मारेइ तस्स दीणारं देइ, अन्नया आहिंडएणं ताणं रेहातो दिट्ठातो, तं बिलं ओसहीहिं धमइ, अन्नेसिं सीसाणि निंताणि छिंदइ, सो खवगसप्पो अभिमुहो न नीइ, मा मारेहामि किंचित्, जाईसरो य सो, तो सवं विवेगं जाणइ, ततो पुच्छेण निग्गच्छइ, इयरो य निग्गयं छिंदइ, पच्छा रण्णो उवणीयाणि, सो य राया नागदेवयाए पडिबोहितो–(मा मारेह)नागदिन्नो कुमारो भविस्सइ, सो खमगसप्पो मतो समाणो तत्थ रायपत्तीए पुत्तो जातो, उम्मुक्कबालभावो सप्पे दट्ठुं जाइं संभरइ, संभरित्ता पवइतो, सो य छुहालुओ अभिग्गहं गेण्हइ–मए न रूसियवं, पभाए दोसीणस्स हिंडइ, तत्थ य आयरियस्स गच्छे चत्तारि खमगा–मासितो दोमासितो तेमासितो चउमासितो य, रत्तिं देवया आगया, ते सवे खमगे अइक्कमित्ता खुड्डयं वंदइ, एगेण खमगेण निग्गच्छंती सा हत्थे गहिया, भणिया य–कडपूयणे ! एयं तिकालभोइं वंदेसि ?, इमे महातवस्सी न वंदसि ?, सा भणइ–भावखमगं वंदामि, न दवखमगे, एवं भणिऊण सा गया, पभाए दोसीणस्स गतो खुड्डगो, दोसीणं गहाय आगतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमंतेइ–ततो एगेण खमगेण गहाय पत्ते खेलो छूढो, भणइ–मिच्छामि दुक्कडं, खेलमल्लतो तुब्भं नावणीतो, एवं सेसेहिवि, ततो खेलजुत्तं परिहरिऊण जेमेउमारद्धो, तेहिं वारितो–किं पभाए चेव खायसि ?, ततो अहं अहो छुहालुओत्ति निवेयमावन्नो, सुभज्झवसाणेणं केवलनाणमुप्पन्नं, अहासन्निहिएहिं देवेहिं केवलिमहिमा कया, देवया आगया, एसो भावखमगो, तुब्भे निच्चं रोसेण धमधमंता दव्वखमगा, ततो मए कलं एस पढमो वंदितो, तेसिं पच्छाणुतावेण सुभज्झवसाणसेढीए केवलनाणमुप्पण्णं, पंचवि सिद्धा, सवेसिं पारिणामिया बुद्धी ॥ अमच्चपुत्तेत्ति, अमच्चपुत्तो वरधणू, तस्स तेसु तेसु पओयणेसु पारिणामिया बुद्धी, जहा बंभदत्तो कुमारो मोयावितो पलाइतो य, एवमाइ सवं भासियवं । अण्णे भणंति–एगो मंतिपुत्तो कप्पडियकुमारेण समं हिंडइ, अन्नया निमित्तितो मिलितो, रत्तिं देवकुले ठियाणं सिवा रडइ, कुमारेण निमित्तितो पुच्छितो–किं सा भणइ ?, तेण भणियं–एसा इमं भणइ, इमंसि नइतित्थंसि पुराणीयं कलेवरं चिट्ठइ, एयस्स कडीए सयं पायंकाणं नाणगविसेसरूवाणं चिट्ठइ, तं कुमार ! तुमं गिह्माहि, तुम्हं पायंका मम कलेवरंति, मुद्दियं पुण न सक्कुणोमित्ति, कुमारस्स कुडुं जायं, ते वंचिय एगागी गतो, तहेव जायं, पायंके घेत्तूणागतो, पुणो रडति, पुणरवि पुच्छितो, सो भणइ–वप्फलिगा एसा, कहं ?, एसा भणइ–कुमार ! तुज्झवि पायंकसयं जायं, मज्झवि कलेवरंति, कुमारो तुसिणीतो ठितो, अमच्चपुत्तेण चिंतियं–पेच्छामु से सत्तिं किं किवणत्तणेण गहियं ? उयाहु सोंडीरयाए ?, जइ किवणत्तणेण गहियं न से रज्जंति नियत्तामि, पच्चूसे भणइ–वच्चह तुब्भे, मम सूलं उट्ठियं, न सक्कुणोमि गंतुं, कुमारेण भणियं–न जुत्तं तुमं मोत्तूण गंतुं, किंतु मा कोइ एगत्थाणे जाणिहिइत्ति वच्चामो पच्चासण्णे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

कुलपुत्तघरं नीतो समप्पितो, तं च पायंकसयं सबं पेज्जामोल्लं, मंतिपुत्तस्स उवगयं जहा सोंडीरयाए गहियंति, ततो भणियमणेण–अत्थि मे विसेसो तम्हा गच्छामो, गतो, कुमारेण रज्जं पत्तं, मंतिपुत्तस्स भोगा दिन्ना, एयस्स पारिणामिगा बुद्धी। चाणक्केत्ति, गोल्लविसए चणयग्गामो, तत्थ चणितो माहणो, सो अवगय० सावगो, तस्स घरे साहू ठिया, पुत्तो से जातो सह दाढाहिं, साहूण पाएसु पाडितो, कहियं च, साहूहिं भणियं–राया भविस्सइ, ततो मा दुग्गतिं जाहितीति दंता घंसिया, पुणोवि आयरियाण कहियं, भणंति–कज्जउ, एत्ताहे बिंबंतरियो राया भविस्सइ, उम्मुक्कबालभावेण चोद्दसवि विज्जाठाणाणि आगमियाणि, सोऽथ सावगो संतुट्ठो, एगतो भद्दमाहणकुलातो भज्जा से आणीया, कालेण मायापियरो विपण्णा, अण्णया कंमि कोउए से भज्जा मायघरं गया. केई भणंति–भाइविवाहे गया, तीसे य भगिणीतो अन्नेसिं खद्दादाणियाण दिण्णेल्लियातो, तातो अलंकियविभूसियातो आगयातो, सबो परियणो तासिं संमं संबट्टइ, सा एगंते अच्छइ, अद्धिती जाया, घरं ससोगा आगया, चाणक्केण पुच्छियं, न साहइ, निब्बंधे सिट्ठं, तेण चिंतियं–नंदो पाडलिपुत्ते देइ, तत्थ वच्चामो, ततो कत्तियपुण्णिमाए पुबण्णत्थे आसणे पढमं निसन्नो, तं च नंदस्स सलीवइयस्स राउलस्स सया ठविज्जइ, सिद्धपुत्तो य नंदेण समं तत्थागतो, भणइ–एस बंभणो नंदवंसस्स छायं अक्कमिऊण ठितो, भणितो य दासीए–भयवं! वितिए आसणे निवेसाहि, बिइए आसणे कुंडियं ठवेइ, एवं तइए दंडगं, चउत्थे गणेत्तियं, पंचमे जन्नोवइयं, ततो धट्ठोत्ति निच्छूढो, ततो कुवितो, पइन्नापुरस्सरं पढति–कोशेन भृत्यैश्च निबद्धमूलं, पुत्रैश्च मित्रैश्च विवृद्धशाखम्। उत्पाट्य नन्दं परिवर्त्तयिष्ये, महाद्रुमं वायुरिवोग्रवेगः ॥१॥ ततो निग्गतो, मग्गइ पुरिसं, सुयं चणेण–बिंबंतरितो राया होहामित्ति, नंदस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे मोरपोसगा तेसिं गामं गतो परिव्वायगेण लिंगेण, तेसिं च मयहरस्स धूयाए चंदपियणो डोहलो, सो समुदाणंतो गतो, ते पुच्छंति, सो भणइ–मम दारगं देह तो णं पाएमि चंदं, तेहिं पडिस्सुयं, पडमंडवो कारावितो, पुण्णिमादिवसे मज्झे छिद्दं कयं, मज्झगए चंदे सव्वरसालूहिं संजोइत्ता दुद्धस्स थालं भरिता सद्दाविया, पेच्छइ–थालमज्झे चंदं, भणिया–पियाहि, पियइ, उवरिं पुरिसो उच्छाएइ, दोहले अवणीए कालेण जा पुत्तो जातो, चंदगुत्तो से नामं कयं, सोवि ताव संवड्ढइ, चाणक्को धाउविलाणि मग्गइ, सो य चंदगुत्तो दारगेहिं समं रमइ, रायनीईए विलासा, चाणक्को य पडिएइ, पेच्छइ, सो राया, ठितो अ, अण्णे मंतिसामंता, अवरे पाइक्का, सो य जो जस्स जोग्गो तं तस्स देसं विलहेइ, एत्थंतरे चाणक्केण मग्गितो–अम्हवि किंचि दिज्जह, तेण भणियं–तुमं गावीतो लएहि, सो भणइ–मा मं मारेज्ज कोई, ततो भणइ–वीरभोज्जा वसुंधरा, नायं जहा विण्णाणंपि से अत्थि, पुच्छितो–कस्स तुमंति ?, दारगेहिं भणियं–परिव्वायगपुत्तो एस, अहं सो परिव्वायगो, जामो जा ते रायाणं करेमि, गतो, पागतो लोगो मिलितो, पाडलिपुत्तं रोहियं, नंदेण भग्गो, परिव्वायगो नट्ठो, आसेहिं पिट्ठतो लग्गो, ततो चाणक्को चंदगुत्तं पउमिणीसंडे छुहित्ता रयगो जातो, पच्छा एगेण जच्चवलहीकिसोरगेण आसवारेण पुच्छितो–कत्थ चंदगुत्तो ?, चाणक्को भणइ–पेच्छ पउमसरे पविट्ठो चंदगुत्तो, ततो आसवारेण दिट्ठो, ततो अण्णेण घोडगो चाणक्कस्स अलितो, खग्गं मुक्कं, जाव निगुंडितो जलोयरणट्ठयाए कंचुगं मेलेउं ताव अण्णेण खग्गं घेत्तूण दुहाकतो, पच्छा चंदगुत्तो हक्कारिय चडावितो, पुणो पलाया, पुच्छितो अण्णेण चंदगुत्तो–जं वेलं सारिओ तुमं तंवेलं तुमे किं चिंतियंति ?, तेण भणियं–एवमेव धुवं भोलणं दिट्ठं, अज्जो चेव जाणइ, ततोऽणेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

जाणियं–जोग्गो, न एस विप्परिणमइत्ति, पच्छा चंदगुत्तो छुहाइतो, चाणक्को तं ठवित्ता भत्तस्स अतिगंतो, वीहेइ य–मा एत्थ नज्जेज्जामो, डोंडस्स बाहिं निग्गयस्स पोट्टं अप्फुरियं दिट्ठं, सो पुच्छिओ–कत्थ भोयणं लब्भति ?, तेण भणियं–अमुगत्थ, इयाणिं चेव दहिकूरं जिमिय आगतो, ततोऽणेण तस्स छुरियाए पोट्टं फालियं, दधिकूरं गहाय आगतो, जिमितो दारगो, अन्नया अन्नत्थ गामे रत्तिं समुदाणेइ, थेरीए पुत्तभंडाणं वेवली परिवेसिया, एक्केण मज्झे हत्थो छूढो, दड्ढो रोयति, ताए भण्णइ–तुमं चाणक्कमंगलो, पढमं चेव हत्थं मज्झे छुहसि, पढमं पासाणि घिप्पंति, पच्छा मज्झभागो, चाणक्कस्स उवगयं, गतो हिमवंतकूडं, तत्थ पव्वयगो राया, तेण समं मित्तया जाया, भणइ–नंदं ओयवित्ता समं समेण रज्जं विभजामो, चलिया, देसं लूडंता एंति, एगत्थ नगरं न पडइ, पविट्ठो तिदंडी चाणक्को, वत्थूणि जोएइ, इंदकुमारियातो दिट्ठातो, तासिंतणएण पभावेण न पडइ, नियडीए नीयावियातो, पडियं नगरं, गया, पाडलिपुत्तं रोहियं, नंदो धम्मबारं मग्गइ, चाणक्केण भणियं–एगेण रहेण जं तरसि तं नीणेहि, दो भज्जातो एगं कण्णगं दव्वं च नीणेइ, कन्ना चंदगुत्तं पलोएइ, भणिया–जाहित्ति, तीए चंदगुत्तरहं विलग्गंतीए नव अरगा रहस्स भग्गा, चंदगुत्तेण वारिया, चाणक्को भणइ–मा वारेह, नव पुरिसजुगाणि तव वंसो होइ, अतिगदो, दो भागीकयं रज्जं ॥ एगा कण्णगा, कयगविसभाविया, तत्थ पव्वयगस्स इच्छा जाया, सा तस्स दिन्ना, अग्गिपरियंचणे विसपरिगतो मरिउमारद्धो, भणइ–वयंस! मरिज्जइ, चंदगुत्तो विसं रुंभामित्ति ववसितो, चाणक्केण भिउडी कया, नियत्तो, स मतो, दोवि रज्जाणि तस्स जायाणि ॥ नंदमणूसा चोरियाए जीवंति, ततो चाणक्को चोरग्गाहं मग्गइ, अण्णया बाहिरियाए गतो, तत्थ एगस्स नलदामस्स पुत्तो मक्कोडएण खइतो, तेण आरडियं, पहाविओ नलदामो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव-श्यकमल-यगिरीय-वृत्तौ नम-स्कारे

॥५३२॥

दिट्ठं मक्कोडाण ठाणं, अग्गिं छुहित्ता समूलं उच्छेदियं, चाणक्केण दिट्ठो, रण्णो निवेदितो, रण्णा सद्दावित्ता आरक्खत्तं दिन्नं, वीसत्था कया तेण सव्वे चोरा, अन्नया भत्तदाणेण वीसासेऊण सकुडुंबा मारिया ॥ एगत्थ गामे किल तिदंडिणा भिक्खा न लद्धा, तत्थ आणा दिन्ना, अंबगेहिं वंसी परिखेत्तवा, तेहिं विवरीयं कयं, वंसीहिं अंबगा परिक्खित्ता, ततो रुट्ठो पलीवितो सव्वो गामो ॥ ततो कोसनिमित्तं परिणामिया बुद्धी पयट्टिया, सोवण्णं थालं दीणाराण भरियं, कूडपासेहिं जूयं रमइ, जो जिणइ तस्स एयं, अह अहं जिणामि एक्को दीणारो दायवो, अइचिरंति अन्नं उवायं चिंतेइ, नगरप्पहाणाण भत्तं देइ, मज्जपाणं च, मत्तेसु पणच्चितो भणइ–दो मज्झ धाउरत्ताउ कंचणकुंडिया तिदंडं च, राया मे वसवत्ती एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ १ ॥ एवं भणिए अन्नो असहमाणो भणइ–गयपोयगस्स मत्तस्स उप्पइयस्स जोयणसहस्सं । पए पए सयसहस्सं एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ २ ॥ अण्णो भणति–तिलआढगस्स उत्तस्स निप्फन्नस्स बहुसइयस्स । तिले तिले सयसहस्सं एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ ३ ॥ अन्नो भणइ–नवपाउसंमि पुण्णाए गिरिनदीए सिग्घवेगाए । एगाहियमेत्तेणं नवणीएण पालिं बंधामि, एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ ४ ॥ अन्नो भणइ–जच्चाण नवकिसोराण तद्दिवसे जायमेत्ताण । केसेहिं नहं छाएमि एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ ५ ॥ अन्नो भणइ, दो मज्झ अत्थि रयणाणि सालिपसूई अ गद्दभिआ य । छिण्णा छिण्णा रुहइ एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥ ६ ॥ अन्नो भणइ–सइ सुक्किलनिच्चसुगंधो भज्ज अणुव्वय नत्थि पवासो । निरिणो दुपंचसइतो, एत्थवि ता मे होलं वाएहि ॥७॥ एवं नाऊण रयणाणि मग्गियाणि, सालीणं कोट्ठागाराणि भरियाणि, आसा एगदिवसजाया मग्गिया, एगदिवसियं नवणीयं मग्गियं, एसा पारिणामिया चाणक्कस्स बुद्धी ॥ थूलभद्दसामिस्स पारिणा-

पारिणामिक्याः उदाहरणानि

॥५३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मिया बुद्धी–पियंमि मारिए नंदेण भणितो–अमच्चो होहि, तेण भणियं–चिंतेमि, गतो असोगवणियाए, चिंतेइ–केरिसा भोगा वाउलाणंति?, पवइतो, रण्णा आसन्नपुरिसा भणिया–पेच्छ मा कवडेण गणिआघरं जाएज्जा, नितो सुणगमडए वावण्णे नासं न गिण्हइ, पुरिसेहिं रण्णो कहियं, विरत्तभोगत्ति सिरिओ ठवितो, थूलभद्दस्स रण्णो य पारिणामिगी बुद्धी ॥ नासिक्कसुंदरीनंदित्ति–नासिक्कं नगरं, नंदो वाणियगो, सुंदरी से भज्जा, सा तस्स अतीव वल्लहा, खणमवि तस्स पासं न मुंचइत्ति लोगेण सुंदरीनंदोत्ति तस्स नामं कयं, तस्स भाया पवइतो, सो सुणेइ, जहा सो तीए अतीव अज्झोववन्नो, मा नरगं जाइत्ति तस्स पडिबोहणनिमित्तं पाहुणो आगतो, पडिलाभितो, भाणं तेण गाहियं, अप्पणा समं चालितो, सो जाणइ–एत्थ विसज्जेहि एत्थ विसज्जेहि इति, उज्जाणं नीतो, लोगेण य भायणहत्थो दिट्ठो, ततो णं उवहसंति–पवइतो सुंदरीनंदो, तस्स उज्जाणं गयस्स साहुणा देसणा कया, उक्कडरागोत्ति न तीरइ मग्गे लाएउं, वेउवियलद्धिमं च भयवं साहू, ततोऽणेण चिंतियं –न अण्णो उवाओत्ति अहिगतरेण उवलोभेमि, पच्छा मेरुं पयट्टाविंतो, न इच्छइ अ विओगंतो, मुहुत्तेण आणामि, पडिस्सुयं, पयट्टा, मक्कडजुयलं विउव्वियं, अन्ने भणंति–सच्चगं चेव दिट्ठं, साहुणा भणितो–सुंदरीए वानरीए य का लट्ठयरी?, सो भणइ–भयवं! अघडंती सरिसवमेरूवमत्ति, पच्छा बिज्जाहरमिहुणगं दिट्ठं, तत्थवि पुच्छितो, भणइ–तुला दोवि, पच्छा देवमिहुणगं दिट्ठं, तत्थवि पुच्छितो, भणति–भयवं! एतीए अग्गतो वाणरी सुंदरित्ति, साहुणा भणियं–थोवेण धम्मेण एसा पाविज्जइ, ततो से उवगयं, पच्छा पवइतो, साहुस्स पारिणामिगा बुद्धी। वइरत्ति वइरसामिणा माया नाणुवत्तिया, मा संघो अवमन्निज्जिहित्ति, पाडलिपुत्ते मा परिभविहित्ति वेउवियं कयं, पुरियाए पवयणओहावणा मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

होहित्ति सव्वं कहेयव्वं, एवमाई वइरसामिस्स पारिणामिगी बुद्धी । चलणाहयत्ति, राया तरुणेहिं वुग्गाहिज्जइ, जहा थेरा कुमारामच्चा अवणिज्जंतु, सो तेसिं परिक्खणानिमित्तं भणइ–जो रायं सीसे पाएण आहणइ तस्स को दंडो ?, तरुणा भणंति–तिलंतिलं छिंदियव्वो, तो थेरा पुच्छिया, चिंतेमोत्ति ऊसरिया, चिंतेंति–नूणं देवीए अण्णो को आहणइत्ति ?, आगया भणंति–सक्कारेयव्वो, रण्णो तेसिं च पारिणामिया बुद्धी । आमंडत्ति, आमलगं किंचिमं एगेण नायं, अइकढिणं अकाले बिंबो होहित्ति, तस्स पारिणामिगी बुद्धी । मणीति, एगो सप्पो पक्खीणं अंडगाइं खाइ रुक्खे विलग्गितो, अन्नया सो तत्थ गिद्धेण आलयं विलग्गंतो मारितो, मणी तत्थ पडितो, हेट्ठा कूवो, तं पाणीयं रत्तीभूयं, नीणियं तं सहावितं होइ, दारएण थेरस्स कहियं, तेण परिभावियं, नातो मणी, ततो रुक्खे विलग्गिऊण गहितो, थेरस्स पारिणामिया । सप्पेत्ति, चंडकोसितो चिंतेइ–एरिसो महप्पा इच्चादि विभासा, एयस्स पारिणामिगी । खत्तेत्ति, सावियापुत्तो जोव्वणधणुम्मत्तो धम्मं न गिण्हइ, मरिऊण खग्गो उववण्णो, पट्ठिसु दोहिवि पासेहिं जहा पक्खरा तहा चम्माणि लंबंति, अडवीए चउप्पहे जणं मारेइ, साहुणो अन्नया तेण पहेण अतिक्कमंति, योगेण आगतो, तेण न तरइ अल्लियउं, चिंतेइ–एरिसा मए दिट्ठपुव्वा, जाई संभरिया, पच्चक्खाणं देवलोगगमणं, एयस्स पारिणामिगी । थूभे, वेसालीनगरीए नाभीए मुणिसुव्वयथूभो, तस्स गुणेण कोणियस्स (पयासेऽवि) नगरी न पडति, देवया आगासे कूणियं भणति–समणे जइ कूलवालए, मागहियं गणियं लमिस्सइ । राया य असोगचंदए, वेसालिं नगरीं गहेहिति ॥ १ ॥ ततो कोणिओ तं मग्गइ, तस्स का उप्पत्ती–एगस्स आयरियस्स चिल्लओ अविणीतो, तं आयरिओ अंबाडेति, स वेरं वहइ, अण्णया आयरिया सिद्धसिलं तेण समं वंदगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

विलग्गा, ओयरंताणं वहाए सिला मुक्का, दिट्ठा, आयरिएण पाया ओसारिया, इयरहा मारितो होंतो, ततो तस्स सावो दिन्नो–दुरप्पा ! इत्थीओ विणस्सिहिसित्ति, मिच्छावादी एसो भवतुत्तिकाउं तावसासमे अच्छइ, नदीए कूले आयावेइ, पंथब्भासे जो सत्थो एइ ततो आहारो होइ, नदीए कूले आयावेमाणस्स तस्स पभावेण सा नदी अण्णओ पवूढा, तेण कूलवारतो नामं कयं, तत्थ अच्छंतो कोणिएण आगमितो, गणियातो सद्दावियातो, एगा मागहिअगणिया भणइ–अहं आणामि, कवडसाविया जाया, सत्थेण समं गया, वंदइ, भणइ य–उद्दाणे भोइए चेइयाइं वंदामि, तुब्भे य सुया, ततो आगया, पारणगे मोयगा संजोइया दिण्णा, अतिसारो जातो, पयोगेण ठवितो, उव्वट्टणाईहिं संभिन्नं चित्तं, आणीतो, रन्नो वयणं करेहि, कहं?, जहा वेसाली घेप्पइ, थूभो नीणावितो, गणियाकूलवालाणं दोण्हवि पारिणामिगी बुद्धी। इंदत्ति, इंदपाउगातो चाणक्केण चालियातो, एयं पुव्वं भणियं, एसावि पारिणामिया बुद्धी । पारिणामिक्या बुद्धेरेवमादीन्युदाहरणानि, उक्तोऽभिप्रायसिद्धः। संप्रति तपःसिद्धप्रतिपादनार्थमाह—

न किलम्मइ जो तवसा सो तवसिद्धो दढप्पहारिव। सो कम्मक्खयसिद्धो, जो सवक्खीणकम्मंसो ॥ ९५२॥

न क्लाम्यति–न क्लमं गच्छति यः सत्त्वस्तपसा बाह्याभ्यन्तरेण स एवंभूतस्तपःसिद्धः, अग्लानित्वात्, दृढप्रहारिवदिति गाथाक्षरार्थः। भावार्थः कथानकादवसेयस्तच्चेदम्–एगो धिज्जाइतो उद्दंतो, अविणयं करेइ, सो ततो ताओ थाणातो नीणितो, हिंडंतो चोरपल्लीमल्लीणो, सेणावइणा पुत्तोत्ति गहितो, तंमि मयंमि सेणावती सो चेव जातो, निक्किवं चाहणइत्ति दढप्पहारी से नामं कयं, सो अन्नया सेणाए समं एगं गामं हंतुं गतो, तत्थ य एगो दरिद्दो, तेण पुत्तभंडाण मग्गंताण दुद्धं जाइत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पायसं रंधावितो, सो य णहाइउं गतो, चोरा य तत्थ पडिया, एगेण सो तस्स पायसो दिट्ठो, छुहियत्ति तं गहाय पहावितो, ताणि खुद्दरूवाणि रोवंताणि पिऊमूलं गयाणि, हितो पायसो, सो रोसेणं मारेमित्ति पधावितो, महिला अवपासिता अच्छइ,तहावि जहिं सो चोरसेणावती तत्थ आगच्छइ, सो य गाममज्झे अच्छइ, तेण समं महासंगामो कतो, सेणावइणा चिंतियं–एएण मम चोरा परिभविज्जंति, ततो असिं गहाय निहयं छिन्नो, महिला से भणइ–हा निक्किव ! किमियं कयं ?, पच्छा सावि मारिया, गब्भो दोविभागीकतो फुरफुरेइ, तस्स किवा जाया–अधम्मो कतोत्ति, चेडरूवेहिंतो दरिद्दपउत्ती उवलद्धा, ततो दढयरं निव्वेअं गतो, को उवाओ ?, साहू दिट्ठाओ अणेण, भयवं ! को इत्थ उवाओ ?, तेहिं धम्मो कहिओ, सो अ से अवगतो, पच्छा चारित्तं पडिवज्जिय कम्माणमुच्छायणट्ठाए घोरं खंतिअभिग्गहं गेण्हिय तत्थेव विहरइ, ततो हीलिज्जइ हम्मइ य, सो य घोराकारं च कायकिलेसं करेइ, असणाइयं अलहंतो सम्मं अहियासेइ जाव अणेण कम्मं निग्घाइयं, केवलनाणं से उप्पण्णं, पच्छा सिद्धो, उक्तस्तपःसिद्धः । साम्प्रतं कर्म्मक्षयसिद्धप्रतिपादनाय गाथाचरमदलमाह–स कर्म्मक्षयसिद्धो यः 'सर्वक्षीणकर्म्माशः' सर्वे–निरवशेषाः क्षीणाः कर्म्माशाः–कर्म्मभेदा यस्य स तथा ॥ अधुना कर्म्मक्षयसिद्धमेव प्रपञ्चतो निरुक्तविधिना प्रतिपादयति—

दीहकालरयं जं तु, कम्मं से सिअमट्ठहा । सिअं धंतंति सिद्धस्स, सिद्धत्तमुवजायइ ॥ ९५३ ॥

दीर्घः, सन्तानापेक्षया अनादित्वात्, कालः–स्थितिबन्धकालो यस्य तत् दीर्घकालं, निसर्गनिर्मलजीवरञ्जनात् रजः कर्म्मैव भण्यते, दीर्घकालं च तत् रजश्च दीर्घकालरजं, यच्छब्दः सर्वमान्यत्वात् उद्देशवचनः, यत् कर्म्म इत्थंप्रकारं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तुशब्दो भव्यकर्म्मविशेषणार्थः, न खल्वभव्यकर्म्म सर्वथा ध्मायते, ततोऽयमर्थः–दीर्घकालरजो यत् भव्यकर्म तत् शेषितं–शेषीकृतं, स्थित्यादिभिः प्रभूतं सत् स्थित्यनुभावसङ्ख्यापेक्षया अनाभोगसद्दर्शनज्ञानचरणाद्युपायतः शेषम्, अल्पं कृतमिति भावः, प्राक् किंभूतं सत् शेषितमित्यत आह–'अष्टधा' ज्ञानावरणादिभेदेनाष्टप्रकारं सत् 'सितं' 'सित वर्णबन्धनयो'रिति वचनात् 'षिञ् बन्धने' इति वचनात् वा बद्धं कर्म्म ध्मातं 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयो'रिति वचनात् ध्यानानलेन महाग्निना लोहमलवत् येन स सिद्धः, 'पृषोदरादय' इति इष्टरूपनिष्पत्तिः, एवं कर्म्मदहनानन्तरं सिद्धस्य सतः, किं?–सिद्धत्वमुपजायते, नासिद्धस्य, निश्चयनयमेतत्, उक्तं च–"पलालं न दहत्यग्निर्भिद्यते न घटः क्वचित् । नासाधुः (नासन् कश्चित्) प्रव्रजितो, भव्योऽसिद्धो न सिद्ध्यति ॥१॥" उपजायते इत्यपि तत्त्वतस्तदात्मनः स्वाभाविकमेव सद् अनादिकर्म्मावृतं तदावरणविगमे-नाविर्भवति, तथापि लौकिकवाचोयुक्त्या व्यवहारदेशनया उपजायते इत्युच्यते, अथवा सिद्धस्य सिद्धत्वं भावरूपमुपजायते, नतु प्रदीपनिर्वाणकल्पमभावरूपं, तेन यदाहुरेके–"दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् । दिशं न काञ्चित् विदिशं न काञ्चित्, स्नेहक्षयात् केवलमेति नाशं ॥ १ ॥ जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् । दिशं न काञ्चित् विदिशं न काञ्चित्, क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिं ॥ २ ॥' मिति तदपास्तं द्रष्टव्यम्, तथाविधसिद्धत्वभावे दीक्षादिप्रयासवैयर्थ्यप्रसङ्गात्, न खलु कश्चनापि सचेतनः स्ववधाय कंठे कुठारं प्रक्षिपतीति परिभावनीयमेतत्, न च निरन्वयविनाशो युक्तिघटामुपैति, सतः सर्वथा विनाशायोगात्, असतः खरविषाणस्येवादलस्योत्पत्त्ययोगात् ' नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति वचनात्, विजृम्भितं चात्रार्थे धर्म्मसङ्ग्रहणि-

आ. सू. २०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

टीकादाविति ततः परिभावनीयम्, प्रदीपदृष्टान्तोऽप्यसिद्धो, यतः प्रदीपपुद्गला एव भास्वरं रूपं परित्यज्य तामसं रूपान्तरमासादयन्तीत्यलं विस्तरेण ॥ अथवा अन्यथा व्याख्यायते 'दीर्घकालरज' इति, रज इति रजः सूक्ष्मतया, स्नेहबन्धनयोग्यत्वाद्वा इत्यर्थः, यद्भव्यकर्म्मेति च नैवं व्याख्यायते, साक्षात्कर्म्माभिधानेन सर्वनाम्नो निरर्थकत्वात्, प्रकरणादेव भव्यस्याप्यवगम्यमानत्वात्, अभव्यस्य सिद्धत्वायोगात्, ततो जन्तुकर्म्मेति व्याख्येयम्, जन्तुः–जीवस्तस्य कर्म्म, जन्तुग्रहणेनाबद्धकर्म्मव्यवच्छेदमाह, 'से'तस्य जन्तोरसितं–कृष्णमशुभं संसारानुबन्धित्वात्, एवंविधस्यैव क्षयः श्रेयान्, नतु शुभस्वरूपस्येति भावना, अष्टधा सितमित्यादि पूर्ववत्, प्रथमव्याख्यापक्षमधिकृत्याह–तत्कर्म्म शेषं तस्य समस्थिति वा स्यादसमस्थिति वा ?, न तावत् समस्थिति, विषमनिबन्धनत्वात्, नाप्यसमस्थिति चरमसमये युगपत् क्षयासम्भवात्, एतदयुक्तम्, उभयथाऽप्यदोषात्, तथाहि–विषमनिबन्धनत्वेऽपि सति विचित्रः क्षयसम्भव इति कालतः समस्थितिकत्वाविरोधः, चरमपक्षेऽपि समुद्घातगमनेन समस्थितिकरणभावाददोषः, न चैतत् स्वमनीषिकयोच्यते, यत आह निर्युक्तिकृत्—

नाऊण वेयणिज्जं अइबहुगं आउगं च थोवागं। गंतूण समुग्घायं खवेइ कम्मं निरवसेसं ॥ ९५४ ॥

ज्ञात्वा–केवलेनावगम्य वेदनीयं कर्म्म अतिबहु–शेषभवोपग्राहिकर्म्मापेक्षयाऽतिप्रभूतं, आयुष्कं च कर्म्म तदपेक्षयैव स्तोकं, ज्ञात्वेति वर्त्तते, अत्रान्तरे गत्वा वा–प्राप्य 'समुद्घातं' सम्यक्–अपुनर्भावेन उत्–प्राबल्येन घातः–कर्म्मणो वेदनीयादेर्हननं प्रलयो यत्र प्रयत्नविशेषे स समुद्घातस्तं, गत्वा क्षपयन्ति कर्म्म निरवशेषं, निरवशेषमिव निरवशेषं, प्रभूततमक्षपणात्, शेषस्य चान्तर्मुहूर्त्तमात्रकालावधितया किंचिच्छेषत्वेन परमार्थतोऽसत्कल्पत्वात्, आह–ज्ञात्वा वेदनीयमतिबह्वित्यत्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र समुद्घातस्य वर्णनं क्रियते

नियमो येन तदेव बहुस्थितिकमायुषः सकाशात् भवति ?, न च जातुचिदपि आयुरिति, उच्यते, तथारूपजीवपरिणामस्वाभाव्यात्, तथाहि–इत्थंभूत एवात्मनः परिणामो येनास्यायुर्वेदनीयादिसमं भवति न्यूनं वा, न कदाचनाप्यधिकं, यथा तस्यैवायुषः खल्वध्रुवबन्धः, तथाहि–ज्ञानावरणादीनि कर्माण्यायुर्वर्जानि सप्तापि सर्वदैव बध्नाति, आयुस्तु प्रतिनियत एव काले स्वभवत्रिभागादिशेषरूपे, तत्रैव बन्धवैचित्र्यनियमे न स्वभावाद् यतः परः कश्चिदस्ति हेतुः, एवमिहापि स्वभावविशेष एव नियामको द्रष्टव्यः, आह च भाष्यकृत्–"असमट्ठितीण नियमो को थेवं आउयं न सेसंपि ? । परिणामसहावातो अद्धुयबंधो व तस्सेव ॥ १ ॥" येषां पुनर्भगवतां वेदनीयादिकमायुषा सह स्वभावत एव समस्थितिकमुपजातं ते समुद्घातं न प्रतिपद्यन्ते, तथा चाह भगवानार्यश्यामः–"अगंतूण समुग्घायमणंता केवली जिणा । जाइमरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगतिं गया ॥ १ ॥" ननु प्रभूतस्थितिकस्य वेदनीयादेरायुषा सह समीकरणार्थं समुद्घातारम्भः, एतच्चायुक्तं, कृतनाशादिदोषप्रसङ्गात्, तथाहि–प्रभूतकालोपभोग्यस्य वेदनीयादेरारत एवापगमसम्पादनात् कृतनाशः, वेदनीयादिवच्च कृतस्यापि कर्म्मक्षयस्य पुनर्विनाशसम्भवात् मोक्षेऽप्यनाश्वासप्रसङ्गः, तदसत्, कृतनाशादिदोषाप्रसङ्गात्, तथाहि–इह यथा प्रतिदिवसं सेतिकापरिभोग्येन वर्षशतोपभोग्यस्य कल्पितस्याहारस्य भस्मकव्याधिना तत्सामर्थ्यतः स्तोकदिवसैर्निःशेषतः परिभोगान्न कृतनाशोपगमः, तथा कर्म्मणोऽपि वेदनीयादेस्तथाविधशुभाध्यवसायानुबन्धादुपक्रमेण साकल्यतो भोगान्न कृतनाशरूपदोषप्रसङ्गः, द्विविधो हि कर्म्मणोऽनुभवः–प्रदेशतो विपाकतश्च, तत्र प्रदेशतः सकलमपि कर्म्मानुभूयते, न तदस्ति किञ्चित्कर्म्म यत्प्रदेशतोऽप्यननुभूतं सत् क्षयमुपयाति, ततः कुतः कृतनाशदोषापत्तिः ?, विपाकतस्तु किञ्चिन्न, अन्यथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

निर्म्मोक्षप्रसङ्गात्, तथाहि–यदि विपाकानुभूतित एव सर्वकर्म्म क्षपणीयमिति नियमस्तर्हि असङ्ख्यातेषु भवेषु तथाविधविचित्राध्यवसायविशेषैर्यन्नरकगत्यादिकं कर्मोपार्जितं तस्य नैकस्मिन् मनुष्यादावेव भवेऽनुभवः, स्वस्वभवनिबन्धनत्वाद्विपाकानुभवस्य, क्रमेण च स्वस्वभवानुगमेनानुभवे नारकादिभवेषु चारित्राभावेन प्रभूततरकर्म्मसन्तानोपचयात् तस्यापि स्वस्वभवानुगमेनानुभवोपगमात् कुतो मोक्षः ?, तस्मात्कर्म्म विपाकतो भाज्यम्, प्रदेशतोऽवश्यमनुभवनीयमिति प्रतिपत्तव्यं, एवं च कश्चिन्न दोषः, नन्वेवमपि दीर्घकालभोग्यतया यत् वेदनीयादिकं कर्म्मोपचितं अथ च परिणामविशेषादुपक्रमेणापादेव तदनुभवति ततः कथं न कृतनाशादिदोषप्रसङ्गः ?, तदप्यसत्, बन्धकाले तथाविधाध्यवसायवशत आरादुपक्रमयोग्यस्यैव तेन बन्धनात्, अपिच–जिनवचनप्रामाण्यादपि वेदनीयादिकर्म्मणामुपक्रमो मन्तव्यो, यदाह भाष्यकारः–"उदयकृखयकृखयोवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया । दव्वादि पंचगं पति जुत्तमुवक्कमणमतोऽवि ॥१॥" न चैवं मोक्षोपक्रमहेतुः कश्चिदस्ति येन चानाश्वासप्रसङ्गो भवेत्, मोक्षाद्धि रागादयश्यावयितुमीशाः, ते च निर्म्मूलकाषंकषिता इति, ततो यदुक्तं 'वेदनीयादिवच्च कृतस्यापि कर्म्मक्षयस्ये'त्यादि, न तत्समीचीनमिति स्थितं ॥

इह सर्वोऽपि सयोगिकेवली समुद्घातादर्वाक् आयोजिकाकरणमान्तर्मुहूर्त्तिकमुदयावलिकायां कर्म्मपुद्गलप्रक्षेपव्यापाररूपमुदीरणाविशेषात्मकमारभते, अथ आयोजिकाकरणमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, आङ् मर्यादायां, आ–मर्यादया केवलिदृष्ट्या योजनं–व्यापारणं, शुभानां योगानामिति गम्यते, आयोजिका तस्याः करणमायोजिकाकरणं, केचिदावर्जितकरणमित्याहुः, तत्रायमन्वर्थः–आवर्जितो नाम अभिमुखीकृतः, तथा च लोके वक्तारः–आवर्जितोऽयं मया, सम्मुखीकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

इत्यर्थः, ततश्च तथाभव्यत्वेन आवर्जितस्य-मोक्षगमनं प्रत्यभिमुखीकृतस्य करणं-क्रिया शुभयोगव्यापारणमावर्जितकरणम्, अपरे आवश्यककरणमित्यूचुः, तत्राप्ययमन्वर्थः-आवश्यकेन-अवश्यंभावेन करणमावश्यककरणं, तथाहि-समुद्घातं केचित्कुर्वन्ति, इदं त्वावश्यककरणं सर्वेऽपि केवलिनः कुर्वन्ति, अन्ये आवर्जीकरणमिति वा पठन्ति, आवर्ज्य आवर्जो वा घ्यण् घञ् वा, मोक्षं प्रति अभिमुखीकर्त्तव्य इत्यर्थः, तस्य करणम्, अतत्तद्भावविवक्षायां च्विप्रत्यये आवर्जीकरणमिति वा ॥ सम्प्रति समुद्घातादिस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

दंड कवाडे मंथंतरे य संहरणया सरीरत्थे । भासाजोगनिरोहे सेलेसी सिज्झणा चेव ॥ ९५५ ॥

इह समुद्घातं कुर्वन् प्रथमसमये बाहल्यतः स्वशरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तमात्मप्रदेशानां दण्डमारचयति, द्वितीयसमये पूर्वापरं दक्षिणोत्तरं वाऽऽत्मप्रदेशानां प्रसारणात् पार्श्वतो लोकान्तगामि कपाटं करोति, तृतीये समये तदेव कपाटं दक्षिणोत्तरं पूर्वापरं वा दिग्द्वयप्रसारणात् मथितसदृशं मन्थानं लोकान्तप्रापिणमारचयति, एवं च प्रायो लोकस्य बहु पूरितं भवति, मन्थान्तराण्यपूरितानि, जीवप्रदेशानामनुश्रेणि गमनात्, चतुर्थसमये तान्यपि मन्थान्तराणि सह लोकनिष्कुटैः पूरयति, ततश्च सकलो लोकः पूरितो भवति, तदनन्तरं यथोक्तक्रमात् प्रतिलोमं संहरन् पञ्चमे समये मन्थान्तराणि संहरति, जीवप्रदेशान् सकर्म्मकान् मन्थान्तरगतान् सङ्कोचयतीत्यर्थः, षष्ठे समये मन्थानमुपसंहरति, घनतरसङ्कोचात्, सप्तमे समये कपाटं, दण्डात्मनि सङ्कोचात्, अष्टमे समये दण्डमुपसंहृत्य शरीरस्थो भवति, अमुमेवार्थं चेतसि निधायोक्तं दण्डकपाटान्तरमन्थान्तराणि संहरणेन, प्रतिलोममिति गम्यते, शरीरस्थ इति वचनात्, न चैतत्स्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

मनीषिकया व्याख्यानं, यत उक्तम्–'दण्डं प्रथमे समये कपाटमथ चोत्तरे तथा समये । मन्थानमथ तृतीये लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पञ्चमे त्वन्तराणि मन्थानमथ पुनः षष्ठे । सप्तमके तु कपाटं संहरति ततोऽष्टमे दण्ड ॥ २ ॥– मिति, तत्र दण्डसमयात् प्राक् या पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रा वेदनीयनामगोत्राणां स्थितिरासीत् तस्या बुद्ध्याऽसङ्ख्येयभागाः क्रियन्ते, ततो दण्डसमये दण्डं कुर्वन् असङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽसङ्ख्येयभागोऽवतिष्ठते, यश्च प्राक् कर्म्मत्रयस्यापि रसस्तस्याप्यनन्ता भागाः क्रियन्ते, ततः तस्मिन् दण्डसमये असातवेदनीय १ प्रथमवर्जसंस्थानपञ्चक ५-प्रथमवर्जसंहननपञ्चका ११ प्रशस्तवर्णादिचतुष्को १५ पघाता १६ प्रशस्तविहायोगति १७ अपर्याप्तका १८ स्थिरा १९-शुभ २० दुर्भग२१ दुःस्वरा २२ नादेया २३ यशःकीर्ति २४ नीचैर्गोत्र २५ रूपाणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तान् भागान् हन्ति, एकोऽनन्तभागोऽवशिष्यते, तस्मिन्नेव च समये सातवेदनीय १ देवगति २ मनुष्यगति ३ देवानुपूर्वी ४ मनुष्यानुपूर्वी ५ पञ्चेन्द्रियजाति ६ शरीरपञ्चका ११ ङ्गोपाङ्गत्रयः १४ प्रथमसंस्थान १५ प्रथमसंहनन १६ प्रशस्तवर्णादिचतुष्टया-२० गुरुलघु २१ पराघातो २२ च्छ्वास २३ प्रशस्तविहायोगति २४ त्रस २५ बादर २६ पर्याप्त २७ प्रत्येका २८ ऽऽतपो-२९ द्योत ३० स्थिर ३१ शुभ ३२ सुभग ३३ सुस्वरा ३४ देय ३५ यशःकीर्त्ति ३६ निर्माण ३७ तीर्थंकरो ३८ चैर्गोत्र ३९-रूपाणामेकोनचत्वारिंशतः प्रकृतीनामनुभागोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्ये प्रवेशेनोपहन्यते, समुद्घातमाहात्म्यमेतत्, तस्य चोद्धरितस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागलवानन्तभागस्य यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततो द्वितीये कपाटसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽवशिष्यते, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति, अत्रापि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्ये प्रवेशनेन द्रष्टव्यः, पुनरप्येतस्मिन् समयेऽवशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्तभागस्य पुनर्बुद्ध्या यथाक्रममसंख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततस्तृतीयसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकं असंख्यातभागं मुञ्चति, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकमनन्तभागं मुंचति, अत्रापि प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्ये प्रवेशनेनावसेयः, ततः पुनरपि तृतीयसमयावशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्य अनुभागस्य चानन्ततमभागस्य बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततश्चतुर्थे समये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकस्तिष्ठति, अनुभागस्याप्यनन्तान् भागान् हन्ति, एकोऽवशिष्यते, प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातः पूर्ववदवसेयः, एवं च स्थितिघातादि कुर्वतश्चतुर्थसमये स्वप्रदेशापूरितसमस्तलोकस्य भगवतो वेदनीयादिकर्मत्रयस्थितिरायुषः सङ्ख्येयगुणा जाता, अनुभागस्त्वद्याप्यनन्तगुणः, चतुर्थसमयावशिष्टस्य च स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य भूयो बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततोऽवकाशान्तरसंहारसमयेऽसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकं असङ्ख्येयभागं शेषीकरोति, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति, एवमेतेषु पञ्चसु दण्डादिसमयेषु प्रत्येकं सामयिकं कण्डकमुत्कीर्णं, समये २ स्थितिकण्डकानुभागकण्डकघातनात्, अतः परं षष्ठसमयादारभ्य स्थितिकण्डकमनुभागकण्डकं चान्तर्मुहूर्त्तेन कालेन विनाशयति, षष्ठादिषु च समयेषु कण्डकस्य प्रतिसमयमेकैकं शकलं तावदुत्किरति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमये सकलमपि तत्कण्डकमुत्कीर्णं भवति, एवमन्तर्मुहूर्त्तिकानि स्थितिकण्डकान्यनुभागकण्डकानि च घातयन् तावद्वेदितव्यः यावत् सयोग्यवस्थाचरमसमयः, सर्वाण्यपि चामूनि स्थित्यनुभागकण्डकान्यसङ्ख्येयान्यवगन्तव्यानि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्रति समुद्घातगतस्य योगव्यापारश्चिन्त्यते–योगाश्च मनोवाक्कायाः, तत्रैषां कः कदा व्याप्रियते?, तत्र काययोग एव केवलो व्याप्रियते, न मनोवाग्योगव्यापारौ, प्रयोजनाभावात्, उक्तं च धर्म्मसारप्रकरणे–"मनोवचसी तु तदा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावा"दिति, काययोगोऽपि प्रथमाष्टमसमययोरौदारिककाययोग एव, द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु पुनरौदारिके तस्माच्च बहिः कार्मणे वीर्यपरिस्पन्दादौदारिककार्म्मणमिश्रः, त्रिचतुर्थपञ्चमसमयेषु बहिरेवौदारिकाद्बहुतरव्यापारसद्भावात् कार्म्मणकाययोग एव, तन्मात्रचेष्टनादिति, तथा चोक्तमन्यत्रापि–"औदारिकप्रयोक्ता प्रथमाष्टमसमययोरसाविष्टः। मिश्रौदारिकयोक्ता सप्तमषष्ठद्वितीयेषु ॥ १ ॥ कार्म्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च। समयत्रयेऽपि तस्मिन् भवत्यनाहारको नियमात् ॥ २ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, भाषायोगनिरोध इति कोऽर्थः?, परित्यक्तसमुद्घातः कारणवशात् योगत्रयमपि व्यापारयति, तदर्थं मध्यवर्त्तिनं योगमाह–भाषेति, कथं योगत्रयमपि व्यापारयतीति चेत्, उच्यते–अनुत्तरसुरपृष्टः सत्यमसत्यमृषा वा मनोयोगं प्रयुंक्ते, आमन्त्रणादौ सत्यमसत्यामृषा वाग्योगं, नेतरौ द्वौ भेदौ द्वयोरपि, वीतरागत्वात् सर्वज्ञत्वाच्च, काययोगमपि औदारिकं फलकप्रत्यर्प्पणादौ व्यापारयति, अन्तर्मुहूर्त्तमात्रे च कालशेषे भगवान् योगनिरोधं करोति, अत्र केचिद् व्याचक्षते–जघन्यत एतावता कालेन, उत्कर्षतस्तु षड्भिर्मासैः, तदेतदयुक्तं, 'गत्वा समुद्घातं क्षपयन्ति कर्म्म निरवशेष'मिति वचनात्, अन्यच्च–प्रज्ञापनायां योगनिरोधानन्तरं पीठफलकादीनां प्रत्यर्पणमेवोक्तं, न त्वादानमपि, यदि पुनः षण्मासानपि यावद् भगवान् तिष्ठेत् तत आदानमपि वर्षाकालादौ सम्भवतीति तदप्युच्येत, न चोक्तं, तस्मादपव्याख्यानमेतदिति। योगनिरोधप्रतिपादनं च द्विधा–सङ्क्षेपतो विस्तरतश्च,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तत्र सङ्क्षेपतो भाष्यकार-टीकाकारादयः कृतवन्तः, विस्तरतस्तु चूर्णिकारादयः, तत्र सङ्क्षेपत इदं-योगनिरोधं कुर्वन् प्रथममेव याऽसौ शरीरसम्बद्धा मनःपर्याप्तिर्यया पूर्वं मनोद्रव्यग्रहणं कृत्वा भावमनः प्रयुक्तवान्, तत्कर्म्मसंयोगविघटनाय मन्त्रसामर्थ्येन विषमिव स भगवान् अनुत्तरेणाचिंत्येन निरावरणेन करणवीर्येण तद्व्यापारं निरुणद्धि, तच्चैवम्-'पज्जत्तमेत्तसंनिस्स जत्तियाइं जहण्णजोगिस्स। होंति मणोदव्वाइं तव्वावारो य जम्मत्तो ॥ १ ॥ तदसंखगुणविहीणं समए समए निरुंभमाणो सो। मणसो सव्वनिरोहं करेज्ज संखेज्जसमएहिं ॥ २ ॥' वाग्योगकाययोगनिरोधमप्येवम्-"पज्जत्तमेत्तबेंदियजहन्नवइजोगपज्जया जे उ। तदसंखगुणविहीणे समए समए निरुंभंतो ॥ १ ॥ सव्ववइजोगरोहं संखातीतेहिं कुणइ समएहिं। तत्तो य सुहुमपणगस्स पढमसमयोववन्नस्स ॥ २ ॥ जो किर जहन्नजोगो तदसंखेज्जगुणहीणमेक्केक्के। समए निरुंभमाणो देहतिभागं च मुंचंतो ॥ ३ ॥ रुंभइ स कायजोगं संखातीतेहिं चेव समएहिं। तो कयजोगनिरोहो सेलेसीभावणामेति ॥ ४ ॥" विस्तरस्त्वेवम्-योगनिरोधं कुर्वन् प्रथमतो बादरकाययोगबलादन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण बादरवाग्योगं निरुणद्धि, क्रमेणेति शेषः, 'आलम्बनाय करणं तदिष्यते तत्र वीर्यवतः', अत्र तदिति बादरतनुरूपं, बादरमनोयोगनिरोधानन्तरं च पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा तत उच्छ्वासनिश्वासावन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निरुणद्धि, ततः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा सूक्ष्मकाययोगबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि, बादरयोगे हि सति सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुमशक्यत्वात्, आह च-"बादरतनुमपि निरुणद्धि ततः सूक्ष्मेण काययोगेन। न निरुध्यते हि सूक्ष्मो योगः सति बादरे योगे ॥ १ ॥" केचिदाहुः-बादरकाययोगबलाद् बादरकाययोगं निरुणद्धि, युक्तिं चात्र वदन्ति, यथा कारपत्रिकः स्तम्भे स्थितस्तमेव स्तम्भं छिनत्ति, तथा बादरकाय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

योगोपष्टम्भाद्बादरकाययोगं निहन्तीति, तदत्र तत्त्वमतिशयिनो विदन्ति, बादरं च काययोगं निरुन्धानः पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तादपूर्वस्पर्द्धकानि करोति, योगस्पर्द्धकस्वरूपं च कर्म्मप्रकृतिटीकातः पञ्चसङ्ग्रहटीकातो वा वेदितव्यम्, तत्र यानि तस्मिन् भवे पर्याप्तिपर्याप्तपरिणतेन सता जीवेन पूर्वं कायादिव्यापारनिष्पादनार्थं कृतानि तानि पूर्वस्पर्द्धकान्यभिधीयन्ते, तानि च स्थूलानि, यानि पुनरधुना कर्त्तुमारभते तानि सूक्ष्माणि, न चैवंभूतान्यनादौ संसारे कृतानि ततोऽपूर्वाणीत्युच्यन्ते, तत्र पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तात् याः प्रथमादिवर्गणाः सन्ति तासां ये वीर्याविभागपरिच्छेदास्तेषामसङ्ख्येयान् भागानाकर्षति, एकमसङ्ख्येयभागं मुञ्चति, जीवप्रदेशानामपि चैकमसङ्ख्येयं भागमाकर्षति, शेषं सर्वं स्थापयति, एष बादरकाययोगनिरोधप्रथमसमयव्यापारः, तथा च कर्म्मप्रकृतिप्राभृतं "पढमसमये अपुव्वफड्डगाणि करेइ–पुव्वफड्डगाणं हेट्ठा आइवग्गणाणमविभागपरिच्छेयणमसंखेज्जइभागे उक्कडइ, जीवपएसाणं चासंखेज्जइभागमोकड्डइ'त्ति," ततो द्वितीये समये प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासङ्ख्येयभागादसङ्ख्येयगुणभागं जीवप्रदेशानामाकर्षति, तावतोऽसङ्ख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः, वीर्याविभागपरिच्छेदानामपि प्रथमसमयाकृष्टात् योगात् असङ्ख्येयगुणहीनं भागमाकर्षन्ति, एवं प्रतिसमयं समाकृष्य तावदपूर्वस्पर्द्धकानि करोति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमयः, कियन्ति पुनः स्पर्द्धकानि करोतीति चेत्, उच्यते–श्रेणिवर्गमूलस्यासङ्ख्येयभागमात्राणि, पूर्वस्पर्द्धकानामसङ्ख्येयभागमात्राणि इतियावत्, अपूर्वस्पर्द्धककरणान्तर्मुहूर्त्तानन्तरसमय एव च किट्टीरन्तर्मुहूर्त्तं यावत् करोति, उक्तं च–"नाशयति काययोगं स्थूलं सोऽपूर्वफड्डकीकृत्य । शेषस्य काययोगस्य तथा किट्टीश्च स करोति ॥ १ ॥" अथ किमिदं किट्टिरिति ?, उच्यते, एकोत्तरां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

वृद्धिं च्यावयित्वा अनन्तगुणहान्यैकैकवर्गणास्थापनेन योगस्याल्पीकरणं, तत्र पूर्वस्पर्द्धकानामपूर्वस्पर्धकानां च याः प्रथमादिवर्गणास्तासां येऽविभागपरिच्छेदास्तेषामयमसङ्ख्येयान् भागानाकर्षति, एकमसङ्ख्येयभागं स्थापयति, जीवप्रदेशानामपि चैकमसङ्ख्येयभागमाकर्षति, शेषं सर्वं स्थापयति, एष किट्टीकरणप्रथमसमयव्यापारः, ततो द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टवीर्याविभागपरिच्छेदभागादसङ्ख्येयगुणवीर्याविभागपरिच्छेदानां भागमाकर्षति, जीवप्रदेशानां पुनः प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासङ्ख्येभागादसङ्ख्येयगुणं भागं, तावतोऽसङ्ख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः, एवं तावत् किट्टीः करोति यावदप्यन्तर्मुहूर्त्तचरमसमयः, तत्र प्रथमसमयकृताभ्यः किट्टीभ्यो द्वितीयसमयकृताः किट्टयोऽसङ्ख्येयगुणहीनाः, गुणकारश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागः, एवं शेषेष्वपि भावनीयम्, तथा चोक्तं कर्म्मप्रकृतिप्राभृते–' 'एत्थं अंतोमुहुत्तं किट्टीतो करेइ, असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए, जीवपएसे य असंखेज्जगुणाए सेढीए पकड्ढइ, किट्टीगुणकारो पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो' त्ति, प्रथमसमयकृताश्च किट्टयः श्रेण्यसङ्ख्येयभागप्रमाणाः, एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रत्येकमवगन्तव्याः, सर्वा अपि च किट्टयः श्रेण्यसङ्ख्येयभागप्रमाणाः पूर्वस्पर्द्धकानां च सङ्ख्येयभागमात्राः, किट्टीकरणावसानानन्तरसमये एव च पूर्वस्पर्द्धकान्यपूर्वस्पर्द्धकानि च सामस्त्येन नाशयन्ति, तत्समयादारभ्य अन्तर्मुहूर्त्त यावत् किट्टिगतयोगो भवति, तथा चोक्तम्–"किट्टिकरणे निट्ठिए ततो सेकाले पुव्वफड्डगाणि अपुव्वफड्डगाणि च सेसेइ, अंतोमुहुत्तं किट्टिगयजोगो भवति" त्ति, न चात्र किञ्चिदपि करोति, ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भादन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण सूक्ष्मवाग्योगं निरुणद्धि, ततो निरुद्धसूक्ष्मवाग्योगोऽन्तर्मुहूर्त्तमास्ते, नान्यसूक्ष्मयोगनिरोधं प्रति प्रयत्नवान् भवति, ततोऽन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

न्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्ममनोयोगमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निरुणद्धि, ततः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तमास्ते, ततः सूक्ष्मकाययोगबलात् सूक्ष्मकाययोगमन्तर्मुहूर्त्तेन निरुणद्धि, तं च निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ध्यानमारोहति, तत्सामर्थ्याद्वदनोदरादिविवरपूरणेन सङ्कुचितदेहत्रिभागवर्त्तिप्रदेशो भवति, आह च–"सूक्ष्मेण काययोगेन ततो निरुणद्धि सूक्ष्मवाङ्मनसौ । भवति ततोऽसौ सूक्ष्मक्रियस्तदा किट्टिगतयोगः ॥ १ ॥ तमपि स योगं सूक्ष्मं निरुरुत्सन् सर्वपर्ययानुगतम् । सूक्ष्मक्रियमप्रतिपात्युपयाति ध्यानमतमस्क ॥ २ ॥" मित्यादि, सूक्ष्मकाययोगं च निरुन्धानः प्रथमसमये किट्टीनामसङ्ख्येयान् भागान् नाशयति, एकस्तिष्ठति, द्वितीयसमये तस्यैव चैकस्य भागस्योद्धरितस्य सम्बन्धिनोऽसङ्ख्येयान् भागान् नाशयति, एक उद्धरति, एवं समये समये किट्टीस्तावन्नाशयति यावत्सयोग्यवस्थाचरमसमयः, तस्मिंश्च चरमसमये सर्वाण्यपि कर्माण्ययोग्यवस्थासमस्थितिकानि जातानि, येषां च कर्म्मणामयोग्यवस्थायामुदयाभावस्तेषां स्थितिं स्वरूपं प्रतीत्य समयोनां विधत्ते सामान्यतः, सत्ताकालं प्रतीत्य पुनरयोग्यवस्थासमामिति, तस्मिंश्चायोग्यवस्थाचरमसमये सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति ध्यानं १ सर्वाकृष्टयः २ सद्वेद्यस्य बन्धो ३ नामगोत्रयोरुदीरणा ४ योगः ५ शुक्ललेश्या ६ स्थित्यनुभागघातश्चे ७ ति सप्त पदार्था युगपद् व्यवच्छिद्यन्ते, ततोऽनन्तरसमये शैलेशीं प्रतिपद्यते, सर्वसंवरं शीलं तस्येशः शीलेशः तस्येयं योगनिरोधावस्था शैलेशी, इयं च मध्यमप्रतिपत्त्या ह्रस्वपञ्चाक्षरोद्गिरणमात्रं कालं भवोपग्राहिकर्म्मक्षपणाय व्युपरतक्रियमप्रतिपाति ध्यानमारोहति–"आह ततो देहत्रयमोक्षार्थमनिवर्त्ति सर्ववस्तुगतम् । उपयाति समुच्छिन्नक्रियमतमस्कं परं ध्यानम् ॥ १ ॥" एवं भवोपग्राहिकर्मजालं क्षपयित्वा कर्म्मविमोक्षसमये यावत्स्वाकाशप्रदेशेष्विहावगाढस्तावत्प्रदेशान् ऊर्ध्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मप्यवगाहमानो विवक्षितसमयाच्चान्यत् समयान्तरमस्पृशन् गच्छति, उक्तं च चूर्णौ–"जत्तियाए जीवेऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढं उज्जुगं गच्छइ, नवकं बिइयं च समयं न फुसइ" त्ति, भाष्यकारोऽप्याह–"रिउसेढिं पडिवण्णो समयपएसंतरं अफुसमाणो । एगसमएण सिज्झइ अह सागारोवउत्तो सो ॥ १ ॥" तदानीं च साकारोपयोगोपयुक्तता 'सव्वातो लद्धीतो सागारोवयोगोवउत्तस्स, नो अणागारोवयोगोवउत्तस्से' ति वचनात्, उक्तं च–"सव्वातो लद्धीतो जं सागारोवयोगलाभातो । तेणेह सिद्धिलद्धी उप्पज्जइ तदुवउत्तस्स ॥ १ ॥" तत्र च गतः स भगवान् शाश्वतं कालमवतिष्ठते, तथा चाह–'सिज्झणा चेवे' ति गाथार्थः ॥ साम्प्रतमनन्तरगाथायां यदुपन्यस्तं 'गत्वा समुद्घातं क्षपयन्ति कर्म्म निरवशेष'मिति, तत्र परः प्रश्नयति–समुद्घातगतानां विशिष्टः कर्म्मक्षयो भवतीति किमत्र निबन्धनं ?, उच्यते–प्रयत्नविशेषः, किमत्र निदर्शनमित्यत आह—

जह उल्ला साडीया आसुं सुक्कइ विरल्लिया संती । तह कम्मलहुअसमए वच्चंति जिणा समुग्घायं ॥ ९५६ ॥

'यथे'त्युदाहरणोपन्यासार्थः, आर्द्रा साटिका, जलेनेति गम्यते, आशु–शीघ्रं शुष्यति–शोषमुपयाति, विरल्लिता–विस्तारिता सती, तथा तेऽपि भगवन्तो जिनाः प्रयत्नविशेषात् कर्मोदयमधिकृत्याशु शुष्यन्तीति शेषः, यतश्चैवमतः कर्मलघुतासमये कर्म्मणः–आयुष्कस्य लघुता–लघोर्भावो लघुता, स्तोकतेत्यर्थः, तस्याः समयः–कालः कर्मलघुतासमयः, स चान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः तस्मिन्, अथवा कर्म्मभिर्लघुता कर्म्मलघुता, जीवस्येति सामर्थ्यादवसीयते, सा च समुद्घातानन्तरभाविन्येव भूतोपचारं कृत्वा अनागतैव गृह्यते, तस्याः समयस्तस्मिन्, जिना व्रजन्ति समुद्घातं–प्राक् प्रतिपादितस्वरूपमिति ॥ साम्प्रतं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे

॥ ५४१ ॥

यदुक्तं 'शैलेशीं प्रतिपद्यते सिद्ध्यति चे'ति तत्रासावेकसमयेन लोकान्ते सिद्ध्यतीत्यागमः, तत्र कर्म्ममुक्तस्य तदेशनियमेन गतिः कथमुपपद्यते इति मा भूदव्युत्पन्नविनेयानामाशङ्केति तन्निरासार्थमाह—

लाउअ एरंडफले अग्गी धूमे य उसु धणुविमुक्के। गइपुव्वपओगेणं एवं सिद्धाणवि गईओ (उ) ॥ ९५७ ॥

अलाबु-तुम्बं एरण्डफलमग्निर्धूम इति प्रतीताः, इषुः-शरो धनुर्विमुक्तः-चापप्रेरितः, अमीषां यथा तथारूपगमनकाले स्वभावतस्तन्निबन्धनाभावेऽपि देशादिनियतैव पूर्वप्रयोगेण प्रवर्त्तते, एवमेव, व्यवहिततुशब्दस्य एवकारार्थत्वात्, सिद्धानामपि गतिः प्रवर्त्तते इत्यक्षरार्थः, भावार्थः प्रयोगैर्निर्दिश्यते-तत्र कर्म्मविमुक्तो जीवः सकृदूर्ध्वमेवालोकान्ताद् गच्छति, असङ्गत्वेनोत्पन्नतथाविधपरिणामत्वाद् अष्टमृत्तिकालेपलिप्ताधोनिमग्नक्रमापनीतमृत्तिकालेपजलतलमर्यादोर्ध्वगामितथाविधालाबुवत्, इयमत्र भावना-यथा तुम्बकस्य दर्भान्तरितशुष्काष्टमृल्लेपलिप्तस्य नद्यादिजले निक्षिप्तस्य मृल्लेपासङ्गापगमात् स्वभावत एवोर्ध्वं गतिः प्रवर्त्तते, न तिर्यग् नापि जलोपरितलादपि परतः, तथा तस्यापि सिद्धस्य कर्म्मसङ्गाभावादूर्ध्वमेव गतिः प्रवर्त्तते, नान्यप्रकारेण, नापि लोकोपरितनभागादपि परतः, उक्तं च-"जह मिल्लेवावगमादलाबुणोऽवस्समेव गतिभावो। उड्ढं च नियमतो नऽन्नहा नवा जलाउ उड्ढं च ॥ १ ॥ तह कम्मलेपविगमे गइभावोऽवस्समेव सिद्धस्स। उड्ढं च नियमतो नऽन्नहा नवा लोगपरतो उ ॥ २ ॥" तथा कर्म्मविमुक्तो जीवः सकृदूर्ध्वमेवालोकाद् गच्छति, छिन्नबन्धनत्वेन तथाविधपरिणामत्वात्, तथारूपैरण्डफलवत्, किमुक्तं भवति ?, यथा एरण्डफलस्य बन्धनच्छेदनातपशुष्ककोशविगमेन तथाविधस्वभावभावादूर्ध्वमेव गतिः, एवं विगतकर्म्मनिबन्धनस्य जीवस्यापि, आह च-"एरंडस्स फलं जह बंधच्छेएरियं

कर्ममुक्तोर्ध्वगमनं

॥ ५४१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुयं जाइ । तह कम्मबंधणच्छेयणेरितो जाइ सिद्धोऽवि ॥ १ ॥" तथा कर्म्मविमुक्तो जीवः सकृदूर्ध्वमेवालोकात् गच्छति, तथा स्वाभाविकपरिमाणत्वात्, अग्निधूमवत्, उक्तं च–"उड्ढंगइपरिणामो जह जलणस्सा जहेव धूमस्स । उड्ढंगतिपरिणामो सभावतो तह विमुक्कस्स ॥ १ ॥" तथा कर्म्मविमुक्तो जीवः सकृदूर्ध्वमेवालोकाद् गच्छति, पूर्वप्रयुक्ततत्क्रियातथाविधसामर्थ्यात् धनुःप्रयत्नप्रेरितेषुवत्, यथा धनुषा पुरुषप्रयत्नेन प्रयत्नप्रेरितस्येषोर्गतिकारणविगमेऽपि पूर्वप्रयोगात् गतिः प्रवर्त्तते एवं कर्म्मविमुक्तस्यापि जीवस्येति भावः, आह च–"जह धणुपुरिसपयत्तेरितेसुणो भिन्नदेसगमणं तु । गइकारणविगमंमिवि सिद्धं पुव्वप्पयोगातो ॥ १ ॥ बंधच्छेयणकिरियाविरमेवि तहा विमुच्चमाणस्स । तस्साऽऽलोगंतातो गमणं पुव्वप्पओगातो ॥ २ ॥" उपलक्षणमेतत्, तेन यथा कुलालचक्रं क्रियाहेतुविगमेऽपि पूर्वप्रयोगतः सक्रियं तथा जीवस्यापि कर्म्मणा मुच्यमानस्य पूर्वप्रयोगतो गतिरित्यपि निदर्शनं द्रष्टव्यम्, उक्तं च–"जह वा कुलालचक्कं किरियाहेतुविरमेऽवि सक्किरियं । पुव्वप्पओगतोच्चिय तह किरिया मुच्चमाणस्स ॥ १ ॥" एवं प्रतिपादिते सत्याह—

कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पइट्ठिआ ? । कहिं बुंदिं चइत्ताणं ?, कत्थ गंतूण सिज्झति ? ॥ ९५८ ॥

क्व प्रतिहताः–क्व प्रतिस्खलिताः सिद्धा–मुक्ताः, तथा क्व सिद्धाः तथा प्रतिष्ठिता–व्यवस्थिताः, बोंदिः–तनुः शरीरमित्यनर्थान्तरं, क्व बोंदिं त्यक्त्वा–परित्यज्य क्व गत्वा सिद्ध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्ति ?, अत्रानुस्वारलोपो द्रष्टव्यः, अथवा एकवचनतोऽप्येवमुपन्यासः सूत्रशैल्या अविरुद्ध एव, यतोऽन्यत्रापि प्रयोगः–"वत्थगंधमलंकारं, इत्थीतो सयणाणि य । अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥ १ ॥" इति, इत्थं चोदकेनोक्ते सति प्रतिसमाधानमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥ ५४२ ॥

अलोए पडिहया सिद्धा, लोअग्गे अ पइट्ठिआ । इहं बुंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झति ॥ ९५९ ॥

अलोके–केवलाकाशास्तिकाये प्रतिहताः–प्रतिस्खलिताः सिद्धाः, इह प्रतिस्खलनं तत्र धर्म्मास्तिकायाद्यभावात् तदानन्तर्यवृत्तिरेव द्रष्टव्यम्, नतु सम्बन्धे सति भित्तौ लोष्टस्येव विघातः, अमूर्त्तत्वात्, तथा लोकाग्रे च–पंचास्तिकायात्मकलोकमूर्ध्नि च प्रतिष्ठिताः, अपुनरागमवृत्त्या व्यवस्थिता इत्यर्थः, तथा इह–अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रमध्ये बोन्दिं–तनुं मुक्त्वा-परित्यज्य सर्वथा, किं ?, तत्र–लोकाग्रे गत्वा–समयप्रदेशान्तरमस्पृशन् गत्वा 'सिद्ध्यन्ति' निष्ठितार्था भवन्ति सिद्ध्यन्ति चेति गाथार्थः ॥ इह 'लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता' इत्युक्तं, तत्र शिष्यः प्राह–क्व पुनरसौ लोकान्त इत्यत आह—

ईसीपब्भाराए सीआए जोअणम्मि लोगंतो । बारसहिं जोयणेहिं सिद्धी सव्वत्थसिद्धाओ ॥ ९६० ॥

ईषत्प्राग्भारा–सिद्धभूमिस्तस्याः सीता इति द्वितीयं नाम, तस्या ऊर्ध्वं योजनेऽतिक्रान्ते लोकान्तः, सापि च ईषत्प्राग्भाराख्या सिद्धिः सर्वार्थसिद्धाद् वरविमानादूर्ध्वं द्वादशभिर्योजनैर्भवति, अन्ये तु व्याचक्षते–सर्वार्थसिद्धाद् विमानवरात् द्वादशभिर्योजनैर्लोकान्तक्षेत्रलक्षणेति, तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्ति, तस्मिन् लोकान्ते ईषत्प्राग्भारोपलक्षिते मनुष्यक्षेत्रपरिमाणे सिद्धाः प्रतिष्ठिताः, उक्तं च–"अत्थीसीपब्भारोवलक्खियं मणुयलोगपरिमाणं । लोगग्गनभोभागो सिद्धक्खेत्तं जिणक्खायं ॥ १ ॥" साम्प्रतमस्याः प्राग्भारायाः स्वरूपव्यावर्णनायाह—

निम्मलदगरयवन्ना तुसार–गोखीर–हारसरिवन्ना । उत्ताणयछत्तयसंठिआ अ भणिआ जिणवरेहिं ॥ ९६१ ॥

दकरजः–उदककणिका निर्म्मलं च तत् दकरजश्च निर्म्मलदकरजस्तस्येव वर्णो यस्याः सा निर्म्मलदकरजोवर्णा, तुषारो-

सिद्धानां स्थानं ॥ ५४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र सिद्धशीलाया: स्वरुपम् उच्यते

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

हिमं गोक्षीरहारौ प्रतीतौ, तैः सदृक्-तुल्यो वर्णो यस्याः सा तुषारगोक्षीरहारसदृग्वर्णा, वर्ण उपदर्शितः, संस्थानमुपदर्शयति-उत्तानच्छत्रवत् संस्थिता उत्तानच्छत्रसंस्थिता जिनवरैर्भणिता ॥ सम्प्रति परिधिप्रतिपादनेनास्या एवोपायतः प्रमाणमिधित्सुराह—

एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं । तीसं चेव सहस्सा दो चेव सया अउणवन्ना ॥ ९६२ ॥

इह ईषत्प्राग्भाराया गणनया आयामविष्कम्भाभ्यां पञ्चचत्वारिंशद् योजनलक्षाणि प्रमाणम्, अतो 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होइ' इति परिधिगणितेन परिधिपरिमाणमेका योजनानां कोटी द्वाचत्वारिंशत् शतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि द्वे शते एकोनपञ्चाशदधिके १४२३०२४९, शेषं त्वधिकमल्पत्वान्न विवक्षितं, प्रज्ञापनातो वाऽवसेयमिति ॥ साम्प्रतं अस्या एव बाहल्यं प्रतिपादयति—

बहुमज्झदेसभाए अट्ठेव य जोयणाइं बाहल्लं । चरिमंतेसु अ तणुई अंगुलसंखिज्जईभागं ॥ ९६३ ॥

मध्यदेशभाग एव बहुमध्यदेशभागो, बहुशब्दस्य स्तोकपरिहारार्थमात्रत्वात्, स च बहुमध्यदेशभाग आयामविष्कम्भाभ्यामष्टयोजनप्रमाणः, तत्र बाहल्यं-उच्चैस्त्वमष्टैव योजनानि, ततो यथोक्तप्रमाणात् बहुमध्यदेशभागात् बाहल्यमपेक्ष्य मात्रया तन्वी भवन्ती चरमान्तेषु-पश्चिमान्तेषु अङ्गुलसङ्ख्येयभागं यावद्-अङ्गुलसङ्ख्येयभागमात्रा तन्वी । सा पुनरनेन क्रमेणेत्थं तन्वीति दर्शयति—

गंतूण जोयणं जोयणं तु परिहाइ अंगुलपुहुत्तं । तीसेवि अ पेरंते मच्छिअपत्ताउ तणुअयरा ॥ ९६४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

यथोक्तप्रमाणात् बहुमध्यदेशभागात् परतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च योजनं योजनं गत्वा अङ्गुलपृथक्त्वं–नवाङ्गुलप्रमाणं 'परिहाइ'त्ति परिहीयते, एवम्–अनेन प्रकारेण हानिभावे सति तस्याः–तावत्प्रमाणमहत्याः पृथिव्याः, अपिशब्दो भिन्नक्रमे, मक्षिकापत्रादपि तनुतरा, किमुक्तं भवति ?, घृतपूर्णतथाविधकरोटिकाकारेति भावः, स्थापना अस्याश्चोपरि योजनचतुर्विंशतिभागे सिद्धाः, तथा चाह—

ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोअणस्स जो कोसो।कोसस्स य छब्भाए सिद्धाणोगाहणा भणिआ ॥ ९६५ ॥

ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या उपरि यत् खलु योजनं तस्य योजनस्य उपरितनः क्रोशो–गव्यूतं तस्य क्रोशस्योपरितने भागे सिद्धानामवगाहना तीर्थकरगणधरैर्भणिता, 'लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता' इति वचनात् ॥ अमुमेवार्थं समर्थयमान आह—

तिण्णि सया तित्तीसा धणुत्तिभागो अ कोसछब्भाए। जं परमोगाहोऽयं तो ते कोसस्स छब्भाए ॥ ९६६ ॥

यत्–यस्मात् परमः–उत्कृष्टः सिद्धानामयमवगाहो वर्त्तते, त्रीणि धनुषां शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि धनुषस्त्रिभागश्च, एवंप्रमाणश्च क्रोशस्य षड्भागः, ततः–तस्मात् क्रोशस्य षड्भागे सिद्धा इत्युक्तम् ॥ अथ कथं पुनस्तत्र तेषामुपपातोऽवगाहना चेत्यत आह—

उत्ताणउव पासिल्लउव अहवा निसन्नओ चेव। जो जह करेइ कालं सो तह उववज्जए सिद्धो ॥ ९६७ ॥

उत्तान एव उत्तानकः, पृष्ठतोऽर्द्धावनतादिस्थानतः, पार्श्वस्थितो वा–तिर्यक्स्थितो वा, अथवा निषण्णश्चैवेति प्रक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टार्थं, किं बहुना ?, यो यथा–येन प्रकारेणावस्थितः सन् कालं करोति स तथा–तेन प्रकारेणोपपद्यते सिद्ध इति ॥ किमित्येतदेवमत आह—

इहभवभिन्नागारो कम्मवसातो भवंतरे होइ । न य तं सिद्धस्स जओ तम्मिवि तो सो तयागारो ॥ ९६८ ॥

इहभवाद्–अधिकृतभवात् भिन्नाकारः इहभवभिन्नाकारो जीवः कर्म्मवशात्–कर्म्मवशेन भवान्तरे–स्वर्गादौ भवति, तदाकारभेदस्य कर्म्मभेदनिबन्धनत्वात्, न च तत्कर्म्म आकारभेदनिबन्धनं यतो–यस्माद् अस्ति ततः तस्मिन्–अपवर्गे असौ–सिद्धस्तदाकारः–पूर्वभवाकारः ॥ तथा किञ्च—

जं संठाणं च(तु) इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि । आसीअ पएसघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥ ९६९ ॥

यदेव, तुशब्दस्य व्यवहितस्यैवकारार्थत्वात्, संस्थानं इह–मनुष्यभवे भवं–संसारं मनुष्यभवं वा त्यजतः सतश्चरमसमये आसीत् प्रदेशघनं तदेव संस्थानं तत्र तस्य भवति ॥ तच्च मनुष्यभवशरीरापेक्षया त्रिभागहीनं, त्रिभागेन रन्ध्रपूरणात्, तथा चाह—

दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हविज्ज संठाणं । तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिआ ॥ ९७० ॥

दीर्घं वा–पञ्चधनुःशतप्रमाणं, ह्रस्वं वा–हस्तद्वयप्रमाणं, चशब्दान्मध्यमं वा विचित्रं, यच्चरमभवे संस्थानं ततः–तस्मात् संस्थानात् त्रिभागहीना सिद्धानां अवगाहना–अवगाहन्ते अस्यामित्यवगाहना–स्वावस्थैव भणिता तीर्थकरगणधरैः, कस्मात्रिभागहीनेति चेत्, उच्यते, इह देहे त्रिभागः शुषिरं, ततो योगनिरोधकाले तथाविधप्रयत्नभावतः शुषिरापूरणतस्त्रि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥ ५४४ ॥

भागहीनो जातो, न च वाच्यं–संहरणं तावत् प्रदेशानां संभवति, ततः प्रयत्नविशेषतः प्रदेशमात्रोऽपि कस्माच्चावतिष्ठते इति ?, तथाविधसामर्थ्याभावात्, योगनिरोधकालेऽद्यापि सकर्म्मकात् तथा जीवस्वाभाव्याच्च, उक्तं च–"संहारसंभवाओ पएसमित्तंमि किं न संठाइ ? । सामत्थाभावातो सकम्मयातो सभावातो ॥ १ ॥" ततः सिद्धोऽपि तदवस्थ एव भवति, आह च–"देहतिभागो सुसिरं तप्पूरणतो तिभागहीणो उ । सो जोगनिरोहे च्चिय जाओ सिद्धोऽवि तदवत्थो ॥ १ ॥" न च सिद्धस्य सतः प्रदेशसंहारसम्भवः, प्रयत्नाभावाद्, अप्रयत्नस्य गतिरेव कथमिति चेत्, उच्यते, समाहितमेतदसङ्गत्वादिहेतुभिरिति, उक्तं च–"सिद्धोवि देहरहितो सपयत्ताभावतो न संहरइ । अपयत्तस्स किह गई ? नणु भणियमसंगयादीहिं ॥१॥" साम्प्रतमुत्कृष्टादिभेदमवगाहनामानमभिधित्सुराह—

तिन्नि सया तित्तीसा धणुत्तिभागो य होइ बोद्धव्वो । एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिआ ॥ ९७१ ॥

त्रीणि धनुषां शतानि त्रयस्त्रिंशानि–त्रयस्त्रिंशदधिकानि धनुस्त्रिभागश्च बोद्धव्यः, एषा–एतावत्प्रमाणा खलु सिद्धानामुत्कृष्टावगाहना भणिता तीर्थकरगणधरैः, ननु भगवती मरुदेव्यपि सिद्धा, सा च नाभिकुलकरपत्नी, नाभेश्च शरीरप्रमाणं पञ्चधनुःशतानि पञ्चविंशत्यधिकानि, यावच्च शरीरप्रमाणं कुलकराणां तावदेव तत्पत्नीनामपि 'संघयणं संठाणं उच्चत्तं चेव कुलगरेहिं सम'मिति वचनात्, ततो मरुदेव्या अपि शरीरप्रमाणं पञ्चधनुःशतानि पञ्चविंशत्यधिकानीति, तस्य त्रिभागे पतिते सिद्धावस्थायाः सार्द्धानि त्रीणि धनुःशतानि अवगाहना प्राप्नोति, कथमुक्तप्रमाणा सिद्धानामुत्कृष्टाऽवगाहनेति ?, नैष दोषः, नाभिकुलकरमानाद्धि प्रमाणतोऽसौ किञ्चिन्न्यूना, तथा सम्प्रदायात्, ततः साऽपि पञ्चधनुःशतप्रमाणैवेत्यदोषः,

सिद्धानां स्थानं

॥ ५४४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यश्च 'कुलगरेहिं समं' मित्यतिदेशः सोऽपि कियता न्यूनाधिक्येऽपि अतिदेशानामागमे दर्शनादबाधकः, अथवा भगवती हस्तिस्कन्धाधिरूढा सती सिद्धा, हस्तिस्कन्धाधिरूढा च सङ्कुचिताङ्गीति यथोक्तावगाहनाया अविरोधः, उक्तं च–"किह मरुदेवीमाणं ? नाभीतो जेण किंचिदूणा सा । सा किर पंचसयच्चिय अहवा संकोयतो सिद्धा ॥ १ ॥" अधुना मध्यमावगाहनामानमाह—

चत्तारि अ रयणीओ रयणि तिभागूणिआ अ बोद्धवा । एसा खलु सिद्धाणं मज्झिमओगाहणा भणिया ॥९७२॥

चत्वारो रत्नयो–हस्ताः रत्नित्रिभागोना–हस्तत्रिभागोना बोद्धव्याः, एषा–एतावत्प्रमाणा खलु सिद्धानामवगाहना भणिता, ननु जघन्याजघन्यत्वनिषेधपरं सूत्रमिदं, नत्वेतावदेव मध्यमावगाहनामानं, हस्तद्वयादूर्ध्वं पञ्चधनुःशतेभ्योऽर्वाक् सर्वत्रापि मध्यमावगाहनाभावात् ॥ सम्प्रति जघन्यावगाहनाप्रतिपादनार्थमाह—

एगा य होइ रयणी अद्धेव य अंगुलाइं साहीआ । एसा खलु सिद्धाणं जहन्नओगाहणा भणिआ ॥ ९७३ ॥

एका रत्निः अष्टावेव चाङ्गुलानि साधिका, अष्टभिरङ्गुलैरधिका इत्यर्थः, एषा–एतावत्प्रमाणा खलु सिद्धानां जघन्यावगाहना भणिता, एषा च द्विहस्तप्रमाणानां कूर्म्मापुत्रादीनामवसातव्या, अन्ये ब्रुवते–सप्तहस्तानामेव यन्त्रपीलनादिना संवर्तितगात्राणां सतां सिद्धानामवगन्तव्या ॥ ननु आगमे सिद्धिर्जघन्यपदे सप्तहस्तोच्छ्रितानामभिहिता, ततः कथं उच्यते–द्विहस्तप्रमाणानां कूर्म्मापुत्रादीनां ?, उच्यते, सा जघन्यपदे सिद्धिस्तीर्थकरानधिकृत्योक्ता, शेषाणां तु केवलिनां सिद्धिर्द्विहस्तप्रमाणानामप्यविरुद्धेत्यदोषः, उक्तं च–"सत्तुस्सिएसु सिद्धी जहन्नतो किहमिहं बिहत्थेसु ?। सा किर तित्थयरेसुं सेसाणमियं तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धाणं ॥ १ ॥ ते पुण होज्ज विहत्था कुम्मीपुत्तादयो जहन्नेणं । अन्ने संवट्टियसत्तहत्थसिद्धस्स हीणत्ति ॥ २ ॥" अथवा यदिदं सूत्रे जघन्यमानमुक्तम्–सप्त हस्ताः उत्कृष्टं पञ्च धनुःशतानि तद् बाहुल्यमधिकृत्योक्तम्, अन्यथा अङ्गुलपृथक्त्वैर्जघन्यपदे धनुःपृथक्त्वैरुत्कृष्टपदे यथाक्रमं हीनमभ्यधिकं वा तद् वेदितव्यम्, तेन कूर्मापुत्रमरुदेव्यादिभिर्न कश्चिद्विरोधः, न खलु आश्चर्यादिकं किंचित् सामान्यश्रुते सर्वमुक्तमस्ति, अथ च अनिबद्धमपि तदस्तीति श्रद्धीयते, पञ्चशतादेशवचनवत्, तथेदमपि सिद्धिं गच्छतो द्विहस्तमानं सपादपञ्चधनुःशतमानं (च) श्रद्धीयतामिति, उक्तं च–"बाहल्लतो य सुत्तंमि सत्त पंच य जहन्नमुक्कोसं । इहरा हीणब्भहियं होज्जंगुलधणुपुहुत्तेहिं ॥ १ ॥ अच्छेरयादि किंचिवि सामन्नसुए न देसियं सव्वं । होज्ज व अनिबद्धं चिय पंचसयादेसवयणं व ॥ २ ॥" सांप्रतमुक्तानुवादेनैव संस्थानलक्षणं सिद्धानामभिधातुकाम आह—

ओगाहणाय सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा । संठाणमणित्थंत्थं जरामरणविप्पमुक्काणं ॥ ९७४ ॥

अवगाहनया सिद्धा भवत्रिभागेन–भवगतशरीरत्रिभागेन परिहीना भवन्ति, ततस्तेषां जरामरणविप्रमुक्तानां संस्थानमनित्थंस्थं वेदितव्यम्, इत्थंप्रकारमापन्नमित्थं इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थमनित्थंस्थं, न केनचिदपि लौकिकेन प्रकारेण स्थितमितिभावः । इयमत्र भावना–योगनिरोधकाले देहत्रिभागस्य शुषिरस्य प्रदेशैरापूरणात् पूर्वसंस्थानान्यथाव्यवस्थानतः अनियताकारसंस्थानम्, अनियताकारत्वादेव च तदनित्थंस्थमुच्यते, नतु सर्वथा तदभावतः, सिद्धादिगुणेष्वपि यः सिद्धानां 'से न दीहे, न रहस्से' इत्यादिवचनेन दीर्घह्रस्वादीनां प्रतिषेधः सोऽप्यनित्थंस्थसंस्थानत्वादवसेयो, न पुनः सर्वथा तेषामभावतः, उक्तं च–"सुसिरपडिपूरणातो पुवागारं तहाणवत्थातो । संठाणमणित्थंत्थं जं भणियं अणिययागारं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

एत्तोच्चिय पडिसेहो सिद्धाइगुणेसु दीहयाईणं। जमणित्थंत्थं पुव्वागारावेक्खाए नाभावो ॥ २॥" आह–किमेते सिद्धा देशभेदेन स्थिता उत नेति, उच्यते, नेति ब्रूमः, कुत इति चेत्, उच्यते, यस्मात्—

जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का। अन्नोन्नसमोगाढा पुट्ठा सव्वे य लोगंते ॥ ९७५ ॥

यत्रैव चशब्दस्यैवकारार्थत्वाद् देशे एकः सिद्धो–निर्वृतः तत्रानंता भवक्षयविमुक्ताः–भवक्षयेण विमुक्ता भवक्षयविमुक्ताः, अनेन स्वेच्छया भवावतरणशक्तिमत्सिद्धव्यवच्छेदमाह, अन्योऽन्यसमवगाढाः तथाविधाचिन्त्यपरिणामवत्त्वात् धर्म्मास्तिकायादिवत्, 'पुट्ठा सव्वे य लोगंते' इति स्पृष्टा–लग्नाः सर्वे लोकान्ते, पाठान्तरं वा 'पुट्ठो सव्वेहिं लोगंतो' स्पृष्टः सर्वैर्लोकान्तः 'लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता' इति वचनात्। तथा—

फुसइ अणंते सिद्धे सवपएसेहिं सवतो सिद्धो। तेऽवि असंखेज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥ ९७६ ॥

स्पृशत्यनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैरात्मसंबन्धिभिः 'नियमसो'त्ति नियमतो–नियमेन सिद्धः, तथा तेऽप्यसंख्येयगुणा वर्तन्ते ये देशप्रदेशैः स्पृष्टाः, ते केभ्योऽसंख्येयगुणा इति चेत्, उच्यते, सर्वप्रदेशस्पृष्टेभ्यः, कथमिति चेत्, उच्यते, इह एकस्य सिद्धस्य यदवगाहनाक्षेत्रं तत्रैकस्मिन्नपि परिपूर्णे क्षेत्रे अवगाढास्तेऽनंताः, ये च मूलक्षेत्रादेकप्रदेशवृद्ध्याऽवगाढास्तेऽपि प्रत्येकमनन्ताः, एवं द्वित्रिचतुष्पञ्चादिप्रदेशवृद्ध्या ये अवगाढास्तेऽपि प्रत्येकमनन्ताः, तथा तस्य मूलक्षेत्रस्य एकैकं प्रदेशं परित्यज्य येऽवगाढास्तेऽपि प्रत्येकमनन्ताः, एवं द्वित्रिचतुष्पञ्चप्रदेशादिहान्या ये अवगाढास्तेऽपि प्रत्येकमनन्ताः, एवं च सति प्रदेशपरिवृद्धिहानिभ्यां ये समवगाढास्ते परिपूर्णक्षेत्रावगाढेभ्योऽसंख्येयगुणा भवन्ति, असंख्येयप्रदे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥ ५४६ ॥

शात्मकैकसिद्धावगाहक्षेत्रे प्रतिप्रदेशपरिवृद्धिहानिभ्यां प्रतिप्रदेशमनन्तानां सिद्धानामवगाहनात् ॥ स्थापना चेयम् । उक्तं च–"एक्कक्खेत्तेऽणंता पएसपरिवड्ढिहाणिए तत्तो । होंति असंखेज्जगुणाऽसंखपएसो कमवगाहो ॥ १ ॥" सांप्रतं सिद्धानेव लक्षणतः प्रतिपादयति—

असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य णाणे य । सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ ९७७ ॥

अविद्यमानशरीराः अशरीराः, औदारिकादिपञ्चविधशरीररहिता इत्यर्थः, जीवाश्च ते घनाश्च शुषिरापूरणात् जीवघनाः, उपयुक्ता दर्शने च–केवलदर्शने ज्ञाने च–केवलज्ञाने । इह सामान्यसिद्धलक्षणमेतदितिज्ञापनार्थं सामान्यालंबनदर्शनाभिधानमादावुक्तम्, तथा च सामान्यविषयं दर्शनं विशेषविषयं ज्ञानं, तत् साकारानाकारं–सामान्यविशेषरूपं लक्षणं–तदन्यव्यावृत्तं स्वस्वरूपम् एतद्–अनन्तरोक्तम्, तुशब्दो निरुपमसुखसंचयार्थः, सिद्धानां–निष्ठितार्थानामिति ॥ संप्रति केवलज्ञानदर्शनयोरशेषविषयतामुपदर्शयति—

केवलनाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुणभावे । पासंति सव्वतो खलु केवलदिट्ठीहिं णंताहिं ॥ ९७८ ॥

केवलज्ञानेनोपयुक्ताः, न त्वन्तःकरणेन, तदभावात्, केवलज्ञानोपयुक्ताः जानन्ति–अवगच्छन्ति–सर्वभावगुणभावान् सर्वपदार्थगुणपर्यायान्, प्रथमो भावशब्दः पदार्थवचनः, द्वितीयः पर्यायवचनः, गुणपर्यायभेदस्त्वयं सहवर्तिनो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः, तथा पश्यन्ति सर्वतः खलु, खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् सर्वत एव, केवलदृष्टिभिरनन्ताभिः-केवलदर्शनैरनन्तैः, अनन्तत्वात् सिद्धानाम्, इहादौ ज्ञानग्रहणं प्रथमतया तदुपयोगस्थाः सिध्यन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

सिद्धानां स्थानं ॥ ५४६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आह–किमेते युगपज्जानन्ति पश्यन्ति च आहोस्विदयुगपदिति, उच्यते, अयुगपत्, कथमेतदवसीयते इति चेत्, यत आह—

नाणंमि दंसणंमि य एत्तो एगयरयंमि उवउत्ता। सबस्स केवलिस्सा जुगवं दो नत्थि उवओगा ॥ ९७९ ॥

ज्ञाने दर्शने च 'एत्तो' त्ति अनयोः एकतरस्मिन् उपयुक्ताः, 'किं' मिति ?, यतः सर्वस्य केवलिनः सतो युगपद्–एकस्मिन् काले द्वौ न स्त उपयोगौ, तत्स्वाभाव्यात्, क्षायोपशमिकसंवेदने तथादर्शनात्, अत्र बहु वक्तव्यं तच्च नंद्यध्ययनटीकातोऽवसेयमिति ॥ सांप्रतं निरुपमसुखभाजस्ते इत्युपदर्शयन्नाह—

नवि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं नविय सबदेवाणं। जं सिद्धाणं सोक्खं अबाबाहं उवगयाणं ॥ ९८० ॥

नैवास्ति मानुषाणां–चक्रवर्त्यादीनामपि तत् सौख्यं, न चैव देवानामनुत्तरसुरपर्यन्तानामपि, यत् सिद्धानां सौख्यं अव्याबाधमुपगतानां–विविधा आबाधा व्याबाधा न व्याबाधा अव्याबाधा तां उप–सामीप्येन गतानां–प्राप्तानां ॥ यथा नास्ति तथा भङ्ग्योपदर्शयति—

सुरगणसुहं समत्तं सबद्धापिंडियं अणंतगुणं। नय पावइ मुत्तिसुहं णंताहिवि बग्गबग्गूहिं ॥ ९८१ ॥

सुरगणसुखं समस्तं–समस्तदेवसंघातसुखं समस्तं–संपूर्णं, अतीतानागतवर्तमानकालोद्भवमित्यर्थः, पुनः 'सर्वाद्धापिंडितं' सर्वकालसमयैर्गुणितं, ततः पुनरप्यनंतगुणम्, किमुक्तं भवति ?–सर्वाद्धासमयगुणितं सत् यावत्प्रमाणं भवति तावत्प्रमाणं किलासत्कल्पनया एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे स्थाप्यते, इत्येवं सकललोकाकाशानन्तप्रदेशपूरणलक्षणेनानन्तगुणकारेण गुणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥५४७॥

तमिति, एवंप्रमाणस्य सतः पुनर्वर्गो विधीयते, तस्यापि वर्गितस्य भूयो वर्गः, एवमनन्तैर्वर्गघनैर्वर्गितं तथापि तथाप्रकर्षगतमपि मुक्तिसुखं–सिद्धिसुखं न प्राप्नोति ॥ तथा चैतदभिहितार्थानुवाद्याह—

सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा । सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे न माइज्जा ॥ ९८२ ॥

सिद्धसम्बन्धी सुखानां राशिः, सुखसंघात इत्यर्थः, सर्वाद्धापिण्डितः–सर्वकालसमयगुणितः सव्वागासे न माइज्जत्तीत्यादि, अन्यथा नियतदेशावस्थितिस्तेषां कथमिति सूरयोऽभिदधतीति ॥ तथा चैतत्संवाद्यार्षवेदेऽप्युक्तमित्यलं व्यासेनेति ॥ सांप्रतमेवंरूपस्यापि सतोऽप्यस्य निरुपमतां प्रतिपादयति—

जह नाम कोइ मिच्छो नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो । न चएइ परिकहेउं उवमाइ तहिं असंतीए ॥ ९८३ ॥

यथा नाम कश्चित् म्लेच्छो नगरगुणान् सद्गृहनिवासादीन् बहुविधान्–अनेकप्रकारान् विजानन् अरण्यगतः सन् अन्यम्लेच्छेभ्यो न शक्नोति परिकथयितुम्, कुतो निमित्तादित्यत आह–उपमायां तत्रासत्यां, तद्विषये उपमाया अभावादिति भावः । एष गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–एगो महारण्णवासी मिच्छो रण्णे चिट्ठइ, इतो य–एगो राया आसेण अवहरितो तं अडविं पवेसितो, तेण दिट्ठो, सक्कारेऊण जणवयं नीतो, रण्णावि सो नगरमाणितो, पच्छा उवगारित्तिगाढमुवचरितो, जहा राया तहा चिट्ठइ, धवलघराइभोगेणं विभासा, काले रण्णं सरिउमाढत्तो, रण्णा विसज्जितो, ततो रण्णिगा पुच्छंति–केरिसं नगरंति ?, सो वियाणंतोवि तत्थोवमाभावा न सक्कइ नगरगुणे परिकहेउं । एष दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—

सिद्ध-सौख्यं

॥५४७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र सिद्धानां सौख्यं वर्णयते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं नत्थि तस्स ओवम्मं । किंचिविसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥ ९८४ ॥

इति-एवमुक्तेन प्रकारेण सिद्धानां सौख्यमनुपमं वर्तते, किमित्यत आह-यतो नास्ति तस्य औपम्यं-उपमीयमानता, उपमानासंभवात्, तथापि चात्मनः प्रतिपत्तये किंचिद्विशेषेण 'एत्तो' त्ति आर्षत्वाद् अस्याः सादृश्यमिदं-वक्ष्यमाणलक्षणं शृणुताहं वक्ष्ये इति ॥ प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—

जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई । तण्हाछुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतत्तो ॥ ९८५ ॥

यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, सर्वकामगुणितं-सकलसौन्दर्यसंस्कृतं, भोजनं भुज्यते इति भोजनं 'कृद्बहुल' मिति वचनात् कर्म्मण्यनट्, कश्चित् पुरुषो भुक्त्वा तृट्क्षुद्विमुक्तः सन् यथा आसीनः अमृततृप्तः, आबाधारहितत्वात् । इह रसनेन्द्रियमधिकृत्येष्टविषयप्राप्त्या औत्सुक्यविनिवृत्तेः सुखप्रदर्शनं सकलेन्द्रियार्थावाप्त्या शेषौत्सुक्यनिवृत्त्युपलक्षणार्थः, अन्यथा बाधांतरसंभवतः सुखाभावः स्यात्, सर्वबाधाविगमेन चात्र प्रयोजनम्, उक्तं च-"वेणुवीणामृदङ्गादिनादयुक्तेन हारिणा । श्लाघ्यस्मरकथाबद्धगीतेन स्तिमितः सदा ॥ १ ॥ कुट्टिमादिविचित्राणि, दृष्ट्वा रूपाण्यनुत्सुकः । लोचनानन्ददायीनि, लीलावन्ति स्वकानि हि ॥ २ ॥ अम्बरागुरुकर्पूरधूपगन्धानितस्ततः । पटवासादिगन्धांश्च, व्यक्तमाघ्राय निःस्पृहः ॥ ३ ॥ नानारससमायुक्तं, भुक्त्वाऽन्नमिह मात्रया । पीत्वोदकं च तृप्तात्मा, स्वादयन् स्वादिमं शुभम् ॥ ४ ॥ मृदुतूलीसमाक्रान्तदिव्यपर्यंकसंस्थितः । सहसाऽभ्रोदसंशब्दश्रुतेर्भयघनं भृशम् ॥ ५ ॥ इष्टभार्यापरिष्वक्ततद्रतांतेऽथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरः । सर्वेन्द्रियार्थसंप्राप्त्या, सर्वाबाधानिवृत्तिजम् ॥ ६ ॥ यद्वेदयति संहृष्यं, प्रशान्तेनान्तरात्मना । मुक्तात्मनस्तोऽनंतं, सुखमाहुर्मनीषिणः ॥ ७ ॥ इति ॥

इय सव्वकालतित्ता अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा । सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ ९८६ ॥

इति–एवमुक्तेन प्रकारेण सर्वकालतृप्ताः, स्वस्वभावावस्थितत्वात् , अतुलं निर्वाणमुपगताः सिद्धाः, सर्वदा सकलौत्सुक्यनिवृत्तेः, यतश्चैवमतः शाश्वतं–सर्वकालभावि, अव्याबाधं–व्याबाधपरिवर्जितं सुखं प्राप्ताः सुखिनस्तिष्ठन्ति । अथ सुखं प्राप्ता इत्युक्ते सुखिन इत्यनर्थकं, नैष दोषः, अस्य दुःखाभावमात्रमुक्तिसुखनिरासेन वास्तवसुखप्रतिपादनार्थत्वात्, तथा हि अशेषदोषक्षयतः शाश्वतमव्याबाधं सुखं प्राप्ताः सन्तः सुखिनस्तिष्ठन्ति, न तु दुःखाभावमात्रान्विता एवेति ॥ सांप्रतं वस्तुतः सिद्धपर्यायशब्दान् प्रतिपादयति—

सिद्धत्ति अ बुद्धत्ति य पारगयत्ति य परंपरगयत्ति य । उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥ ९८७ ॥

सिद्धा इति कृतकृत्यत्वात्, बुद्धा इति केवलज्ञानदर्शनाभ्यां विश्वावगमात्, पारगता इति भवार्णवपारगमनात्, परंपरागता इति पुण्यबीजसम्यक्त्वज्ञानचरणक्रमतत्प्रतिपत्त्युपायमुक्तत्वात् परम्परया गताः परम्परागताः उन्मुक्तकर्मकवचाः सकलकर्म्मवियुक्तत्वात्, तथा अजरा वयसोऽभावात्, अमरा आयुषोऽभावात्, असङ्गाश्च सकलक्लेशाभावात् ॥ साम्प्रतमुपसंहरति—

निच्छिन्नसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधणविमुक्का । अव्वाबाहं सोक्खं अणुहवयंती सया कालं ॥ ९८८ ॥

सिद्ध-सौख्यं ॥ ५४८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

निस्तीर्णम्–अतिक्रान्तं सर्वम्–अशेषं दुःखं यैस्ते निस्तीर्णसर्वदुःखाः, जातिः–जन्म जरा–वयोहानिः मरणं–प्राणत्यागः बन्धनं–संसारबन्धहेतुरष्टप्रकारं कर्म्म तैर्विमुक्ताः, अव्याबाधं–व्याबाधारहितं सौख्यं सदाकालमनुभवन्ति ॥ उक्ताः सिद्धाः, सम्प्रति तन्नमस्कारवक्तव्यतामाह—

सिद्धाण नमक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्सातो । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥ ९८९ ॥
सिद्धाण नमोक्कारो धन्नाण भवक्खयं करेंताण । हिययं अणुम्मुयंतो विसोत्तियावारओ होइ ॥ ९९० ॥
सिद्धाण नमोक्कारो एवं खलु वन्नितो महत्थोत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ ९९१ ॥
सिद्धाण नमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, बीयं हवइ मंगलं ॥ ९९२ ॥

गाथाचतुष्टयमपि अर्हन्नमस्कारवद्वेदितव्यम् ॥ उक्तः सिद्धनमस्काराधिकारः, साम्प्रतमाचार्यनमस्कारावसरः, अथ आचार्य इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, 'चर गतिभक्षणयोः' आङ्पूर्वः, आचर्यते कार्यार्थिभिः सेव्यते इति आचार्यः, "ऋवर्णव्यञ्जनान्ताद् ण्यणि"ति ण्यण्, अयं च नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तथा चाह—

नामंठवणादविए भावंमि चउव्विहो उ आयरियो । दव्वंमि एगभवियाइ लोइए सिप्पसत्थाइ ॥ ९९३ ॥

नामाचार्यः स्थापनाचार्यः द्रव्याचार्यः भावाचार्यश्च, तत्र नामस्थापनाचार्यौ सुगमौ, द्रव्याचार्यं आगमनोआगमादि-भेदं प्रायः सर्वत्र तुल्यविचारत्वात् अनादृत्य ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्याचार्यमभिधातुकाम आह–'दव्वंमि' इत्यादि, द्रव्ये–द्रव्याचार्ये विचार्यमाणेऽनेकभेदाः, तद्यथा–एकभविको बद्धायुरभिमुखनामगोत्रश्च, तत्र एकेन भवेन भावी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ आचार्य शब्दस्य व्याख्या एवं तेषां नमस्काराणां फ़लम् प्रतिपाद्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

य आचार्यः स एकभविकः, आचार्यभवयोग्यनिबद्धायुर्बद्धायुष्कः, आचार्यभवानुगते यस्य नामगोत्रे उदयाभिमुखे सोऽभिमुखनामगोत्रः, तथाविधो द्रव्याचार्यः मूलगुणनिर्मित उत्तरगुणनिर्मितश्च, तत्र मूलगुणनिर्मित आचार्यशरीरनिर्वर्त्तनयोग्यानि द्रव्याणि, उत्तरगुणनिर्मितस्तु तान्येव तदाकारपरिणतानीति, अथवा द्रव्यभूतोऽप्रधान आचार्यो द्रव्याचार्यः, द्रव्यनिमित्तं वा य आचारवान् स द्रव्याचार्यः, भावाचार्यो द्विधा–लौकिको लोकोत्तरश्च, तत्र लौकिकः शिल्पशास्त्रादिः, एतच्चैवमुच्यते तत्परिज्ञानात् तदभेदोपचारेण, अन्यथा शिल्पादिग्राहको गृह्यते, अन्ये तु लौकिकलोकोत्तरभेदमकृत्वा सामान्यत एनमपि द्रव्याचार्यं व्याचक्षते, यथा–शिल्पशास्त्रादिपरिज्ञाता, यथा शिल्पशास्त्रादिपरिज्ञाननिमित्तमाचार्यमाणो द्रव्याचार्य इति ॥ अधुना लोकोत्तरान् भावाचार्यान् प्रतिपादयति—

पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पगासंता । आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ॥ ९९४ ॥

पञ्चविधं–पञ्चप्रकारं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यभेदात्, आचारं–आङ् मर्यादायां चरणं चारः मर्यादया–कालनियमादिलक्षणया चार आचारः, उक्तं च–"काले विणए बहुमाणे उवहाणे"त्यादि, आचरन्तः सन्तोऽनुष्ठानरूपेण, तथा प्रभाषमाणा अर्थान्वाख्यानेन, तथा प्रत्युपेक्षणादिक्रियाद्वारेणाचारं दर्शयंतः सन्तो मुमुक्षुभिराचर्यन्ते–सेव्यन्ते येन कारणेन आचार्यास्तेन कारणेनोच्यन्ते ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयन्नाह—

आयारो नाणाई तस्सायरणा पभासणातो वा । जे ते भावायरिया भावायारोवउत्ता य ॥ ९९५ ॥

आचारो–ज्ञानादिः पञ्चप्रकारः तस्याचरणात् प्रभाषणात् वाशब्दाद् दर्शनाद्वा हेतोर्मुमुक्षुभिराचर्यन्ते–सेव्यन्ते ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'आचार्य' शब्दस्य प्रतिपादनम् एव वर्तते, मूल संपादने प्रत पृष्ठ-५४९ से ५५२ पर्यन्त: यत् "सिद्ध्-सौख्यं" मुद्रितं तत् मुद्रणदोष: मात्र ज्ञातव्य:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

भावाचार्या उच्यन्ते, एतच्चाचरणादि अनुयोगेऽपि सम्भवति यतस्तत आह–भावाचारोपयुक्ताश्च भावार्थमाचारो भावाचारस्तदुपयुक्ताश्च ॥

आयरियनमोक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्सातो । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाय ॥ ९९६ ॥
आयरियनमोक्कारो धन्नाण भवक्खयं करेंताण । हिययं अणुम्मुयंतो, विसोत्तियावारतो होइ ॥ ९९७ ॥
आयरियनमोक्कारो एवं खलु वन्नितो महत्थोत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ ९९८ ॥
आयरियनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, तइयं हवइ मंगलं ॥ ९९९ ॥

गाथाचतुष्टयमपि अर्हन्नमस्कारवदवसेयम्, विशेषस्तु सुगम एवेति ॥ उक्त आचार्यनमस्काराधिकारः, साम्प्रतमुपाध्यायनमस्कारावसरः, उपाध्याय इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, 'इङ् अध्ययने' उपपूर्वः, उपेत्य–समीपमागत्य अधीयते साधवः सूत्रमस्मादित्युपाध्यायः, स च नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तथा चाह—

नामंठवणादविए भावंमि चउव्विहो उवज्झातो । दव्वे लोइयसिप्पाइ निण्हगा वा इमे भावे ॥ १००० ॥

नामोपाध्यायः स्थापनोपाध्यायो द्रव्योपाध्यायो भावोपाध्यायश्चेत्येवं चतुर्विध उपाध्यायः, तत्र नामस्थापनोपाध्यायौ सुगमौ, द्रव्योपाध्यायो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्विधा–लौकिको लोकोत्तरश्च, तत्र लौकिकः शिल्पादिः, तच्चैवमुच्यते तत्परिज्ञानात् तदभदोपचारेण, अन्यथा शिल्पादिशास्त्राध्यापका गृह्यन्ते, लोकोत्तरा निह्नवाः, ते हि अभिनिवेशदोषेणैकमपि पदार्थमन्यथा प्ररूपयंतो मिथ्यादृष्टय एवेति द्रव्योपाध्यायाः, इमे–वक्ष्यमाणस्वरूपाः पुनर्भावोपाध्यायाः ॥ तानेवाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र चत्वार: निर्युक्ति-गाथा: (९९६-९९९) हारिभद्र-वृतौ संपादने स्वतन्त्ररूपेण न निर्दिष्टा: तत् कारणात् अत: गाथा-क्रमोऽपि न समान वर्तते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥ ५५० ॥

वारसंगो जिणक्खातो अज्झातो देसितो (कहितो हा०) बुहेहिं । तं उवइसंति जम्हा उवज्झाया तेण वुचंति १००१
द्वादशाङ्गः–आचारादिः, द्वादशाङ्गसद्भावात्, जिनाख्यातः–अर्हत्प्रणीतः अध्यायो, वाचनादिनिबन्धनत्वादिह सूत्रमेव गृह्यते, कथितो बुधैः–गणधरादिभिः, य इति गम्यते, तं स्वाध्यायमुपदिशन्ति वाचनारूपेण यस्मात्कारणात्तेनोपयन्ते उपाध्यायाः, उपेत्याधीयते यस्मादित्यन्वर्थोपपत्तेः ॥ साम्प्रतमागमशैल्या अक्षरार्थमधिकृत्योपाध्यायशब्दार्थमाह—
उत्ति उवयोगकरणे झत्ति य झाणस्स होइ निद्देसे । एएण होइ उज्झा एसो अन्नोऽवि पज्जातो ॥ १००२ ॥
उ इत्येतदक्षरं उपयोगकरणे वर्त्तते, झ इति चेदं ध्यानस्य निर्देशे भवति, ततः प्राकृतशैल्या एतेन कारणेन भवंति उज्झा, उपयोगपुरस्सरं ध्यानकर्त्तार इत्यर्थः, एषोऽन्योऽपि पर्यायः ॥ अथवा—
उत्ति उवयोगकरणे वत्ति य पावपरिवज्जणे होइ । झत्ति य झाणस्स कए उत्ति य ओसक्कणा कम्मे ॥ १००३ ॥
उ इत्येतदक्षरं उपयोगकरणे वर्त्तते, व इति पापस्य परिवर्जने भवति, झ इति ध्यानस्य कृते–करणे निर्दिश्यते, उ इति अवष्वष्कणा कर्म्मणीत्येतस्मिन्नर्थे, एषोऽत्र समुदायार्थः–उपयोगपूर्वकं पापपरिवर्जनतो ध्यानारोहणेन कर्मापनयन्तीत्युपाध्याया इति । अक्षरार्थाभावे हि पदार्थाभावः, पदस्य तत्समुदायरूपत्वादित्यक्षरार्थः प्रतिपत्तव्य इति ॥
उवज्झायनमोक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्सातो । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥ १००४ ॥
उवज्झायनमोक्कारो धन्नाण भवक्खयं करंताणं । हिययं अणुम्मुयंतो विसोत्तियावारओ होइ ॥ १००५ ॥
उवज्झायनमोक्कारो एवं खलु वन्निओ महत्थोत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ १००६ ॥

सिद्ध-सौख्यं

॥ ५५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र चत्वार: निर्युक्ति-गाथा: (१००४-१००७) हारिभद्र-वृतौ संपादने स्वतन्त्ररूपेण न निर्दिष्टा: तत् कारणात् अत: गाथा-क्रमोऽपि न समान वर्तते

*** अथ उपाध्याय शब्दस्य व्याख्या एवं तेषां नमस्काराणां फ़लम् प्रतिपाद्यते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

उवज्झायनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, चउत्थं हवइ मंगलं ॥ १००७ ॥

गाथाचतुष्टयमपि सामान्येनार्हन्नमस्कारवदवसेयम्, विशेषस्तु सुगम एव, इत्युक्त उपाध्यायनमस्काराधिकारः। अथ साधुरिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते–अभिलषितमर्थं साधयतीति साधुः, "कृवापाजी" त्यादिना उणप्रत्ययः, सच नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तथा चाह—

नामंठवणासाहू दव्वसाहू य भावसाहू य। दव्वंमि लोइयादी भावंमि य संजतो साहू ॥ १००८ ॥

नामसाधुः स्थापनासाधुः द्रव्यसाधुर्भावसाधुश्च, तत्र नामस्थापनासाधू सुगमौ, द्रव्यसाधुर्ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तः लौकिकादिस्त्रिविधः, तद्यथा–लौकिको लोकोत्तरः कुप्रावचनिकश्च, तत्र यो लोके शिष्टसमाचारः घटपटादिसाधको वा स लौकिकः, कुप्रवचनेषु निजनिजसमाचारसम्यक्परिपालनरतः कुप्रावचनिकश्च, तत्र यो लोके शिष्टसमाचारः घटपटादिसाधको वा स लौकिकः, कुप्रवचनेषु निजनिजसमाचारसम्यक्परिपालनरतः कुप्रावचनिकः, लोकोत्तरे निह्नवः, अन्यथा पदार्थप्ररूपणतस्तस्य मिथ्यादृष्टित्वात्, शिथिलव्रतो वा वेषमात्रधारणात्, भावे विचार्यमाणे साधुः संयतः–सम्यग् जिनाज्ञापुरस्सरं सकलसावद्यव्यापारादुपरतः ॥ सम्प्रति लौकिकादिद्रव्यसाधुप्रतिपादनार्थमाह—

घडपडरहमाईणि साहेंता होंति दव्वसाहू य। अहवावि दव्वभूया ते होंती दव्वसाहुत्ति ॥ १००९ ॥

घटपटरथादीनि, आदिशब्दात् गृहदेवकुलादीनां कुप्रवचने निजनिजसमाचाराणां च परिग्रहः, तान् साधयन्तो भवंति द्रव्यसाधवः, अभिलषितमर्थं साधयन्तीति साधवः इत्यन्वर्थघटनात्, मोक्षाङ्गताविरहतश्च द्रव्यरूपत्वात्, तत्र घटपटादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ साधु शब्दस्य व्याख्या एवं तेषां नमस्काराणां फ़लम् प्रतिपाद्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

साधका लौकिका द्रव्यसाधवः, कुप्रवचनक्रियासाधकाः कुप्रावचनिकाः साधवः, लोकोत्तरद्रव्यसाधुप्रतिपादनार्थमाह, अथवाऽपि द्रव्यभूताः अप्रधाना जिनाज्ञावहिर्भावात् साधवो भवन्ति द्रव्यसाधवः ॥ सम्प्रति भावसाधून् प्रतिपादयति—

निव्वाणसाहए जोगे, जम्हा साहेंति साहुणो । समा य सव्वभूएसु, तम्हा ते भावसाहुणो ॥ १०१० ॥

निर्वाणसाधकान् योगान्-सम्यग्दर्शनादिप्रधानान् व्यापारान् साधयन्ति साधवः, विहितानुष्ठानपरत्वात्, समाश्च सर्वभूतेषु, एतच्च योगप्राधान्यख्यापनार्थमुक्तम्, तस्मात् भवंति भावसाधवः ॥

किं पेच्छसि साहूणं तवं च नियमं च संजमगुणं वा ?। तो वंदसि साहूणं एअं मे पुच्छिओ साह ॥ १०११ ॥

किं साधूनां प्रेक्षसे त्वं तपो वा-अनशनादिकं नियमं वा-द्रव्याभिग्रहादिकं संयमगुणं वा-पञ्चाश्रवविरमणादिकं ?, ततो वन्दसे साधून्?, सूत्रे षष्ठी द्वितीयार्थे, अथवा 'माषाणामश्नीया' दित्यादाविव क्रियायोगेऽपि सम्बन्धविवक्षया षष्ठी, एतन्मे पृष्टः सन् साधय-कथय ॥ एवमुक्ते गुरुराह—

विसयसुहनियत्ताणं विसुद्धचारित्तनियमजुत्ताणं । तच्चगुणसाहगाणं सहायकिच्चुज्जुआण नमो ॥ १०१२ ॥

सर्वत्र सूत्रे षष्ठी चतुर्थ्यर्थे प्राकृतत्वात्, 'छट्ठिविभत्तीए भन्नइ चउत्थी' ति वचनात्, ततोऽयमर्थः-विषयसुखनिवृत्तेभ्यो-मनोज्ञरूपालोकनादिप्रसक्तिविरतेभ्यः, तथा विशुद्धं यच्चारित्रं-प्राणातिपातादिविरमणपरिणामात्मकं 'चारित्तं परिणामो जीवस्स सुहो य होइ नायव्वो' इति वचनात्, यश्च नियमो विचित्रो-द्रव्याभिग्रहादिस्ताभ्यां युक्तेभ्यः, तथा तथ्याः-तात्त्विका ये गुणाः-क्षान्त्यादयस्तेषां साधकेभ्यः, तथा साधनानि-मोक्षसाधनानि यानि कृत्यानि-प्रत्युपेक्षणादीनि तेषूद्यच्छंते तेभ्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

नमः, किमुक्तं भवति ?, विषयसुखनिवृत्त्यादीन् मोक्षसाधकान् परमगुणानेतेषु प्रेक्षामहे तत एतान्नमस्कुर्म्म इति ॥ तथा—

असहाये सहायत्तं करेंति मे संजमं करेंतस्स । एएण कारणेणं नमामऽहं सव्वसाहूणं ॥ १०१३ ॥

परमार्थसाधनप्रवृत्तौ सत्यां जगत्यसहाये सति, प्राकृतशैल्या वा षष्ठ्यर्थे सप्तमी, असहायस्य मम संयमं कुर्वतः सतः सहायत्वं कुर्वन्ति, अनेन कारणेन नमाम्यहं सर्वसाधूनामिति ॥

साहूण नमोक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्सातो । भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥ १०१४ ॥

साहूण नमुक्कारो धन्नाण भवक्खयं करेंताणं । हिययं अणुम्मुयंतो विसोत्तियावारओ होइ ॥ १०१५ ॥

साहूण नमुक्कारो एवं खलु वन्नितो महत्थोत्ति । जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ १०१६ ॥

साहूण नमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पंचमं हवइ मंगलं ॥ १०१७ ॥

इदं गाथाचतुष्टयमप्यर्हन्नमस्कारवदवसेयं, विशेषतस्तु सुखोन्नेयम् ॥

एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १०१८ ॥

इयं गाथा पाठसिद्धा, तदेवमुक्तं वस्तुद्वारम् । अधुना निक्षेपद्वारप्रतिपादनार्थमाह—

नवि संखेवो न वित्थारो संखेवो दुविह सिद्ध–साहूणं । वित्थरओऽणेगविहो न जुज्जई पंचहा तम्हा ॥ १०१९ ॥

इह सूत्रं द्विधा–सङ्क्षेपवत् विस्तरवच्च, तत्र सङ्क्षेपवत् सामायिकसूत्रं, विस्तरवच्चतुर्दश पूर्वाणि, इदं पुनः 'नमो अरहंताण'-मित्यादि, नमस्कारसूत्रमुभयातीतम्, तथाहि–नायं सङ्क्षेपो नापि विस्तरः, अपिशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, तथाहि–'संखेवो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र चत्वार: निर्युक्ति-गाथा: (१०१४-१०१७) हारिभद्र-वृतौ संपादने स्वतन्त्ररूपेण न निर्दिष्टा: तत् कारणात् अत: गाथा-क्रमोऽपि न समान वर्तते

*** अत्र निर्युक्ति-गाथा १०१८ "एसो पंचनमुक्कारो" हारिभद्र-वृतौ संपादने न दृश्यते, पूज्यपाद् आचार्य आनंदसागसूरीश्वरेण तत् संपादने पादनोंध मध्ये . एषा गाथाया: उल्लेख कृत्वा एका नोंध अकृत:- "वृतौ अंतर्गत: एषा गाथा न व्याख्यायिता"

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

दुविह' इति, यद्ययं सङ्क्षेपः स्यात् ततस्तस्मिन् सति द्विविध एव नमस्कारो भवेत्, सिद्धसाधुभ्यामिति, परिनिवृत्तार्हदादीनां सिद्धशब्देन ग्रहणात् संसारिणां च साधुशब्देन, तथा च न ते संसारिणः सर्व एव साधुत्वमतिलङ्घ्य वर्त्तन्ते, तदभावे शेषगुणानामसम्भवादिति, अथायं विस्तरस्तदप्यचारु, यतो विस्तरतोऽनेकविधः प्राप्नोति, तथा च ऋषभाजितसम्भवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभेत्यादिमहावीरवर्द्धमानस्वामिपर्यन्तेभ्यः चतुर्विंशतयेऽर्हद्भ्यः, तथा सिद्धेभ्यो विस्तरेणानन्तरसिद्धेभ्यः परस्परसिद्धेभ्यः, अनन्तरसिद्धेभ्योऽपि तीर्थकरसिद्धेभ्योऽतीर्थकरसिद्धेभ्य इत्यादि, परम्परसिद्धेभ्योऽपि प्रथमसमयसिद्धेभ्यो द्वितीयसमयसिद्धेभ्यो यावदनन्तसमयसिद्धेभ्यः, तथा तीर्थलिंगचारित्रप्रत्येकबुद्धादिविशेषणविशिष्टेभ्यः तीर्थकरसिद्धेभ्यः अतीर्थकरसिद्धेभ्यः तीर्थसिद्धेभ्य इत्येवमनन्तशो विस्तरतः, यतश्चैवमतः पक्षद्वयमप्यङ्गीकृत्य पञ्चविधः—पञ्चप्रकारो न युज्यते नमस्कार इति, गतमाक्षेपद्वारम् । अधुना प्रसिद्धिद्वारमुच्यते, तत्र यत्तावदुक्तं 'न सङ्क्षेपत' इति तदयुक्तं, सङ्क्षेपात्मकत्वात्, ननु स कारणवशात् कृतार्थाकृतार्थपरिग्रहेण सिद्धसाधुमात्र एवोक्तः, सत्यमुक्तः, अयुक्तस्त्वसौ, कारणान्तरस्यापि भावात्, तथोक्तमेवानन्तरवस्तुद्वारे, अथवा वक्ष्यामः—'हेउ निमित्त' मित्यादिना, सति च द्वैविध्ये सकलगुणनमस्कारासभवात् एकपक्षस्य व्यभिचारित्वात्, तथा चाह—

अरिहंताई नियमा साहू साहू य तेसु भइयवा । तम्हा पंचविहो खलु हेउनिमित्तं हवइ सिद्धो ॥ १०२० ॥

अर्हदादयो नियमात् साधवः, साधुगुणानामपि तत्र सम्भवात्, साधवस्तु तेषु—अर्हदादिषु भक्तव्याः—विकल्पनीयाः, यतस्ते साधवो न सर्वेऽर्हदादयः, किन्तु ?, केचिदर्हन्त एव केचित् केवलिनः केचिदाचार्याः सम्यक्सूत्रार्थविदः केचि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

दुपाध्यायाः सूत्रविद एव केचिदेतद्व्यतिरिक्ताः शिष्यकाः साधव एव, न अर्हदादय इति, तत्र एकपदव्यभिचारान्न तुल्याभिधानतेति, न च साधुनमस्कारकरणेऽर्हदादिनमस्कारफलावाप्तिः, सामान्येन प्रवृत्तेः, तथा चात्र प्रयोगः–साधुमात्रनमस्कारो विशिष्टार्हदादिगुणनमस्कृतिफलप्रापणसमर्थो न भवति, तत्सामान्याभिधाननमस्कारवत्–मनुष्यत्वमात्रनमस्कारवत् जीवमात्रनमस्कारवद्वा, उक्तं च–"जइवि जइग्गहणातो होइ कहवि गहणमरिहयाईणं। तहवि न तग्गुणपूया जइगुणसामन्नपूयातो ॥१॥" तस्मात् पञ्चविध एव खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् नमस्कारो भवति, व्यक्त्यपेक्षया विस्तरेण कर्त्तुमशक्यत्वात्, तथा हेतुनिमित्तं भवति सिद्धः पञ्चविधो नमस्कारः, तत्र हेतुर्नमस्कारार्हत्वे य उक्तः 'मग्गे अविप्पणासो' इत्यादिकः तन्निमित्तं–तस्मादुपाधिभेदात् भवति पञ्चविधः सिद्धः ॥ गतं प्रसिद्धिद्वारम्, अधुना क्रमद्वारप्रतिपादनार्थमाह—

पुव्वाणुपुव्वि न कमो नेच य पच्छाणुपुव्वि एस भवे। सिद्धाईआ पढमा बीआए साहुणो आई ॥ १०२१ ॥

इह क्रमस्तावद् द्विविधः–पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी च, अनानुपूर्वी तु क्रम एव न भवति, असमञ्जसत्वात्, तत्रायमर्हदादिक्रमः पूर्वानुपूर्वी न भवति, सिद्धाद्यनभिधानात्, एकान्तकृतकृत्यत्वेनार्हन्नमस्कार्यत्वेन च सिद्धा एव हि प्रधानं, प्रधानस्य चाभ्यर्हितत्वेन पूर्वमभिधानमिति भावार्थः, तथा नैव च पश्चानुपूर्वी एष क्रमो भवेत्, साध्वाद्यनभिधानात्, इह सर्वपाश्चात्याः अप्रधानत्वात् साधवः, ततश्च तानभिधाय यदि पर्यन्ते सिद्धाभिधानं स्यात् स्यात् तदा पश्चानुपूर्वीति, तथा चामुमेवार्थं प्रतिपादयति–सिद्धादिका प्रथमा पूर्वानुपूर्वी, भावना प्रतिपादितैव, द्वितीयायां तु–पश्चानुपूर्व्या साधव आदौ, युक्तिरत्रापि प्रागभिहितैव, अत्र प्रतिविधीयते–पूर्वानुपूर्व्येव एष क्रमः, तथा च पूर्वानुपूर्वीत्वमेव प्रतिपादयन्नाह—

आ. सू. ९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआवश्यकमलयगिरीयवृत्तौ नमस्कारे ॥५५३॥

अरिहंतुवएसेणं सिद्धा नज्जंति तेण अरिहाई। न य कोइवि परिसाए पणमित्ता पणमई रण्णो ॥ १०२२ ॥

इह भगवदर्हदुपदेशेन-आगमेन सिद्धा ज्ञायन्ते-अवगम्यन्ते प्रत्यक्षादिगोचरातिक्रान्ताः संतो यतस्तेन अर्हदादिः, पूर्वानुपूर्वी क्रम इति गम्यते, अत एव चार्हतामभ्यर्हितत्वं, कृतकृत्यत्वं पुनरल्पकालव्यवहितत्वात् प्रायः समानमेव, अर्हन्नमस्कार्यत्वमप्यसाधनं, अर्हन्नमस्कारपूर्वकसिद्धत्वयोगेनार्हतामपि वस्तुतः सिद्धनमस्कार्यत्वात्, प्रधानत्वादिति भावना, आह-यद्येवमाचार्यादिस्तर्हि क्रमः प्राप्नोति, अर्हतामपि तदुपदेशेन संवेदनात्, उच्यते, इहार्हत्सिद्धयोरेवायं वस्तुतस्तुल्यबलयोर्विचारः श्रेयान्, परमनायकभूतत्वात्, आचार्यास्तु परिषत्कल्पा वर्त्तन्ते, नापि कश्चित्परिषदं प्रणम्य-प्रणामं कृत्वा पश्चात् प्रणमति राज्ञः पदानित्यतः अचोद्यमेतत् ॥ उक्तं क्रमद्वारम्, अधुना प्रयोजनफलप्रदर्शनार्थमाह—

इत्थ य पओअणमिणं कम्मक्खयो मंगलागमो चेव। इहलोअ-पारलोइअ दुविहफलं तत्थ दिट्ठंता ॥ १०२३ ॥

अत्र च-नमस्कारकरणे प्रयोजनमिदम्, यदुत करणकाल एवाक्षेपेण कर्म्मक्षयो-ज्ञानावरणीयादिकर्म्मापगमः अनन्तपुद्गलापगममन्तरेण भावतो नकारमात्रस्याप्यप्राप्तेः, तथा मङ्गलागमश्चैव करणकालभावीति, तथा कालान्तरभावि पुनरिहलौकिकपारलौकिकभेदभिन्नं द्विविधं-द्विप्रकारं फलं, तत्र च दृष्टान्ता वक्ष्यमाणलक्षणाः ॥

इहलोएँ अत्थकामा आरोग्गं अभिरई य निप्फत्ती। सिद्धी य सग्गसुकुले पच्चायाई य परलोए ॥ १०२४ ॥

इहलोके अर्थकामौ भवतः, तथा आरोग्यं-नीरुजत्वं भवति, एतेऽर्थादयः शुभविपाकिनोऽस्य भवन्ति, तथा चाह-अभिरतिश्च भवति, आभिमुख्येन रतिरभिरतिः, इहलोके अर्थादिभ्यो भवति, परलोके च तेभ्य एव शुभानुबन्धित्वा-

नमस्कारे क्रमः प्रयोजनफले च

॥५५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अरिहंतादे: नमस्कार-करणे क्रम-प्रयोजन दर्शयते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

निष्पत्तिः, पुण्यस्येति गम्यते, अथवाऽभिरतेश्च निष्पत्तिरित्येकवाक्यतैव, तथा सिद्धिश्च–मुक्तिश्च, तथा स्वर्गः सुकुलप्रत्यातिश्च परलोके इति–पारलौकिकं फलम् ॥ इह च सिद्धिश्चेत्यादिकः क्रमः प्रधानफलापेक्षी उपायख्यापनपरश्च, तथाहि–विरला एवैकभवसिद्धिमासादयन्ति, अनासादयन्तश्चाविराधकाः स्वर्गसुकुलोत्पत्तिमन्तरेण नावस्थानान्तरमनुभवन्तीति ॥ सम्प्रति यथाक्रममेवार्थादीनधिकृत्योदाहरणानि प्रतिपादयति—

इहलोगम्मि तिदंडी १ सादिवं २ माउलिंगवणमेव ३ । परलोइ चंडपिंगल ४ हुंडिअजक्खो ५ य दिट्ठंता ॥ १०२५ ॥

इहलोके नमस्कारात् फलसम्पत्तौ, अत्रोदाहरणम्-त्रिदंडी, एगस्स सावगस्स पुत्तो धम्मं न लएइ, सो य सावगो कालगतो, सो वियाररहितो एवं चेव विहरइ, अन्नया तेसिं घरसमीवे परिव्वायगो आवासितो, सो तेण समं मित्तिं करेइ, अन्नया भणइ–आणेहि निरुवहयं अणाहमडयं जेण ते ईसरियं करेमि, तेण मग्गियं, लद्धो ओबद्धतो मणुस्सो, सो मसाणं नीतो, जं च तत्थ पाउग्गं तं च नीयं, सो य दारगो पियरेण नमोक्कारं सिक्खावितो, भणितो य–जाहे बीहेज्जसि ताहे एयं पढेज्जासि, विज्जा एसा, सो य तस्स मयगस्स पुरतो ठवितो, तस्स मयगस्स हत्थे असी दिन्नो, परिव्वायगो विज्जं परियत्तेइ, उट्ठेउमारद्धो वेयालो, सो दारगो भीतो, हियएण नमोक्कारं परियत्तेइ, सो वेयालो पडितो, पुणोवि जवइ, पुणोवि उट्ठवितो, सुट्ठुतरागं परियट्टेइ, पुणोवि पडितो, तिदंडी भणइ–किंचि जाणसि ?, भणइ–किंपि न जाणामि, पुणोवि जवइ तइयवारं, पुणो नमोक्कारं परियत्तेइ, ताहे वाणमंतरेण रुसिऊण तं खग्गं गहाय सो तिदंडी दो खंडीकतो, सुवण्णखोडी जाता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** नमस्कार-करणात् यत् फ़लम् प्राप्यते तत् दर्शयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

अंगोवगाणि य से जुयजुयाइं काउं सवरत्तिं वूढो, ईसरो नमोक्कारपभावेण जातो, जइ न होंतो नमोक्कारो तो वेयालेण मारिज्जंतो, सो सुवण्णं होंतो १ ॥

कामनिप्फत्ती नमोक्कारातो, कहं ?, एगा सावित्रा, तीसे भत्ता मिच्छादिट्ठी, अण्णं भज्जं आणेउं मग्गेइ तीसे तणएण न लहइ, ससत्तगंति, चिंतेइ–किह मारेमि ?, अण्णया कण्हसप्पो घडए छुभित्ता आणितो, संगोवितो, जिमितो, भणइ–आणेह पुप्फाणि अमुगे घडए ठवियाणि, सा पविट्ठा, अंधकारंति नमोक्कारं चिंतेइ, जइवि मे कोइ खाएज्जा तोवि मे मरंतीए नमोक्कारो न नस्सिहितीति, छूढो हत्थो, सप्पो देवयाए अवहितो, पुप्फमाला कया, सा गहिया दिन्ना य से, सो संभंतो चिंतेइ–अण्णाणि एयाणि पुप्फाणि, पुच्छइ य, तीए कहियं–ततो चेव घडातो आणीयाणि, गतो तत्थ, पेच्छइ घडगं पुप्फगंधं च, नवि तत्थ कोइ सप्पो, ततो आउट्टो पायवडितो सव्वं कहेइ, खामेइ य, पच्छा सा चेव घरसामिणी जाया, एवं कामावहो नमोक्कारो २ ॥

आरोग्गाभिरईए उदाहरणं–एगं नगरं नदीए तीरे, खरकम्मिएण सरीरचिंतानिग्गतेणं नदीए वुज्झंतं माउलिंगं दिट्ठं, रायाए उवणीयं, सूयस्स हत्थे दिन्नं, तेण जिमियस्स उवणीयं, पमाणेण अइरित्तं, गंधेण वण्णेण य, तस्स मणूसस्स राया तुट्ठो, दिण्णा भोगा, राया भणइ–अणुनदीए मग्गह, पत्थयणं गहाय पुरिसा गया, दिट्ठो वणसंडो, जो फलाणि गेण्हइ सो मरइ, रण्णो कहियं, भणइ–अवस्सं आणेयव्वाणि, गोलगपडिया वच्चंतु, एवं गया आणेंति, तत्थ जस्स सो गोलगो आगतो सो एगो वणे पविसइ, पविसित्ता फलाणि बाहिं छुभइ, ततो आणेंति, जो छुहइ सो मरइ, एवं वच्चंते काले साव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गस्स परिवाडी जाया, तत्थ गतो चिंतेइ–इमो विराहियसामन्नो कोवि होज्जत्ति निसीहियं भणित्ता नमोक्कारं पढंतो दुक्कइ, वाणमंतरस्स चिंता जाया–कत्थ मण्णे एयं सुयपुवं ?, णायं, संबुद्धो, वंदइ, भणइ–अहं तत्थेव आहरामि, गतो, रण्णो कहियं, रण्णा सम्माणितो, तस्स ओसीसए दिणे २ ठवेइ, एवं तेण अभिरई भोगा य लद्धा, जीवियातो य किं अन्नं आरोग्गं ?, रायावि परितुट्ठोत्ति ३ ॥

परलोगेवि नमोक्कारफलं–वसंतपुरे नयरे जियसत्तू राया, तस्स गणिया सावित्रा, सा चंडपिंगलेण समं वसति, अन्नया कयाइ तेण रन्नो घरं हयं, हारो नीणितो, भीएहिं संगोविज्जइ, अण्णया उज्जाणियाए गमणं, सव्वातो विभूसियातो गणियातो वच्चंति, तीए सव्वातो अतिसयामित्ति सो हारो आविद्धो, जीसे देवीए सो हारो तीसे दासीए सो नातो, कहियं रन्नो, सा केण समं वसइ ?, कहिए चंडपिंगलो गहितो, सूले भिन्नो, एतीएवि चिंतियं–मम दोसेण मारिउत्ति, सा से नमोक्कारं देइ, भणइ य–निदाणं करेहि जहा–एयस्स रण्णो पुत्तो आयामित्ति, कयं निदाणं, अग्गमहिसीए उदरे उववन्नो, दारगो जातो, सा सावित्रा कीलावणधाती जाया, अण्णया चिंतेइ–कालो समो गब्भस्स मरणस्स य, होज्जा कयाइ, रमावेंती भणइ–मा रोव चंडपिंगला इति, जाई सरिया, संबुद्धो, राया मतो, सो राया जातो, सुचिरेण कालेण दोवि पवइयाणि, एवं सुकुलपच्चायाती तंमूलागं च सिद्धिगमणमिति ॥ अहवा विइयं उदाहरणं–महुराए नयरीए जिणदत्तो सावगो, तत्थ हुंडितो चोरो, नगरं परिमुसइ, सो कयाइ गहियो, सूले भिन्नो, रण्णा भणियं–पडियरह बिइज्जयावि से नज्जिहिंति, ततो रायमणूसा पडिचरंति, सो जिणदत्तो सावगो तस्स नाइदूरेण वीतीवयइ, सो चोरो भणइ–सावग ! तुममणुकंपगोऽसि, तिसाइतोऽहं, देहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मम पाणियं जा मरामि, सावगो भणइ–इमं नमोक्कारं पढ, जा ते आणेमि पाणियं, जइ वीसारेहिसि तो ते आणीयंपि न देमि, सो ताए लोलयाए पढइ, सावगोवि पाणियं गहाय आगतो, एतं वेलं पाहामोत्ति, णमोक्कारं धोसंतस्स विणिग्गतो जीवो, जक्खो उववन्नो, सावगो तेहिं मणूसेहिं गहितो चोरभत्तदायगोत्ति, रण्णो निवेइयं, भणइ–एयंपि सूले भिंदह, आघायणं निज्जइ, जक्खो ओहिं पउंजइ, पेच्छइ सावगं, अप्पणो य सरीरं, ततो पत्थ(ब)यं उप्पाडिऊण नयरस्स उवरिं ठवइ, भणइ य–सावयं न याणह?, खामेह, मा मे अन्नहा सवे चूरामि, ततो मुक्को खामितो, विभूईए नयरं पवेसितो, नयरस्स पुवेण जक्खस्स आययणं कयं, एवं नमोक्कारेण फलं लब्भइ ॥ उक्ता नमस्कारनिर्युक्तिः ॥ सम्प्रति सूत्रोपन्यासार्थः, प्रत्यासत्तियोगतः परमार्थेन सूत्रस्पार्शिकनिर्युक्तिगतामेव गाथामाह—

नंदिमणुओगदारं विहिवदुवग्घाइअं च नाऊणं । काऊण पंचमंगलमारंभो होइ सुत्तस्स ॥ १०२६ ॥

नन्दिश्चानुयोगद्वाराणि च नन्द्यनुयोगद्वारं, समाहारत्वादेकवचनं, विधिवत्–यथावत् यथाविधि उपोद्घातं च उद्देसे निद्देसे य इत्यादिलक्षणं ज्ञात्वा–विज्ञाय, पाठान्तरं भणित्वा, तथा कृत्वा पञ्च मङ्गलानि, नमस्कारमित्यर्थः, किं ?, आरम्भो भवति सूत्रस्य, इह पुनर्नन्द्याद्युपन्यासः किल विधिनियमख्यापनार्थः, नन्द्यादि ज्ञात्वैव भणित्वैव वा सूत्रस्यारम्भो भवति, नान्यथेति, तथा उपोद्घातः सकलप्रवचनसाधारणत्वेन प्रधानः, प्रधानस्य च सामान्यग्रहणेऽपि भेदोपन्यासो भवति, यथा ब्राह्मणा आयाता वशिष्टोऽप्यायात इति अनुयोगद्वारग्रहणेन तस्य ग्रहणेऽपि पृथगुपन्यासः ॥ सम्बन्धान्तरप्रतिपादनायैवाह—

सूत्रारंभ-कालः

॥ ५५५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

कयपंचनमोक्कारो करेइ सामाइयंति सोऽभिहितो। सामाइयंगमेव य जं सो सेसं अतो वोच्छं ॥ १०२७ ॥

कृतः पञ्चनमस्कारो येन स तथाविधः, शिष्यः सामायिकं करोतीत्यागमः, स च पञ्चनमस्कारोऽभिहितो यस्मादसौ नमस्कारः सामायिकाङ्गमेव, सा च सामायिकाङ्गता प्रागेवोक्ता, अत ऊर्ध्वं शेषं सूत्रं वक्ष्ये ॥ तच्चेदं—

करेमि भंते! सामाइयं सवं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ १ ॥ (सूत्रं)

इदं च सूत्रं सूत्रानुगम एव प्राप्तावसरेऽहीनाक्षरादिगुणोपेतमुच्चारणीयम्, तद्यथा—अहीनाक्षरमनत्यक्षरं अव्याविद्धाक्षरमस्खलितममिलितमव्यत्यानेडितं प्रतिपूर्णं प्रतिपूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रमुक्तं वाचनोपगत'मिति, अमूनि च पदानि प्राग् व्याख्यातत्वात् न व्याख्यायन्ते, एवंरूपे च सूत्रे उच्चरिते सति केषाञ्चिद्भगवतां साधूनां केचन अर्थाधिकारा अधिगता भवंति, केचन त्वनधिगताः, ततश्चानधिगताधिगमनाय व्याख्या प्रवर्त्तते, तल्लक्षणं चेदम्—संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तंत्रस्य षड्विधा ॥ १ ॥ अस्खलितपदोच्चारणं संहिता, अथवा परः सन्निकर्षः संहिता, यथा—करेमि भंते! सामाइयमित्यादि, जाव वोसिरामित्ति, पदं च पञ्चधा, तद्यथा—नामिकं नैपातिकं औपसर्गिकमाख्यातिकं मिश्रं च, तत्र अश्व इति नामिकं, खल्विति नैपातिकं, परीत्यौपसर्गिकं, धावतीत्याख्यातिकं, संयत इति मिश्रं, अथवा द्विविधं पदं—स्याद्यन्तं पदं तिबाद्यंतं च, अत्र पञ्चविधानि द्विविधानि वा पदानि, तद्यथा—करोमि भयान्त!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र अध्ययनं -१- 'सामायिकं' आरभ्यते ***

*** अत्र 'सामायिक'-सूत्रस्य आरंभ: एवं तस्य व्याख्या क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५५६ ॥

सामायिकं सर्वं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमपि अन्यं न समनुजाने, तस्य भयान्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानमुत्सृजामीति पदानि। अधुना पदार्थः, स च चतुर्विधः, तद्यथा–कारकविषयः समासविषयः तद्धितविषयो निरुक्तिविषयश्च, तत्र कारकविषयो यथा पचतीति पाचकः, समासविषयो यथा राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः, तद्धितविषयो यथा वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः, निरुक्तिविषयो यथा भ्रमति च रौति च भ्रमरः, अत्रापि 'डुकृञ् करणे' इत्यस्य मिप्रत्ययान्तस्य 'कृञ्ग्रतनादेरु' रिति उकारे गुणे च कृते करोमीति भवति, अभ्युपगमश्चास्यार्थः, एवं प्रकृतिप्रत्ययविभागः सर्वो वक्तव्यः, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्नोच्यते, भयं–प्रतीतं वक्ष्यामश्चोपरिष्टात्, अन्तो–विनाशः, भयस्यान्तो भयान्तः, अयमेव पदविग्रहः, पदपृथक्करणं पदविग्रहः, तस्य सम्बोधनं भयन्तेति, सामायिकपदार्थः पूर्ववत्, सर्वमित्यपरिशेषवाची शब्दः, अवद्यं–पापं, सहावद्येन यस्य येन वा स सावद्यः तं, सपापमित्यर्थः, योगो–व्यापारस्तं, प्रत्याख्यामि, प्रतिशब्दः प्रतिषेधे, आङ् आभिमुख्ये, ख्या प्रकथने, ततः प्रत्याख्यामीति किमुक्तं भवति ?,–सावद्ययोगस्य प्रतीपमभिमुखं ख्यापनं करोमि इति, अथवा पच्चक्खामीति प्रत्याचक्षे इति शब्दसंस्कारः, 'चक्ष व्यक्तायां वाचि' अस्य प्रत्याङ्पूर्वस्य प्रयोगः, प्रत्याचक्षे इति कोऽर्थः ?–प्रतिषेधस्यादरेणाभिधानं करोमि, यावज्जीवयेत्यत्र यावच्छब्दः परिमाणमर्यादाऽवधारणवचनः, तत्र परिमाणे यावन्मम जीवनपरिमाणं तावत्प्रत्याख्यामीति, मर्यादायां यावज्जीवनमिति मरणं मर्यादीकृत्य आरात्, न मरणकालमात्र एवेति, अवधारणे यावत् जीवनमेव तावत् प्रत्याख्यामि, न तस्मात् परत इत्यर्थः, जीवनं जीवेत्ययं क्रियाशब्दः परिगृह्यते, तया, अथवा प्रत्याख्यानक्रिया परिगृह्यते, यावज्जीवो यस्यां सा

सामायिक व्याख्या

॥ ५५६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

यावज्जीवा तया, त्रिविधमिति तिस्रो विधा यस्य सावद्ययोगस्य स त्रिविधः, स च प्रत्याख्येयत्वेन कर्म्म सम्पद्यते, कर्म्मणि च द्वितीया विभक्तिः, अतस्तं त्रिविधं मनोवाक्कायव्यापारलक्षणं कायवाङ्मनःकर्म्म योग' (तत्त्वा अ. ६ सू १) इति वचनात्, 'त्रिविधेने'ति करणे तृतीया, मनसा वाचा कायेन, तत्र 'बुधी मनी ज्ञाने' मननं मन्यते वाऽनेनेति मनः, औणादिकोऽसुप्रत्ययः, तच्चतुर्द्धा, नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात्, नामस्थापने सुगमे, द्रव्यमनो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं तद्योग्यपुद्गलमयं, भावमनो मंता जीव एव, 'वच परिभाषणे' वचनं उच्यते इति वाक्, सापि चतुर्विधा नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात्, तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्यवाक् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता शब्दपरिणामयोग्याः जीवपरिगृहीताः १ भाववाक् पुनस्त एव पुद्गलाः शब्दपरिणाममापन्नाः, तथा 'चिञ् चयने' चयनं चीयते वा कायः 'चित्युपसमाधानावसथदेहे कश्चादि' रिति घञ्, चकारात् ककारः, पुद्गलानां चयात् पुद्गलानामेवावयवरूपतया समाधानात् जीवस्य निवासात् प्रतिक्षणं केषाञ्चित्पुद्गलानां क्षरणात् कायः–शरीरं, सोऽपि नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्धा, तत्र नामस्थापने प्रतीते, द्रव्यकायो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तः शरीरत्वयोग्या अगृहीतास्तत्स्वामिना वा जीवेन मुक्ता यावत् तं परिणामं न मुञ्चंति तावद् द्रव्यकायः, भावकायस्तु तत्परिणामपरिणता जीवबद्धा जीवसंयुक्ताश्च पुद्गलाः, अनेन त्रिविधेन करणेन त्रिविधं पूर्वाधिकृतं सावद्यं योगं न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि–न अनुमन्येऽहमिति, तस्येत्यधिकृतस्य सावद्ययोगस्य (भयान्त इति पूर्ववत्) प्रतिक्रमामि–निवर्त्ते निन्दामि–जुगुप्से, गर्हे इति स एवार्थः, किन्तु आत्मसाक्षिकी निन्दा गुरुसाक्षिकी गर्हेति, किं जुगुप्से इत्यत आह–आत्मानम्–अतीतसावद्ययोगकारिणं, व्युत्सृजामि–वि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५५७ ॥

विधार्थो विशेषार्थो वा विशब्दः, उच्छब्दो भृशार्थः, सृजामि–त्यजामि, विविधं विशेषेण भृशं त्यजामीति भावः, एवं तावत्पदार्थपदविग्रहौ यथासम्भवमुक्तौ, अधुना चालनाप्रत्यवस्थाने वक्तव्ये, अत्रान्तरे सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिरुच्यते, स्वस्थानत्वात्, आह च निर्युक्तिकारः—

अक्खलिअसंहिआई वक्खाणचउक्कए दरिसिअम्मि । सुत्तप्फासिअनिज्जुत्ति–वित्थरत्थो इमो होइ ॥ १०२८ ॥

अस्खलिते– अस्खलितादौ सूत्रे उच्चरिते संहितादौ व्याख्यानचतुष्टये दर्शिते सति सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिविस्तरार्थोऽयं भवतीति ॥ तमेव दर्शयति—

करणे भए अ अंते सामाइअ सबए अवज्जे अ । जोगे पच्चक्खाणे जावज्जीवाइ तिविहेणं ॥ १०२९ ॥

'करणे' करणशब्दे, एवं भयशब्दे अन्तशब्दे सामायिकशब्दे सर्वशब्देऽवद्यशब्दे योगशब्दे प्रत्याख्यानशब्दे यावज्जीवशब्दे त्रिविधेनेतिशब्दे च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्भवति, सा च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिरनुगमरूपा सूत्रालापकन्यासपूर्वकेति प्रथमतः करणनिक्षेपदर्शनायाह—

नामंठवणादविए खित्ते काले तहेव भावे अ । एसो खलु करणस्स उ निक्खेवो छव्विहो होइ ॥ १५२ ॥ (भा.)

'नामे'ति नामकरणं स्थापनाकरणं द्रव्यकरणं क्षेत्रकरणं कालकरणं भावकरणं च एषः–एवंस्वरूपः खलु करणस्य निक्षेपः षड्विधो भवति ॥ तत्र नामस्थापने क्षुण्णे, सम्प्रति द्रव्यकरणप्रतिपादनायाह—

जाणगभविअइरित्तं सन्नानोसन्नओ भवे करणं । सन्ना कडकरणाई नोसन्ना वीसस–पओगे ॥ १५३ ॥ (भा.)

सूत्रपदनिक्षेपाः करणाधिकारः

॥ ५५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

इह यथासम्भवं द्रव्यकरणशब्दस्य व्युत्पत्तिः–द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्ये वा करणं द्रव्यकरणमिति, द्रव्यकरणं द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतः करणशब्दार्थज्ञाता तत्र चानुपयुक्तो, नोआगमतस्त्रिधा–ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदात्, तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरे प्रतीते, ज्ञभव्यातिरिक्तं–ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्विधा–'सन्नानोसन्नओ भवे करण'मिति, संज्ञाकरणं नोसंज्ञाकरणं च, तत्र संज्ञाकरणं कटकरणादि, आदिशब्दात् पेलुकरणादिपरिग्रहः, पेलुशब्देन रुतपूणिका अभिधीयते, अयमत्र भावार्थः–कटनिर्वर्त्तकमयोमयं चित्रसंस्थानं पाइल्लकादि तथा रुतपूणिकानिर्वर्त्तकं शलाकाशल्यकाङ्गरुहादि संज्ञाद्रव्यकरणम्, अन्वर्थोपपत्तेः संज्ञाविशिष्टं द्रव्यस्य करणं संज्ञाद्रव्यकरणं, आह–इदं नामकरणमेव पर्यायमात्रतः संज्ञाकरणम्, अतो न कश्चिद्विशेषः, तदयुक्तं, नामकरणमिहाभिधानमात्रं करणमित्यक्षरत्रयात्मकं परिगृह्यते, संज्ञाकरणं तु करणादिसंज्ञाविशिष्टं कटादेर्निर्वर्त्तनाय करणं ततो महान् विशेषः, आह च भाष्यकारः–सन्नानामंति मई तन्नो नामं जमभिहाणं ॥ जं वा तदत्थविकले कीरइ दव्वं तु दवणपरिणामं । पेलुकरणादि न हि तं, तदत्थसुन्नं नवा सद्दो ॥ १ ॥ जइ न तदत्थविहीणं, तो किं दव्वकरणं जतो तेणं । दव्वं कीरइ सन्नाकरणंतिय करणरूढीतो ॥ २ ॥ आसामर्द्धतृतीयगाथानामयं सङ्क्षेपार्थः–ननु संज्ञा नामेत्यनर्थान्तरं, ततः संज्ञाकरणनामकरणयोर्न कश्चिद्विशेषः, तदेतन्न, यस्मात् करणमित्यक्षरत्रयात्मकमभिधानमात्रं नाम, यद्वा तदर्थविकले वस्तुनि सङ्केतमात्रतः करणमिति नाम क्रियते तन्नामकरणं, संज्ञाकरणं तु पेलुकरणादिकं द्रव्यं तेन तेन पूणिकादिकृतिसाधकतमरूपेण यद् द्रविणं तत्र द्रवणपरिणामं, नहि तत् पेलुकरणादि तदर्थविहीनं, पूणिकादिकृतिसाधकतमपरिणामान्वितत्वात्, नापि शब्दः करणमित्यक्षरत्रयात्मकं, ततो महान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५५८ ॥

नामकरणसंज्ञाकरणयोर्भेदः, ननु यदि न संज्ञाकरणं तदर्थविहीनं-करणशब्दार्थरहितं ततः किं-कस्माद् द्रव्यकरणं ?, भावकरणं हि तत्प्राप्नोतीति भावः, उच्यते, यतस्तेन पेलुकरणादिना पूणिकादिद्रव्यं क्रियते तेन करणमित्युच्यते, करणमिति संज्ञा च तत्र रूढेति संज्ञाद्रव्यकरणमिति । नोसंज्ञाद्रव्यकरणं द्विधा-प्रयोगतो विस्रसातश्च, तथा चाह-'वीससपयोगे' । तत्र विश्रसाकरणं द्विधा-साद्यनादिभेदात्, तदाह—

वीससकरणमणाई धम्माईण परपच्चया जोगा । साई चक्खुप्फासिय-मब्भाइ अचक्खुमणुमाइ ॥१५४॥ (भा.)

विश्रसा-स्वभावो भण्यते तेन करणं विश्रसाकरणम्, करणशब्दस्य च कृतिः करणं क्रियते तदिति करणं क्रियते अनेन वा करणमिति यथायोगं व्युत्पत्तिरवसतव्या । अत्र तु भावसाधनः, अनादि-आदिरहितं धर्म्मादीनां-धर्माधर्म्माकाशास्तिकायानां, अन्योऽन्यसमाधानमिति गम्यते, आह-करणशब्दस्तावदपूर्वप्रादुर्भावे वर्त्तते, करणं चानादि चेति परस्परविरुद्धं, उच्यते, न खल्ववश्यमपूर्वप्रादुर्भाव एव करणशब्दो वर्त्तते, किं तु अन्योऽन्यसमाधानेऽपि, तथा पूर्वाचार्योपदेशतो न कश्चिद्दोषः, अथवा परप्रत्ययप्रयोगादिति-परवस्तुप्रत्ययात्-सहकारिवस्तुयोगात् धर्म्मास्तिकायादीनां या विश्रसातः तथा योग्यता सा करणं, एवमप्यनादिता विरुद्ध्यते इति चेत्, नैष दोषः, अनन्तशक्तिप्रचितद्रव्यपर्यायोभयरूपत्वे सति वस्तुनो द्रव्यादेशेनाविरोधात्, गहनमेतत् सूक्ष्मधिया भावनीयम्, अथवा विश्रसाकरणं धर्म्मादीनां परस्परसमाधानरूपं करणमनादि, यत् पुनः परप्रत्ययप्रयोगतस्तत्तत्पर्यायभवनं, देवदत्तादिसंयोगतो ये धर्मादीनां विशिष्टाः पर्याया इत्यर्थः, तत् सादिकरणं ॥ एवमरूपिद्रव्याण्यधिकृत्य साद्यनादिविश्रसाकरणमुक्तम् ॥ अधुना रूपिद्रव्याण्यधिकृत्य साद्येव वा चाक्षु-

विश्रसा-करणं

॥ ५५८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पेतरभेदेन करणमाह-सादि चक्षुःस्पर्शं, चाक्षुषमित्यर्थः, अभ्रादि, आदिशब्दात् शक्रचापादिपरिग्रहः, 'अचक्खुए'त्ति अचाक्षुषं-अण्वादि, आदिशब्दाद् द्व्यणुकादिपरिग्रहः, करणता चेह कृतिः करणमितिकृत्वा, अन्यथा वा स्वबुद्ध्या योजनीया ॥ सम्प्रति चाक्षुषाचाक्षुषभेदमेव विशेषेण प्रतिपादयति—

संघाय-भेअ-तदुभयकरणं इंदाउहाइ पचक्खं । दुअअणुमाईयाणं छउमत्थाईणऽपच्चक्खं ॥ १५५ ॥ (भा.)

संघातः संहननं, भेदो विघटनं, तच्छब्देन सङ्घातभेदौ परामृश्येते, तच्च तत् उभयं च तदुभयं, सङ्घातभेदतदुभयैः करणं, क्रियते इति कर्म्मसाधनः करणशब्दः, सङ्घातभेदतदुभयकरणं इन्द्रायुधादि स्थूलमनन्तपुद्गलात्मकं प्रत्यक्षं, चाक्षुषमित्यर्थः, तथाहि-अभ्रादीनां क्वचित् केचित् पुद्गलाः संहन्यंते एव क्वचित् केचित् भिद्यन्त एव क्वचित् केचित् संहन्यन्ते भिद्यन्ते चेति सङ्घातभेदतदुभयकरणं, द्व्यणुकादीनां आदिशब्दात् तथाविधानन्ताणुकान्तानां पुनः, करणमिति वर्त्तते, छद्मस्थादीनां आदिशब्दः स्वगतानेकभेदप्रतिपादनार्थमाह, अप्रत्यक्षम्, अचाक्षुषमित्यर्थः, उक्तं विस्रसाकरणम्, अधुना प्रयोगकरणं वक्तव्यम्, तत्र प्रयोगो नाम जीवव्यापारः तेन यद् विनिर्मीयते सजीवमजीवं वा तत् प्रयोगकरणं, उक्तं च-"होइ पयोगो जीवव्वावारो तेण जं विणिम्मायं । सज्जीवमजीवं वा पयोगकरणं तयं बहुहा ॥ १ ॥" एतदेवाह—

जीवमजीवे पाओगिअं तु चरिमं कुसुंभरागाई । जीवप्पओगकरणं मूले तह उत्तरगुणे अ ॥ १५६ ॥ (भा.)

प्रायोगिकं करणं द्विधा-जीवे अजीवे च, जीवप्रायोगिकमजीवप्रायोगिकं चेत्यर्थः, प्रयोगेण निर्वृत्तं प्रायोगिकं, तत्र चरमम्-अजीवप्रयोगकरणं कुसुंभरागादि, आदिशब्दात् शेषवर्णादिपरिग्रहः, एवं तावदल्पवक्तव्यत्वादभिहितं ओघतोऽजीव-

आ. सू. ९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पार्शिका

॥५५९॥

प्रयोगकरणं, जीवप्रयोगकरणं द्विप्रकारं, मूले–मूलगुणकरणं तथा उत्तरगुणे चेति–उत्तरगुणकरणं, व्यासार्थं तु ग्रन्थकार एव वक्ष्यति, तत्राल्पवक्तव्यत्वादजीवप्रयोगकरणमादावेवाभिधित्सुराह—

जं जं निज्जीवाणं कीरइ जीवप्पओगओ तं तं। वन्नाइ रूवकम्माइ वावि अजीवकरणं तु ॥ १५७ ॥ (भा.)

यत् यत् निर्जीवानां पदार्थानां जीवप्रयोगेण क्रियते–निर्वर्त्यते तत्तद्वर्णादि कुसुम्भादीनां रूपकर्म्मादि कुट्टिमादौ अजीवे अजीवविषयत्वाद् अजीवप्रयोगकरणमिति ॥

जीवप्पओगकरणं दुविहं मूलप्पओगकरणं च। उत्तरपओगकरणं पंच सरीराइं पढमम्मि ॥ १५८ ॥ (भा.)
ओरालिआइआइं ओहेणिअरं पओगओ जमिह। निप्फन्ना निप्फज्जइ आइल्लाणं च तं तिण्हं ॥ १५९ ॥ (भा.)

औदारिकादीनि, आदिशब्दात् वैक्रियाहारकतैजसकार्म्मणशरीरपरिग्रहः, ओघेन–सामान्येन तथा इतरत्–उत्तरप्रयोगकरणं गृह्यते, तल्लक्षणं चेदम्–प्रयोगेण यदिह लोके मूलप्रयोगेण निष्पन्नात् तन्निष्पन्नात् निष्पद्यते तदुत्तरप्रयोगकरणं, तच्च त्रयाणामाद्यानां शरीराणाम्, इयमत्र भावना–पञ्चानामौदारिकादिशरीराणामाद्यं सङ्घातकरणं मूलप्रयोगकरणमुच्यते, अङ्गोपाङ्गादिकरणं तूत्तरकरणं, तच्चौदारिकवैक्रियाहारकरूपाणां त्रयाणां शरीराणां, न तु तैजसकार्म्मणयोः, तयोरङ्गोपाङ्गाद्यसम्भवात्, तत्रौदारिकादीनामष्टावङ्गानि, अङ्गुल्यादीनि उपाङ्गानि, शेषाणि अङ्गोपाङ्गानि मूलकरणं, तानि चामूनि—

सीसमुरोअरपिट्ठी दो बाहू ऊरुआ य अट्ठंगा। अंगुलिमाइ उवंगा अंगोवंगाइं सेसाइं ॥ १६० ॥ (भा.)

संघातादि-करणानि

॥५५९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

शीर्षमुर उदरं पृष्ठं द्वौ बाहू द्वौ च ऊरू इत्यष्टावङ्गानि, अङ्गुल्यादीनि उपाङ्गानि, शेषाणि करपादादीनि अङ्गोपाङ्गानि ॥ किञ्च—

केसाईउवरयणं उरालविउव्वि उत्तरं करणं। ओरालिए विसेसो कण्णाइणट्ठसंठवणं ॥ १६१ ॥ (भा.)

केशाद्युपरचनं–केशादिनिर्मापणसंस्कारौ आदिशब्दान्नखदन्तरागादिपरिग्रहः, औदारिकवैक्रिययोरुत्तरकरणं, यथासम्भवं चेह योजना कार्या, तथा औदारिके उत्तरकरणे विशेषः, कर्णादिविनष्टसंस्थापनं, न चेदमुत्तरकरणं वैक्रियादौ सम्भवति, विनाशाभावात्, विनष्टस्य च सर्वथा विनाशेन संस्थापनाऽभावात्, केशाद्युपरचनरूपं तूत्तरकरणमाहारके न सम्भवति, प्रयोजनाभावात्, ततो गमनागमनादिरूपं तत्तत्रावसातव्यम्, अथवेदमन्यादृक् त्रिविधं करणम्, तद्यथा–सङ्घातकरणं परिशाटकरणं सङ्घातपरिशाटकरणं च, तत्राद्यानां त्रयाणां शरीराणां तैजसकार्म्मणरहितानां त्रिविधमप्यस्ति, द्वयोस्तु चरमद्वयमेव ॥ तथा चाह—

आइल्लाणं तिण्हं संघाओ साडणं तदुभयं च। तेआकम्मे संघायसाडणं साडणा वाऽवि ॥ १६२ ॥ (भा.)

आद्यानां त्रयाणाम्–औदारिकवैक्रियाहारकरूपाणां शरीराणां सङ्घातः शाटनं तदुभयं च–सङ्घातपरिशाटौ, तैजसकार्मणे च सङ्घातपरिशाटौ शाटनं वापि, न तु सङ्घातोऽनादित्वात्॥ साम्प्रतमौदारिकमधिकृत्य सङ्घातादिकालमानमभिधित्सुराह—

संघायमेगसमयं तहेव परिसाडणं उरालम्मि। संघायणपरिसाडो खुड्डागभवं तिसमऊणं ॥ १६३ ॥ (भा.)

सङ्घातमिति सर्वसङ्घातकरणमेकसमयं भवति, एकान्तादानस्य एकसामयिकत्वात्, अत्र घृतपूपो दृष्टान्तः, यथा घृतपूर्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥५६०॥

प्रतप्तायां तापिकायां सम्पानकप्रक्षेपात् स पूपः प्रथमसमये एव एकान्तेन स्नेहपुद्गलानां ग्रहणमेव करोति, न त्यागम्, अभावात्, द्वितीयादिषु तु समयेषु ग्रहणमोक्षौ, तथाविधसामर्थ्ययुक्तत्वात्, पुद्गलानां च सङ्घातभेदधर्मत्वात्, एवं जीवोऽपि तत्प्रथमतयोत्पद्यमानः सन् आद्यसमये औदारिकशरीरप्रायोग्याणां पुद्गलानां ग्रहणमेव करोति, न तु मुञ्चत्य-भावात्, द्वितीयादि तु समयेषु ग्रहणमोक्षौ, युक्तिरत्र पूर्ववत्, ततः सङ्घातमेकसामयिकमिति, सङ्घातमित्यत्र नपुंसकता तथा दर्शनात्, तथैव परिशाटनं-परिशाटनाकरणमेकसमयमिति वर्त्तते, सर्वपरिशाटनस्याप्येकसामयिकत्वादेवेति, 'औदा-रिक' इत्यौदारिकशरीरे 'संघायणपरिसाडण' त्ति संघातनपरिशाटनकरणं तु क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं, तत् पुन-रेवं भावनीयं-जघन्यकालस्य प्रतिपादयितुमभिप्रेतत्वात् विग्रहेणोत्पाद्यते, ततश्च द्वौ विग्रहसमयावेकः सङ्घातसमय इति तैर्न्यूनं, तथा चोक्तम्-"दो विग्गहंमि समया समयो संघायणाएँ तेहूणं। खुड्डागभवग्गहणं सव्वजहन्नो ठिईकालो ॥ १ ॥" इहच सर्वजघन्यमायुष्कं क्षुल्लकभवग्रहणं, प्राणापानकालस्यैकस्य सप्तदशभाग इति, उक्तं च भाष्यकारेण-"खुड्डागभव-ग्गहणा सत्तरस हवंति आणपाणूंमि' त्ति गाथार्थः ॥

एयं जहन्नमुक्कोसयं तु पलिअत्तिअं तु समऊणं। विरहो अंतरकालो ओराले तस्सिमो होइ ॥ १६४ ॥ (भा.)

इदं जघन्यं सङ्घातादिकालमानम्, उत्कृष्टं तु सङ्घातपरिशाटनकरणकालमानमौदारिके-औदारिकमाश्रित्य पल्यो-पमत्रिकं समयोनम्, तथाहि-इहोत्कृष्टकालस्य प्रतिपाद्यत्वात् अयमविग्रहसमापन्नो गृह्यते, स इहभवात्परभवं गच्छन् इहभवशरीरशाटं कृत्वा परभवायुषः त्रिपल्योपमकालस्य प्रथमसमयेन शरीरसङ्घातं करोति, ततो द्वितीयसमयादारभ्य

संघातादि-करणानि

॥५६०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्घातपरिशाटोभयकालः, ततस्तेन सङ्घातनासमयेन ऊनं पल्योपमत्रयमिति, ननु यथा सङ्घातसमयेनोनं पल्योपमत्रयं मतं तथा परिशाटसमयेनापि, ततो द्विसमयहीनं पल्योपमत्रयं प्राप्नोति, तदयुक्तं, वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, निश्चयतो हि भवस्य चरमेऽपि समये सङ्घातपरिशाटावेव, परिशाटस्तु परभवप्रथमसमयेन, अत एकेन समयेनोनता, न द्वाभ्यामिति, उक्तं च–"उक्कोसो समऊणो जो सो संघयणासमयहीणो। किह न दुसमयविहीणो साडणसमएऽवणीयंमि ? ॥ १ ॥ भण्णइ भवचरमंमिवि समए संघायसाडणा चेव। परभवसमए साडणमतो तदूणो न कालोत्ति ॥ २ ॥" एवमौदारिके जघन्येतरभेदः सङ्घातपरिशाटकाल उक्तः, सङ्घातपरिशाटयोस्त्वेक एव समयः, द्वितीयस्यासम्भवात्, अधुना सङ्घातादिविरहो जघन्येतरभेदोऽभिधीयते, तथा चाह—

तिसमयहीणं खुड्डं होइ भवं सव्वबंध-साडाणं। उक्कोस पुव्वकोडी समयो उदही अ तित्तीसं ॥ १६५ ॥ (भा.)

त्रिसमयहीनं क्षुल्लं, 'भवं' ति संपूर्णं क्षुल्लकभवग्रहणं, यथाक्रमं सर्वबन्धशाटयोरन्तरकालः, किमुक्तं भवति ?–सर्वसङ्घातकरणस्य जघन्योऽन्तरकालस्त्रिसमयहीनं क्षुल्लकभवग्रहणं, सम्पूर्णं तु क्षुल्लकभवग्रहणं परिशाटस्येति, कथं सर्वसङ्घातस्य जघन्यान्तरकालस्त्रिसमयहीनं क्षुल्लकभवग्रहणं ?, उच्यते, यदा कश्चिदेकेन्द्रियादिर्जीवो मृतः सन् समयद्वयं विग्रहे कृत्वा क्षुल्लकभवग्रहणायुष्केषु पृथिव्यादिषूत्पन्नः तृतीयसमये औदारिकस्य सङ्घातं कृतवान् तदा औदारिकशरीरमधिकृत्य सङ्घातस्य त्रिसमयन्यूनक्षुल्लकभवग्रहणप्रमाणो जघन्योऽन्तरकालः, उक्तं च–"संघायंतरकालो जहन्नओ खुड्डगं तिसमऊणं। दो विग्गहंमि समया तइओ संघायणासमओ ॥ १ ॥ तेहूणं खुड्डगभवं धरिउं परभवमविग्गहेणेव। गंतूण पढमसमये संघातयतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५६१॥

स विन्नओ ॥ २ ॥" कथं पुनः सर्वपरिशाटस्य सर्वपरिशाटस्यान्तरपरिमाणं जघन्यं परिपूर्णं क्षुल्लकभवग्रहणं ?, उच्यते– इहानन्तरातीतभवचरमसमये कश्चिदौदारिकशरीरी सर्वपरिशाटं कृत्वा वनस्पतिष्वागत्य सर्वजघन्यक्षुल्लकभवग्रहणायुष्कमनुपाल्य पर्यन्ते सर्वपरिशाटं करोति ततः परिपूर्णं क्षुल्लकभवग्रहणमन्तरं भवति, इहानन्तरातीतभवचरमसमये सर्वपरिशाटविवक्षा व्यवहारनयमतापेक्षया, क्षुल्लकभवग्रहणमनुपाल्य पर्यन्ते परभवप्रथमसमये सर्वपरिशाटो निश्चयनयमतापेक्षया, ततो न कश्चिद्दोषः, अन्यथा क्षुल्लकभवग्रहणप्रथमसमयस्य पूर्वभवशाटेनावरुद्धत्वात् समयहीनं क्षुल्लकभवग्रहणं जघन्यं परिशाटान्तरं स्यात्, तथा सर्वबन्धस्य सर्वसङ्घातरूप उत्कृष्टोऽन्तरकालः पूर्वकोटी तथा समयः, तथा उदधिश्च–सागरोपमाणि च त्रयस्त्रिंशत्, तथाहि–कश्चित् पूर्वभवादविग्रहेण मनुष्यभवे समागत्य प्रथमसमये सङ्घातं कृत्वा पूर्वकोटिप्रमाणायुष्कं परिपाल्यानुत्तरसुरेषूत्पन्नः, तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टमायुष्कमनुभूय ततश्च्युत्वा समयद्वयं विग्रहे विधाय तृतीये समये औदारिकशरीरस्य सङ्घातं करोति, इह विग्रहप्रसक्तसमयद्वयमध्यादेकः प्राक्तनपूर्वकोट्यां प्रक्षिप्यते, तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि समयाधिकपूर्वकोट्यधिकान्युत्कृष्टमौदारिकशरीरसङ्घातान्तरं लभ्यते इति, तथा चोक्तम्–"उक्कोसं तेत्तीसं समयाहिय पुव्वकोडिसहियाइं । सो सागरोवमाइं अविग्गहेणेव संघायं ॥ १ ॥ काऊण पुव्वकोडिं धरिउं सुरजेट्ठमाउयं तत्तो । भोत्तूण इहं तइए समये संघातयंतस्स ॥२॥" सर्वपरिशाटस्य उत्कृष्टोऽन्तरकाल एष एव समयहीनः, किमुक्तं भवति ?–परिपूर्णानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सम्पूर्णा च पूर्वकोटी, तथाहि–कश्चित् संयतमनुष्यः स्वभवचरमसमये औदारिकपूर्वपरिशाटं कृत्वाऽनुत्तरेषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यतिवाह्य पुनर्मनुष्येष्वौदारिकसर्वसङ्घातं कृत्वा पूर्वकोट्यन्ते परभवप्रथमसमये

संघातादि-करणानि

॥५६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

औदारिकसर्वपरिशाटं करोति, इहापि संयतमनुष्यभवचरमसमये सर्वपरिशाटविवक्षा व्यवहारनयमताश्रयणात्, परभवप्रथमसमये निश्चयनयमतापेक्षया, ततो यथोक्तमन्तरपरिमाणं भवति, उक्तं च–"खुड्डागभवग्गहणं जहन्नमुक्कोसयं च तेत्तीसं। तं सागरोवमाइं संपुन्ना पुवकोडी य ॥ १ ॥" अन्यथा समयत्रयहीनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमपूर्वकोटिप्रमाणताऽवसेया, यावदेवं व्याख्यानुरोधेन व्याख्या कृता, तत्त्वतः पुनरेवं व्याख्या–'तिसमयहीणं खुड्डं होइ भवं सव्वबंधसाडाणं।' सर्वबन्धस्य सर्वशाटस्य च यथाक्रमं जघन्योऽन्तरकालः क्षुल्लकभवग्रहणं 'त्रिसमयहीन' मिति त्रिभिः–अर्थात् समयैः समयेन च हीनं त्रिसमयहीनं क्षुल्लकभवग्रहणं सर्वसङ्घातस्य जघन्योऽन्तरकालः, समयहीनं सर्वपरिशाटस्येति भावः, 'उक्कोसे' त्यादि, सर्वसङ्घातस्योत्कृष्टोऽन्तरकालः पूर्वकोटी समय उदधयश्च–सागरोपमाणि त्रयस्त्रिंशत्, सर्वपरिशाटस्योत्कृष्टोऽन्तरकालः पूर्वकोटी समयेन हीना उदधयः समयोदधयः, गुडधाना इत्यादाविव मध्यपदलोपी समासः, समयेन हीनानि सागरोपमाणि त्रयस्त्रिंशद्, भावना सर्वाऽपि प्रागुक्तैव द्रष्टव्या। सम्प्रति सङ्घातपरिशाटान्तरमुभयरूपमपि अभिधित्सुराह—

अंतरमेगं समयं जहन्नमोरालगहणसाडस्स। सतिसमया उक्कोसं तित्तीसं सागरा हुंति ॥ १६६ ॥ (भा.)

'अन्तरं' अन्तरालं जघन्यं–सर्वस्तोकं एकं समयमौदारिकस्य 'ग्रहणशाटस्य' ग्रहणं च शाटश्च ग्रहणशाटं तस्य, सङ्घातपरिशाटस्येत्यर्थः, तथाहि–यदा औदारिकशरीरी आयुःपर्यन्तं यावत् सङ्घातपरिशाटोभयं कृत्वाऽग्रेतनभवेऽविग्रहेणोत्पद्यौदारिकस्यैव सङ्घातं कृत्वा पुनरपि तदुभयमारभते तदा एकसमयो जघन्यमुभयान्तरमिति, उत्कृष्टमन्तरं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सत्रिसमयानि, तथाहि–यथा कश्चित् मनुष्यादिः स्वभवचरमसमये सङ्घातपरिशाटोभयं कृत्वाऽनुत्तरसुरेष्वप्रति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥५६२॥

ष्ठाने वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यनुभूय पुनरपि समयद्वयं विग्रहेण गमयित्वा तृतीयसमये औदारिकस्य शरीरस्य सङ्घातमादाय तदनन्तरमुभयमारभते, तत्र तावद् द्वौ विग्रहसमयावेकश्च सङ्घातसमयो देवादिभवसम्बधीनि त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणीति यथोक्तप्रमाणमुत्कृष्टमुभयान्तरमिति, उक्तं च–"उभयंतरं जहन्नं समओ निव्विग्गहेण संघाते । परमं सतिसमयाइं तेत्तीसं उयहिनामाइं ॥ १ ॥ अणुभविउं देवादिसु तेत्तीसमिहागयस्स तइयंमि । समए संघातयतो नेयाइं समयकुसलेहिं ॥ २ ॥" उक्ता औदारिकमधिकृत्य सर्वसङ्घातादिवक्तव्यता, साम्प्रतं वैक्रियमधिकृत्योच्यते, तत्रेयं गाथा—

वेउवियसंघाओ जहन्न समओ उ दुसमयुक्कोसो। साडो पुण समयं चिअ विउव्वणाए विणिद्दिट्ठो॥१६७॥ (भा.)

वैक्रियस्य संघातः–सर्वसङ्घातकालो 'जघन्यः' सर्वस्तोक एकसमय एव, तुशब्दस्यैवेकारार्थत्वेनावधार्यमाणत्वात्, अयं चौदारिकशरीरिणां वैक्रियलब्धिमतां विकुर्वणारम्भे देवनारकाणां च तत्प्रथमतया शरीरग्रहणेऽवसातव्यः, उक्तं च–"वेउवियसंघातो, समओ सो पुण विउव्वणादीए । ओरालियाणमहवा, देवाईणादिगहणंमि ॥ १ ॥" तथा द्विसमयो–द्विसमयमान उत्कृष्टो, वैक्रियसङ्घात इति वर्त्तते, कालतश्चेति गम्यते, स पुनर्यदा औदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिमान् विकुर्वणारम्भसमय एव वैक्रियसङ्घातं समयेन कृत्वा स्वायुःक्षयात् मृतो द्वितीयसमये विग्रहाभावेन ऋजुश्रेण्या सुरेषूत्पद्यमानः वैक्रियं सङ्घातयति तदाऽवसातव्यः, आह च–"उक्कोसा समयदुगं जो समयविउव्विउं मओ बिइए । समये सुरेसु वच्चइ निव्विग्गहतो तयं तस्स ॥ १ ॥" शाटः पुनर्जघन्यत उत्कर्षतश्च समयमेव कालतो 'विकुर्वणायां' वैक्रियशरीरविषयो निर्दिष्टस्तीर्थकरगणधरैः ॥ अधुना सङ्घातपरिशाटकालमानमभिधित्सुराह—

संघातादि-करणानि

॥५६२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

संघाडणपरिसाडो जहन्नओ इक्कसमइयो होइ । उक्कोसं तित्तीसं सागरनामा उ समऊणा ॥ १६८ ॥ (भा.)

वैक्रियस्य सङ्घातसम्मिश्रः परिशाटः सङ्घातपरिशाटः उभयरूपः कालतः खलु जघन्य एकसामयिको भवति, तथाहि–यदा केनचिदौदारिकशरीरिणा उत्तरवैक्रियमारब्धं, स च तत्र प्रथमसमये सङ्घातं द्वितीयसमये तु सङ्घातपरिशाटोभयं कृत्वा म्रियते तदा तस्यैकसामयिकः वैक्रियस्य सङ्घातपरिशाट इति, उत्कृष्टस्त्रयस्त्रिंशत् 'सागरनामानि' सागरोपमाणि समयोनानि, तानि चानुत्तरेष्वप्रतिष्ठाने वा सङ्घातसमयहीनान्यवसातव्यानि, उक्तं च–"उभयं जहन्न समओ सो पुण दुसमयविउव्वियमयस्स । परमयराइं संघातसमयहीणाइं तेत्तीसं ॥ १ ॥" इदानीं वैक्रियमेवाधिकृत्य सङ्घाताद्यन्तरमभिधित्सुराह—

सव्वग्गहोभयाणं साडस्स य अंतरं विउव्वस्स । समयो अन्तमुहुत्तं उक्कोसं रुक्खकालीअं ॥ १६९ ॥ (भा.)

वैक्रियस्य 'सर्वग्रहोभययोः' सङ्घातसंघातपरिशाटयोः शाटस्य च जघन्यमन्तरं–विरहकालो यथाक्रमं समयं अन्तर्मुहूर्त्तं च, किमुक्तं भवति ?–सङ्घातस्य सङ्घातपरिशाटस्य च समयः, शाटस्यान्तर्मुहूर्त्तं च, सङ्घातस्यान्तरमेवं–औदारिकशरीरिणः समयमेकमुत्तरवैक्रियं कृत्वा मृतस्य द्वितीयसमये विग्रहेण–विग्रहतः तथा तृतीयसमये देवलोके समुत्पद्य वैक्रियसङ्घातं कुर्वतो वेदितव्यं, अत्र हि प्राक्तनवैक्रियसर्वसंघातस्य अग्रेतनोत्तरवैक्रियसङ्घातस्य च विग्रहसमयोऽन्तरमिति, अथवा औदारिकशरीरिणः समयद्वयमुत्तरवैक्रियं कृत्वा तृतीयसमये मृतस्य निर्विग्रहेण देवलोके समुत्पन्नस्य तस्मिन्नेव च तृतीये समये वैक्रियसङ्घातं कुर्वतो ज्ञातव्यं, अत्र ह्येकः समयः सङ्घातपरिशाटयोरन्तरमिति, उक्तं च–"संघायंतरसमओ समयविउव्वियमयस्स तइयंमि । सो दिवि संघातयतो तइए व मयस्स तइयंमि ॥ १ ॥" सङ्घातपरिशाटोभयस्य जघ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

न्येनान्तरमेकसामयिकं, य औदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिमान् उपकल्पितवैक्रियशरीरः परिपूर्णं तिर्यङ्मनुष्यवैक्रियशरीरस्थितिकालं यावत् सङ्घातपरिशाटौ विधाय मृतोऽविग्रहेण देवेषु समुत्पद्य प्रथमसमये वैक्रियशरीरसङ्घातः द्वितीयादिसमयेषु तु सङ्घातपरिशाटौ तस्यावाप्येते, उक्तं च–"उभयस्सवि चिरविउव्वियमतस्स देवेसऽविग्गहमयस्स। अंतरमेगो समयो नायव्वो समयकुसलेहिं ॥ १ ॥" इह 'चिरविउव्वियमयस्से' ति यदुक्तं तत् सङ्घातपरिशाटोभयव्यक्तीकरणार्थं, अन्यथा तृतीयेऽपि समये मृतस्य यथोक्तमन्तरमवाप्यते इति । शाटस्य जघन्यमन्तर्मुहूर्त्तं, यदा कश्चिदौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिमान् क्वचित् प्रयोजने वैक्रियशरीरं कृत्वा सिद्धकार्यः पर्यन्ते तस्य सर्वशाटं विधाय पुनरौदारिकशरीरमाश्रयति, तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरप्युत्पन्नप्रयोजनो वैक्रियं करोति, तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरप्यौदारिकमागच्छन् वैक्रियस्य शाटं करोति, तदा वैक्रियस्य शाटस्य शाटस्य चान्तरमौदारिकशरीरवैक्रियशरीरगतमन्तर्मुहूर्त्तद्वयं भवति, तच्च द्वयमपि बृहत्तरमेकमेवान्तर्मुहूर्त्तं विवक्षितमतो जघन्यमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमुक्तमिति, त्रयाणामपि चोत्कृष्टं 'वृक्षकालिकं' वृक्षकालेनानन्तेन निर्वृत्तं वृक्षकालिकं–अनन्तोत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीमानं, तथाहि–यदा कश्चित् जीवो वैक्रियशरीरस्य सङ्घातादित्रयं कृत्वा वनस्पतिषूत्पद्यते तत्र चानन्तकालमतिवाह्य तत उद्वृत्तः पुनरपि वैक्रियशरीरमासाद्य सङ्घातादित्रयं करोति तदा सङ्घातपरिशाटतदुभयरूपस्य त्रयस्याप्यनन्तोत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीरूपो वनस्पतिकालोऽन्तरे भवतीति ॥ उक्ता वैक्रियशरीरमधिकृत्य सङ्घातादिवक्तव्यता, साम्प्रतमाहारकमधिकृत्य तां प्रतिपादयन्नाह—

आहारे संघाओ परिसाडो अ समयं समं होइ। उभयं जहन्नमुक्कोसयं च अंतोमुहुत्तं तु ॥ १७० ॥ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आहारक' इत्याहारकशरीरे 'सङ्घातः' प्राथमिको ग्रहः 'परिशाटश्च' पर्यन्ते मोक्षश्च कालतः 'समयं' कालविशेषमेकमधिकृत्य समं भवति, क्रियाविशेषणमेतत्, कालोऽपि समयमेकं सङ्घातोऽपि समयमेकमित्यर्थः, उभयं–सङ्घातपरिशाटोभयं गृह्यते, तत् जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तं भवति, अन्तर्मुहूर्त्तकालावस्थायित्वात् तस्य, उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त्तात् जघन्यं लघुतरं वेदितव्यं ॥ साम्प्रतमाहारकमेवाधिकृत्य सङ्घाताद्यन्तरमभिधातुकाम आह—

बंधणसाडुभयाणं जहन्नमन्तोमुहुत्तमन्तरणं । उक्कोसेण अवड्ढं पुग्गलपरिअट्ट देसूणं ॥ १७१ ॥ (भा.)

'बन्धनं'सङ्घातः, शाटः–शाट एव, उभयं सङ्घातशाटौ, अमीषां बन्धनशाटोभयानां जघन्यं–सर्वस्तोकमन्तरणं–विरहकालोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सकृत्परित्यागानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तेनैव तदारम्भात्, उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरावर्त्तो देशोनोऽन्तरं, सम्यग्दृष्टिकालस्योत्कृष्टस्याप्येतावत्परिमाणत्वात्, एतच्च यश्चतुर्दशपूर्वधर आहारकशरीरं कृत्वा प्रमादात् प्रतिपतितो वनस्पत्यादिषु यथोक्तं कालं स्थित्वा पुनरपि चतुर्दशपूर्वधरत्वमवाप्याहारकशरीरं करोति तदपेक्षया द्रष्टव्यं ॥ उक्ता आहारकशरीरमधिकृत्य सङ्घातादिवक्तव्यता, सम्प्रति तैजसकार्म्मणे अधिकृत्याह—

तेयाकम्माणं पुण संताणाऽणाइओ न संघाओ । भवाण हुज्ज साडो सेलेसीचरिमसमयम्मि ॥ १७२ ॥ (भा.)

तैजसकार्मणयोः पुनर्द्वयोः शरीरयोः सन्तानानादितः कारणात् न सङ्घातो–न तत्प्रथमतया ग्रहणं, प्रागेव सिद्धिप्रसङ्गात्, भव्यानां तु केषाञ्चित् शाटः, कदेत्यत आह–शैलेशीचरमसमये, स चैकसामयिक एव ॥

उभयं अणाइनिहणं संतं भवाण हुज्ज केसिंचि । अंतरमणाइभावा अचंतऽविओगओ नेसिं ॥ १७३ ॥ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५६४॥

'उभयं' सङ्घातपरिशाटनलक्षणं प्रवाहमङ्गीकृत्य सामान्येन 'अनाद्यनिधनं' अनाद्यपर्यवसितं, केषांचित् पुनर्भव्यानामुभयं 'सान्तं' सपर्यवसानं, नतु सर्वेषां, तथा अन्तरमनादिभावादत्यन्ताविवियोगतश्च नानयोरिति ॥ अथवेदमन्यत् जीवप्रयोगनिर्वर्त्तितं चतुर्विधं करणं, तथा चाह—

अहवा संघाओ साडणं च उभयं तहोभयनिसेहो। पड–संख–सगड–थूणा जीवपओगे जहासंखं ॥१७४॥(भा.)

अथवाशब्दः प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थः, 'सङ्घात' इति सङ्घातकरणं शातनं च–शातनकरणं च उभयं–संघातशातनकरणं च उभयनिषेधः–सङ्घातपरिशाटशून्यं, अमीषामेवोदाहरणान्युपदर्शयति–पटः शङ्खः शकटं स्थूणा 'जीवपयोगे' इति जीवप्रयोगकरणे तत्कायव्यापारमाश्रित्य यथासङ्ख्यमेतान्युदाहरणान्यवसेयानि, तथाहि–पटस्तंतुसङ्घातात्मकत्वात् सङ्घातकरणं, शङ्खस्त्वेकान्तशाटकरणात् शाटकरणं, शकटं तक्षणकीलिकादियोगात् तदुभयकरणं, स्थूणा पुनरूर्ध्वतिर्यक्करणयोगात् सङ्घातशाटविरहादुभयशून्यमिति । उक्तं जीवप्रयोगकरणं, आह–ननु 'जं जं निज्जीवाणं कीरइ जीवप्पयोगतो तं त'मित्यादिनाऽस्याजीवकरणतैव युक्तियुक्तेति, तदप्ययुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह चादावेवाथवाशब्दप्रयोगः प्रकारान्तरमात्रदर्शनार्थं इत्युक्तं, ततोऽत्र व्युत्पत्तिभेदमात्रमाश्रीयते, जीवप्रयोगेण करणं जीवप्रयोगकरणं, ज्यायांश्चायमन्वर्थः इत्यलं प्रसङ्गेन । उक्तं द्रव्यकरणं । सम्प्रति क्षेत्रकरणस्यावसरः, तत्रेयं निर्युक्तिगाथा—

खित्तस्स नत्थि करणं आगासं जं अकित्तिमो भावो। वंजणपरिआवन्नं तहावि पुण उच्छुकरणाई ॥ १०३० ॥

इह क्षेत्रस्य नास्ति करणं–क्रियमाणता, यस्मात् क्षेत्रं खल्वाकाशं, आकाशं चाकृत्रिमो भावः–अकृतकः पदार्थः, अकृत-

संघातादि-करणानि

॥५६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

कस्य च सतो नित्यत्वात् करणत्वानुपपत्तिः, आह–यद्येवं किमिति निर्युक्तिकारेण निक्षेपगाथायामुपन्यस्तं ?, उच्यते–'वंजणे'-त्यादि, इह व्यञ्जनशब्देन क्षेत्राभिव्यञ्जकत्वात् पुद्गला गृह्यन्ते, पर्यायं कथञ्चित् प्रागवस्थापरित्यागेनावस्थान्तरापत्तिं, व्यञ्जनयोगतः पर्यायो व्यञ्जनपर्यायः तमापन्नं सत् तथापि क्षेत्रकरणमुच्यते, इयमत्र भावना–यद्यपि नाम क्षेत्रमकृत्रिमत्वात् करणायोगि तथापि घटपटादिसंयोगतो ये तत्तदवगाह्यमानतालक्षणाः पर्यायास्तेषां करणोपपत्तितः क्षेत्रस्यापि करणोपपत्तिः, पर्यायपर्यायवतोः कथञ्चिदभेदादिति, उपचारतो वा क्षेत्रस्य करणं, तथा चाह–'इक्षुकरणादि' इक्षुक्षेत्रकरणमित्यादि, तथा च लोके वक्तारः–इक्षुक्षेत्रं मया कृतं शालिक्षेत्रं मया कृतमित्यादि, आदिशब्दादेव क्षेत्रे पुण्यादौ करणं क्षेत्रकरणं क्षेत्रे प्ररूप्यमाणं करणं क्षेत्रकरणमित्यादिपरिग्रहः ॥ उक्तं क्षेत्रकरणं, अधुना कालकरणं वक्तव्यं, तत्रेयं गाथा—

कालेऽवि नत्थि करणं तहावि पुण वंजणप्पमाणेणं। ववबालवाइकरणेहिं णेगहा होइ ववहारो ॥ १०३१ ॥

कलनं कालः कलासमूहो वा कालः तस्मिन् कालेऽपि, न केवलं क्षेत्रस्येत्यपिशब्दार्थः, नास्ति करणं–कृतिः, तस्य वर्त्तनादिरूपत्वात्, वर्त्तनादीनां च स्वयमेव भावात्, आह–यद्येवं किमिति निर्युक्तिकृतोपन्यस्तं ?, उच्यते, तथापि व्यञ्जनप्रमाणेन भवतीति शेषः, इह व्यञ्जनशब्देन विवक्षया वर्त्तनाद्यभिव्यञ्जकत्वात् द्रव्याणि परिगृह्यन्ते, तत्प्रमाणेन तन्नीत्या तद्बलेन, तथाहि–वर्त्तनादयस्तद्वतां कथञ्चिदभिन्ना एव, ततश्च तत्करणे तेषामपि करणमेवेति, यदिवा समयादिकालापेक्षयाऽपि व्यवहारनयादस्ति करणं, तथा चाह–ववबालवादिकरणैरनेकधा भवति व्यवहारः, उक्तं च–"ववं च बालवं चेव, कोलवं थीविलोयणं। गलादि वणियं चेव, विट्ठी हवइ सत्तमी ॥१॥" एतानि सप्त करणानि चलानि वर्त्तन्ते, चत्वारि तु शकुनिप्रभृतीनि

आ. सू. ९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

स्थिराणि करणानि, उक्तं च–"सउणि चउप्पय नागं किंसुग्घं च करणं थिरं चउहा । बहुलचउद्दसिरत्तिं सउणी सेसं तियं कमसो ॥ १ ॥" एषाऽत्रोत्तरार्द्धभावना–कृष्णचतुर्दशीरात्रौ शकुनिः अमादिने चतुष्पदं अमारात्रौ नागकरणं, प्रतिपद्दिवा किंस्तुघ्नं, तदनन्तरं रजनीदिनेषु बवादीनि करणानि, तेषां च परिज्ञानोपायोऽयं–"पक्खतिहओ दुगुणिया दुरूवहीणा य सुक्कपक्खंमि । सत्तहिए देवसियं तं चिय रूवाहियं रत्तिं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका–कृष्णस्य शुक्लस्य वा प्रस्तुतपक्षस्य अतिक्रान्ता यास्तिथयः ता द्विगुणीक्रियन्ते, तत आगतराशेः सप्तभिर्भागो ह्रियते, एवं कृते यत्करणमागच्छति तत्प्रस्तुततिथौ कृष्णपक्षे दैवसिकं विज्ञेयं, रूपाधिकं तु तदेव रात्रौ, तथाहि–कृष्णदशम्यां द्विगुणितायां विंशतिर्भवति, ततः सप्तभिर्भागे हृते षट् शेषा जाताः, आगतं षष्ठं वणिजाभिधानं दैवसिकं करणं, रूपे त्वत्र प्रक्षिप्ते रात्रिगतं विष्ट्यभिधानं सप्तमं करणं लभ्यते, एवमन्यत्रापि कृष्णपक्षे, शुक्लपक्षे विशेषमाह–'दुरूवहीणा य सुक्कपक्खम्मि'त्ति शुक्लपक्षे द्विगुणतिथिराशेर्द्वौ पात्येते ततो देवसिकं करणमागच्छति, तदेव रूपाधिकं रात्रौ, सूत्रे द्वितीया सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि विभक्तीनां व्यत्ययो भवति, यदाह पाणिनिः स्वप्राकृतलक्षणे–'व्यत्ययोऽप्यासा'मिति, रात्रिगतं करणं भवतीत्यर्थः, यथा शुक्लचतुर्थ्यां द्विगुणितायां अष्टौ भवन्ति, तेभ्यो द्वौ पात्येते, जाताः षट्, सप्तभिश्च भागो न पूर्यते, तत आगतं षष्ठं दैवसिकं वणिजाभिधानं करणं, रूपे तु प्रक्षिप्ते सप्तमं विष्ट्यभिधानं रात्रिगतं करणं, एवमन्यत्रापि शुक्लपक्षे भावनीयं, इह लोकप्रसिद्धः करणानयनोपायोऽपि विद्यते 'तिहि दुगुणी एक्किहिं ऊणी सत्तहिं हरणं सेसं करण'मिति, अयमपि युक्तः, केवलमिह मासतिथयो द्विगुणितव्याः, यच्चेहागच्छति तद्रात्रिगतं करणं, रूपे तु पातिते दिवसगतमिति, एवं च करणद्वयेनापि शुक्ल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

पक्षे प्रतिपदि निशि बवकरणं, द्वितीयायां दिवसे बालवं, रात्रौ कौलवं, तृतीयायाः दिवसे स्त्रीविलोचनं निशि गरादि चतुर्थ्यां दिवसे वणिजं निशि विष्टिरित्येवमादि स्वयं भावनीयं, उक्तं च–"किण्हनिसि तइअदसमीसत्तमिचाउद्दसीसु अह विट्ठी। सुक्कचउत्थिक्कारसिनिसि अट्ठमि पुण्णिमाइ दिवा ॥ १ ॥ सुद्धस्स पडिवइनिसि पंचमिदिणि अट्ठमीइ राइम्मि। दिवसस्स बारसी पुण्णिमाइ रत्तिं बवं होइ ॥ २ ॥ बहुलस्स चउत्थीए दिवा य तह सत्तमीअ राइम्मि। इक्कारसीइ उ दिवा बवकरणं होइ नायवं ॥ ३ ॥" इत्यादि, अलं प्रसङ्गेन ॥ उक्तं कालकरणं, अधुना भावकरणमभिधीयते–तत्र भावः–पर्यायः, तस्य जीवाजीवोपाधिभेदत्वात् तत्करणमप्योघतो द्विविधमेव, तथा चाह—

जीवमजीवे भावे अजीवकरणं तु तत्थ वण्णाई। जीवकरणं तु दुविहं सुअकरणं नो अ सुअकरणं ॥ १०३२ ॥

इह अलाक्षणिको मकारः प्राकृतत्वात्, भावे–भावविषयं करणं द्विविधं, तद्यथा–जीवे अजीवे च, तत्राल्पवक्तव्यत्वादजीवभावकरणमेवादावुपदर्शयति–अजीवकरणं तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात् अजीवभावकरणं परिगृह्यते, तत्र–तयोर्मध्ये वर्णादि, किमुक्तं भवति ?–यदिह परप्रयोगमन्तरेणाभ्रादेर्नानावर्णान्तरगमनं, आदिशब्दात् गन्धादिपरिग्रहः, एतत्सर्वमजीवभावकरणं, ननु च द्रव्यकरणमपि विश्रसाविषयमेवंप्रकारमेवोक्तं ततः कोऽत्र भावकरणे विशेषः ?, उच्यते, इह भावाधिकारात् पर्यायप्राधान्यमाश्रीयते, तत्र तु द्रव्यप्राधान्यमित्यदोषः, जीवकरणं तु जीवभावकरणादि च जीवभावत्वात् द्विविधं श्रुतभावकरणं नोश्रुतभावकरणं च–गुणकरणादि, चशब्दस्य च व्यवहितः सम्बन्धः ॥ सम्प्रति जीवभावकरणेनाधिकार इति, तदेव यथोद्दिष्टं तथैव च भेदतः प्रतिपिपादयिषुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५६६ ॥

बद्धमबद्धं तु सुअं बद्धं तु दुवालसंग निद्दिट्ठं । तविवरीअमबद्धं निसीहमनिसीह बद्धं तु ॥ १०३३ ॥

श्रुतं द्विविधं–द्विप्रकारं, तद्यथा–बद्धमबद्धं च, तुशब्दो विशेषणार्थः, स च लौकिकलोकोत्तरभेदभिन्नतां श्रुतस्य विशिनष्टि, लौकिकं लोकोत्तरं च श्रुतं प्रत्येकं बद्धमबद्धं च, तत्र पद्यगद्यबन्धनाद्बद्धं शास्त्रवत्, तथा चाह–बद्धं तु द्वादशाङ्गम्–आचारादिगणिपिटकं निर्दिष्टं, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात् लोकोत्तरमिदं, लौकिकं तु भारतादि विज्ञेयं तद्विपरीतमबद्धं, लोकलोकोत्तरभेदमेवावसेयं, 'निसीहमनिसीहबद्धं' इति, बद्धं श्रुतं द्विविधं, तद्यथा–निशीथमनिशीथं च, तुशब्दोऽत्रापि लौकिकलोकोत्तरभेदभिन्नताख्यापनार्थः, तत्र रहसिपाठात् रहस्युपदेशाच्च निशीथमुच्यते, प्रकाशपाठात्प्रकाशोपदेशाच्चानिशीथमिति ॥ साम्प्रतमनिशीथनिशीथयोरेव स्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

भूएऽपरिणइ विगए सद्दकरणं तहेव न निसीहं । पच्छन्नं तु निसीहं निसीहनामं जहऽज्झयणं ॥ १०३४ ॥

भूतं–उत्पन्नं अपरिणतं–नित्यं विगतं–विनष्टं भूतापरिणतविगतं, समाहारत्वादेकवचनं, किमुक्तं भवति ?–'उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' इत्यादि, किंविशिष्टमित्याह–शब्दकरणं–शब्दः क्रियते यस्मिन् तत् शब्दकरणं, उक्तं च–"ओत्ती सद्दकरणं पगासपाढं च सरविसेसो वा" । न निशीथं भवति, इयमत्र भावना–यत् उत्पादाद्यर्थप्रतिपादकं तथा महताऽपि शब्देन प्रतिपाद्यं तत् प्रकाशपाठात् प्रकाशोपदेशाच्चानिशीथमिति, प्रच्छन्नं तन्निशीथं, रहसि पाठात् रहस्युपदेशाच्च, यथा निशीथनामकमध्ययनमिति, अथवा निशीथं गुप्तार्थमुच्यते, यथा अग्रायणीये वीर्यपूर्वे अस्तिनास्तिप्रवादे च पाठः, 'जत्थेगो दीवायणो भुंजइ तत्थ दीवायणसयं भुंजइ, जत्थ दीवायणसयं भुंजइ तत्थेगो दीवायणो भुंजइ' तथा 'जत्थेगो

जीवभाव-करणं

॥ ५६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवायणो हम्मइ तत्थ दीवायणाणं सयं हम्मइ, जत्थ दीवायणसयं हम्मइ तत्थेगो दीवायणो हम्मइ" तथा चानुमेवार्थमभिधातुकाम आह—

अग्गेअणीअम्मि जहा दीवायणु जत्थ एगु तत्थ सयं। जत्थ सयं तत्थेगो हम्मइ वा भुंजई वावि ॥ १०३५ ॥

अक्षरगमनिका तु प्रतीता, इदमालापकद्वयमपि सम्प्रदायादप्रतीतार्थमिति गुप्तार्थत्वान्निशीथमिति ॥

एवं बद्धमबद्धं आएसाणं भवंति पंचसया। जह एगा मरुदेवी अचंतं थावरा सिद्धा ॥ १०३६ ॥

एवमनन्तरोक्तप्रकारं सर्वं लोकोत्तरश्रुतं, लौकिकं त्वारण्यकादिषु द्रष्टव्यं, अबद्धं पुनरादेशानां भवंति पञ्च शतानि, किंभूतानीत्यत आह–यथैका–तस्मिन् समये अद्वितीया मरुदेवी ऋषभजननी अत्यन्तस्थावरा–अनादिवनस्पतिराशेरुद्धृत्ता सिद्धा–निष्ठितार्था सञ्जाता, उपलक्षणमेतत्, अन्येषामपि स्वयम्भूरमणजलधिमत्स्यपद्मपत्राणां वलयव्यतिरिक्तसकलसंस्थानसम्भवादीनामिति, लौकिकमप्यनिबद्धं वेदितव्यं अड्डिकप्रत्यड्डिकादि, ग्रन्थानिबद्धत्वात्, अत्र वृद्धसम्प्रदायः–आरहए पवयणे पंच आदेससयाणि अणिबद्धाणि, तत्थेगं मरुदेवा, नहि अंगे उवंगे वा पाढो अत्थि जहा अचंतथावरा होऊण सिद्धा इति, बिइयं सयंभुरमणसमुद्दे मच्छाणं पउमपत्ताण य सव्वसंठाणाणि संति वलयसंठाणं मोत्तुं, तइयं विण्हुस्स साइरेगजोयणसयसहस्सविउव्वणं, चउत्थं करडउकुरडा दोसट्ठिएरुवज्झाया कुणालनयरीए निद्धमणमूले वसही वरिसायाले देवयाणुकंपणं, न वरिसइ नगरपरिसरे, अण्णत्थ सव्वत्थ वरिसइ, लोको अइण्णो, निमित्तियं, एएसिं गुणे(हि)न वरिसइ, ततो नागरगेहिं तेसिं निच्छुभणं करेउमाढत्तं, ते पुच्छंति–कीस निच्छुभह ?, लोगा भणंति–जाव तुब्भे एत्थ नगरे ताव न वरिसइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५६७॥

तो गच्छह, करडेण रुसिएणं भणियं–वरिस देव ! कुलाणाए, उक्कुरुडेणं भणियं–दस दिवसाणि पंच च, पुणरवि करडेण भणियं–मुट्ठिमेत्ताहिं धाराहिं, उक्कुरुडेण भणियं–जहा रत्तिं तहा दिवा, एवं वोत्तूण अवक्कंताओ, कुणालावि पन्नरसदिवसअणुबंधवरिसणेणं सजणवया जलेणं अक्कंता, ततो ते तइए वरिसे साकेए नगरे दोऽवि कालं काऊण अहेसत्तमाए पुढवीए काले नगरे बावीससागरोवमठिइया नेरइया संवुत्ता, कुणालनगरीविणासकालातो तेरसमे वरिसे वीरस्स केवलुप्पत्ती, एयं अणिबद्धं, एवमादि पंचादेससयाणि अबद्धाणि, एवं लोइयं अबद्धकरणं बत्तीसं अड्डियातो सोलस करणाणि, लोगपवाए पंचट्ठाणाणि, तंजहा–आलीढं पच्चालीढं वइसाहं मंडलं समपादं, तत्थ आलीढं नाम दाहिणं पायं अग्गतोहुत्तं काऊणं वामपायं पच्छतोहुत्तं उसारेउं अंतरा दोण्हवि पादाणं पंचपाए, पच्चालीढं वामपायं अग्गतोहुत्तं काऊणं दाहिणपायं पच्छतोहुत्तं ऊसारेइ, एत्थवि अंतरा दोण्हवि पायाणं पंच पया, वइसाहं पण्हीतो अब्भिंउरट्टंतीओ समसेढीए करेइ, अग्गिमतला बाहिरहुत्ता, मंडलं नाम दोवि पाए दाहिणवामहुत्ता ऊण्णो (दोण्हं) अन्तरा चत्तारि पया, समपायं नाम दोऽवि पादे समं निरंतरं ठवेइ, एयाणि पंच ठाणाणि लोयप्पवादे, सयणकरणं छट्ठं ठाणमित्यलं विस्तरेण । उक्तं श्रुतकरणं, अधुना नोश्रुतकरणमभिधित्सुराह—

नोसुअकरणं दुविहं, गुणकरणं तहय जुंजणाकरणं । गुणकरणं पुण दुविहं, तवकरणे संजमे य तहा ॥ १०३७ ॥

श्रुतकरणं न भवतीति नोश्रुतकरणं, 'अमानोनाः प्रतिषेधवाचका' इति वचनात्, 'द्विविधं' द्विप्रकारं, तद्यथा–'गुणकरणं' गुणानां करणं, गुणानां कृतिरित्यर्थः, तथेति निर्देशे, चः समुच्चये, व्यवहितश्चास्य प्रयोगः, योजनाकरणं च मनः-

अबद्धे आदेशाः ॥५६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रभृतीनां व्यापारकरणमिति भावः, गुणकरणं पुनर्द्विविधं–द्विप्रकारं, कथमित्याह–'तपःकरणं' तपसः–अनशनादेर्बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नस्य करणं–कृतिस्तपःकरणं, संयमे च–संयमविषयं चाश्रवविरमणादि करणमिति भावः ॥ साम्प्रतं योजनाकरणं व्याचिरव्यासुराह—

जुंजणकरणं तिविहं मण–वय–काए य मणसि सच्चाइ । सट्ठाणि तेसि भेओ चउ चउहा सत्तहा चेव ॥ १०३८ ॥

योजनाकरणं त्रिविधं, तद्यथा–'मनोवाक्काये'मनोवाक्कायविषयं, मनोविषयं वाग्विषयं कायविषयं चेत्यर्थः । तत्र मनसि सत्यादि योजनाकरणं, तद्यथा–सत्यमनोयोजनाकरणमसत्यमनोयोजनाकरणं सत्यमृषामनोयोजनाकरणं असत्यमृषामनोयोजनाकरणमिति, स्वस्थाने प्रत्येकं मनोवाक्कायलक्षणे तेषां–योजनाकरणानां भेदो–विभागो वक्तव्यः, तद्यथा–चतुर्धा चतुर्धा सप्तधा चेति, अयमत्र भावार्थः–चतुर्भेदं सत्यमनोयोजनाकरणादि दर्शितं, एवं वाग्योजनाकरणमपि सत्यवाग्योजनाकरणादिचतुर्भेदमवसातव्यं, काययोजनाकरणं सप्तभेदं, औदारिककाययोजनाकरणं औदारिकमिश्रकाययोजनाकरणं वैक्रियकाययोजनाकरणं वैक्रियमिश्रकाययोजनाकरणं आहारककाययोजनाकरणमाहारकमिश्रकाययोजनाकरणं कार्म्मणकाययोजनाकरणमिति ॥ इत्थं तावद् व्यावर्णितं यथोद्दिष्टं करणं, अधुना येनात्राधिकारस्तदुपदर्शनार्थमाह—

भावसुअसद्दकरणे अहिगारो इत्थ होइ नायव्वो । नोसुअकरणे गुणजुंजणे अ जहसंभवं होइ ॥ १०३९ ॥

भावश्रुतशब्दकरणे प्रकाशपाठे भावश्रुते च अधिकारो भवति कर्त्तव्यः श्रुतसामायिकस्य, न तु चारित्रसामायिकस्य, तस्यांते यथासम्भवमभिधानात्, भावश्रुत सामायिकोपयोग एव, शब्दकरणमप्यत्र तच्छब्दविशिष्टः श्रुतभाव एव विव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५६८॥

क्षितो, नतु द्रव्यश्रुतं, तस्य तत्त्वतः श्रुतसामायिकेऽनवतारात्, नोश्रुतकरणे–नोश्रुतकरणमधिकृत्य 'गुणजुंजणे य'त्ति गुणकरणे योजनाकरणे ते यथासंभवं भवति, अधिकरणमिति गम्यते, तत्र यथासंभवमिति गुणकरणे चारित्रसामायिकस्यावतारः, तपःसंयमगुणात्मकत्वाच्चारित्रस्य, योजनाकरणे च मनोयोजनायां वाग्योजनायां च सत्यासत्यामृषारूपे द्वये श्रुतसामायिकचारित्रसामायिकयोरप्यवतारः, काययोजनायामपि औदारिककाययोगे भङ्गिकश्रुतसामायिकस्याप्यवतारः, समितिगुप्तिपरिपालने चारित्रसामायिकस्येति ॥ सम्प्रति सामायिककरणमेवाव्युत्पन्नविनेयवर्गव्युत्पादनार्थं सप्तभिरनुयोगद्वारैः कृतादिभिर्निरूपयति—

कयाकयं १ केण कयं २ केसु अ दव्वेसु कीरई वावि ३ ।
काहे व कारओ ४ नयओ ५ करणं कइविहं ६ (च) कहं ७ ॥ १०४० ॥

सामायिकस्य करणमिति क्रियां श्रुत्वा चोदक आक्षिपति–एतत् सामायिकं अस्याः क्रियायाः प्राक् किं कृतं सत् क्रियते ? आहोस्विदकृतं ? किंचातः ?, उभयथाऽपि दोषः, तथाहि–कृतपक्षे सद्भावादेव करणानुपपत्तिः, अकृतपक्षेऽपि वांध्येयादेरिव करणायोगः, पूर्वमेकान्तेनासत्त्वात्, अत्र निर्वचनं कृताकृतं, कृतं चाकृतं च कृताकृतं, अत्र नयमतभेदेन भावना कर्त्तव्या १, तथा केन कृतमिति वक्तव्यं २, तथा केषु द्रव्येषु इष्टादिषु क्रियते ३, तथा कदा च कारकोऽस्या भवतीति वाच्यं ४, तथा 'नयओ'त्ति आलोचनादिनयेन वक्तव्यं ५, तथा करणं 'कतिविहं' कतिभेदमिति वाच्यं ६, तथा

नोश्रुतकरणं कृताकृतादिविचारः

॥५६८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथं-केन प्रकारेण सामायिकं लभ्यते इति वक्तव्यमिति गाथासङ्क्षेपार्थः । अवयवार्थं तु भाष्यकार एव वक्ष्यति, तत्रा-द्यद्वारप्रतिपादनार्थमाह—

उप्पन्नाणुप्पन्नं कयाकयं इत्थ जह नमुक्कारे । केणंति अत्थओ तं जिणेहिं सुत्तं गणहरेहिं ॥ १७५ ॥ (भा.)

कृताकृतं नाम उत्पन्नानुत्पन्नमभिधीयते, सर्वमेव च वस्तूत्पन्नानुत्पन्नं क्रियते, वस्तुनो द्रव्यपर्यायोभयरूपत्वात्, अत्र नैगमादिनयैर्भावना कार्या, तथा चाह-अत्र यथा नमस्कारे नयभावना कृता तथैव कर्त्तव्येति गम्यते, सा पुनर्नम-स्कारानुसारेण स्वयं भावनीया । द्वारम् । अधुना द्वितीयद्वारमधिकृत्याह-केनेति केन कृतमित्यत्र निर्वचनं-'अर्थतः' अर्थ-मङ्गीकृत्य तत् सामायिकं जिनवरैः, सूत्रं त्वङ्गीकृत्य गणधरैः कृतं, व्यवहारनयमतमेतत्, निश्चयनयमतं तु व्यक्त्यपेक्षया यो यत्स्वामी तत्तेनैव, व्यक्त्यपेक्षश्चेह तीर्थकरगणधरयोरुपन्यासः प्रधानव्यक्तित्वाद्, अन्यथा पुनरुक्तदोषप्रसङ्गः ॥ तथा चात्रोक्तं भाष्यकारेण-"ननु निग्गमे गयं चिय केण कयं तंति का पुणो पच्छा ? । भन्नइ स बज्झकत्ता इहंतरंगो विसेसोऽयं ॥ १ ॥" (विशे. ३३८३) बाह्यकर्त्ता सामान्येन अन्तरङ्गस्तु व्यक्त्यपेक्षयेति भावना । साम्प्रतं केषु द्रव्येषु क्रियत इत्येतद्विवृण्वन्नाह—

तं केसु कीरई ? तत्थ नेगमो भणइ इट्ठदव्वेसुं । सेसाण सव्वदव्वेसु पज्जवेसुं न सव्वेसु ॥ १७६ ॥ (भा.)

'तत्' सामायिकं 'केषु' द्रव्येषु स्थितस्य सतः क्रियते-निर्वर्त्यते इति प्रश्नः, अत्र नयविभागेन निर्वचनं, तत्र नेगमो भणति-नैगमनयो भाषते, इष्टद्रव्येषु मनोज्ञपरिणामकारणत्वात् मनोज्ञेष्वेव शयनासनादिषु द्रव्येषु, तथा च तेषा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५६९॥

मागमः–"मणुण्णं भोयणं भोच्चा, मणुण्णं सयणासणं । मणुण्णंसि अगारंसि, मणुण्णं झायए मुणी ॥ १ ॥" इत्यादि, शेषाणां–सङ्ग्रहादीनां सर्वद्रव्येषु, शेषनया हि परिणामविशेषात् कस्यचित् किंचिन्मनोज्ञमिति व्यभिचारात् सर्वद्रव्येषु स्थितस्य क्रियते सामायिकं यत्र मनोज्ञपरिणाम इति मन्यन्ते, पर्यायेषु न सर्वेषु, अवस्थानाभावात्, तथाहि–यो यत्र निष-द्यादौ स्थितो न स तत्र तत्सर्वपर्यायेषु, एकभाग एवावस्थितत्वात्, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, अन्यथा पुनरुक्तदोषः, तथा चोक्तं भाष्यकारेण–"नणु भणियमुवग्घाते केसुत्ति इहं कओ पुणो पुच्छा?। केसुत्ति तत्थ विसओ इह केसु ठियस्स तल्लाभो ॥ १ ॥ तो किह सव्वदव्वावत्थाणं? नणु जाइमेत्तवयणातो। धम्माइसव्वदव्वाधारो सव्वो जणोऽवस्सं ॥ २ ॥" (विशे. ३३८७–३३८८) अथवोपोद्घाते सर्वद्रव्याणि विषयः सामायिकस्य, इह तान्येव सर्वद्रव्याणि सामायिकस्य हेतुः, श्रद्धेय-ज्ञेयक्रियाविषयत्वात्, अथवाऽन्यथाऽपुनरुक्तिः–कृताकृतादिगाथायां कृतमकृतं वा सामायिकं कार्यं–कर्म्म, कर्त्तुरीप्सिततम-त्वात्, केन कृतमिति कर्तृप्रश्नः, केषु द्रव्येष्विति साधकतमकरणप्रश्नः, सप्तमीबहुवचनं तु तृतीयाबहुवचने प्राकृतत्वात्, न चैतदपि स्वमनीषिकया व्याख्यानं, यतोऽभ्यधायि भाष्यकारेण–"विसओऽवि उवग्घाए केसुत्ति इहं स एव हेउत्ति। सद्धेय-नेयक्रियानिबंधणं जेण सामइयं ॥ १ ॥ अहवा कयाकयाइसु कज्जं केण व कयं च कत्तत्ति। केसुत्ति करणभावो तइ-यत्थे सत्तमिं काउं ॥ २ ॥" (विशे. ३३८९–३३९०) इत्यलं प्रसङ्गेन। द्वारम्। सम्प्रति कदा कारकोऽस्य भवती-त्येतत् नयैर्निरूपयन्नाह—

कान्नु? उद्दिट्ठे णेगम उवट्ठिए संगहो य ववहारो। उज्जुसुओ अक्कमंते सद्दु समत्तंमि उवउत्तो ॥ १७७ ॥ (भा.)

सामायिके कृताकृ-तादिः

॥५६९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

कदाऽसौ सामायिकस्य कारको भवतीति प्रश्नः, अत्र नयैर्निर्वचनं–'उद्दिट्ठे नेगम'त्ति उद्दिष्टे सति नैगमो मन्यते, इयमत्र भावना–सामान्यग्राहिणो नैगमनयस्य उद्दिष्टमात्र एव सामायिके गुरुणा शिष्योऽनधीयानोऽपि तक्रियाननुष्ठायी सन् सामायिकस्य कर्त्ता, वनगमनप्रस्थितप्रस्थककर्तृवत्, यस्मात् उद्देशोऽपि सामायिककारणं, तस्मिंश्च कारणे कार्योपचारः, 'उवट्ठिते संगहो य ववहारो'त्ति सङ्ग्रहो व्यवहारश्च उपस्थितः सन् कारको भवतीति, इयमत्र भावना–इह उद्देशानन्तरं वाचनाप्रार्थनाय यदा वन्दनं दत्त्वोपस्थितो भवति तदा प्रत्यासन्नतरकारणत्वात् सङ्ग्रहव्यवहारयोः कारक इति, ऋजुसूत्र आक्रमन् कारको भवतीति मन्यते, एतदुक्तं भवति–उद्देशानन्तरं गुरुपादमूले वन्दित्वोपस्थितः सामायिकं पठितुमारब्धः कारकः, वृद्धास्तु व्याचक्षते–न पठन्नेव, किन्तु समाप्ते कारक इति, सामायिकक्रियावान् प्रतिपद्यमानस्तदुपयोगरहितोऽपि कारकः, यस्मात् सामायिकार्थस्य सामायिकशब्दक्रिये असाधारणं कारणं, असाधारणकारणेन च व्यपदेश इति, 'सद्दु समत्तंमि उवउत्तो'त्ति, शब्दादयो मन्यन्ते–समाप्ते सत्युपयुक्ते एव कारको भवति, त्रयाणां शब्दादीनां नयानां शब्दक्रियावियुक्तोऽपि सामायिकोपयुक्तः कारकः, मनोज्ञतथापरिणामरूपत्वात् सामायिकस्य, कदा कारक इति गतं। सम्प्रति नयत इत्येतद् द्वारं विवरीषुराह—

आलोयणा १ य विणए २ खित्त ३ दिसाऽभिग्गहे ४ अ काले ५ य।
रिक्ख ६ गुणसंपयाऽविअ ७ अभिवाहारे ८ अ अट्ठमए ॥ १७८ ॥ (भा.)

इहाभिमुख्येन गुरोरात्मदोषप्रकाशनमालोचनानयः, तथा विनयः पदधावनादि क्षेत्रं–इक्षुक्षेत्रादि दिगभिग्रहो–वक्ष्यमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णलक्षणः कालः–अहरादिः ऋक्षसम्पत्–नक्षत्रसंपत् गुणाः–प्रियधर्मत्वादयः तेषां सम्पत् गुणसम्पत्, अभिव्याहरणं अभिव्याहारः अष्टमो नय इति गाथासमासार्थः, व्यासार्थं तु प्रतिपदं भाष्यकार एव सम्यक् न्यक्षेण वक्ष्यति ॥ तथा चाद्यं द्वारं व्याचिख्यासुराह—

पव्वज्जाए जुग्गं तावइआलोयणा गिहत्थेसु । उवसंपयाइ साहूसु सुत्थे अत्ते तदुभये य ॥ १७९ ॥ (भा.)

'प्रव्रज्याया' निष्क्रमणस्य यत् प्राणिजातं स्त्रीपुरुषनपुंसकभेदं योग्यं–अनुरूपं, तदन्वेषणीयमिति वाक्यशेषः, तावती-एतावत्येवालोचना अवलोकना वा, केषु?–गृहस्थेषु–गृहस्थविषया, इयमत्र भावना–योग्यं हि सर्वोपाधिविशुद्धमेव भवति, ततस्तदन्वेषणमवश्यं कर्त्तव्यं, तच्चैवम्–कस्त्वं ? को वा ते निर्वेद ? इति पूर्वं प्रश्नो विधेयः, तस्मिंश्च विहिते प्रयुक्तालोचनस्य योग्यतावधारणं, तदनन्तरं सामायिकं दद्यात्, न शेषाणां प्रतिषिद्धदीक्षाणामिति नयः, एवं तावत् गृहस्थस्याकृतसा-मायिकस्य सामायिकार्थमालोचनोक्ता, सम्प्रति कृतसामायिकस्य यतेः प्रतिपादयति–उपसम्पदि साधुषु, आलोचनेति वर्त्तते, सूत्रे अर्थे तदुभये च, अत्रापीयं भावना–सामायिकसूत्राद्यर्थं यदा कश्चिदुपसम्पदं प्रयच्छति यतिस्तदा स आलो-चनां ददाति, अत्र विधिः सामाचार्यामुक्त एव, आह–अल्पं सामायिकसूत्रं, तत् कथं तदर्थमपि यतेरुपसंपत् ?, तद-भावे वा कथं यतिः ? कथं वा प्रतिक्रमणं ? प्रतिक्रमणमन्तरेण शुद्धिर्नेति, उच्यते, मन्दग्लानादिव्याघाताद् विस्मृतसूत्रस्य यतेः सूत्रार्थमप्युपसम्पदविरुद्धैव, एष्यत्कालं वा दुष्षमान्तमालोक्यानागतामर्षकं सूत्रमिति, तदभावेऽपि तदा चारित्रप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिणामोपेतत्वात् असौ यतिरेव, शुद्धिश्चास्य यावत्सूत्रमधीतं तावतैव प्रतिक्रमणं कुर्वतः, इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ अधुना एकगाथयैव विनयादिद्वारत्रयं व्याचिख्यासुराह—

आलोइए विणीअस्स दिज्जए तं पसत्थखित्तम्मि। अभिगिज्झ दो दिसाओ चरंतिअं वा जहाकमसो ॥१८०॥ (भा.)

आलोचिते सति 'विनीतस्य' पादधावनानुरागादिविनयवतः, उक्तं च भाष्यकारेण–"अणुरत्तो भत्तिगतो अमुई अणुयत्तगो विसेसण्णू। उज्जुत्तमपरितंतो इच्छियमत्थं लहइ साहू ॥ १ (विशे. ३४०३) दीयते तत् सामायिकं, तस्यापि न यत्र क्वचित्, किन्तर्हि ?, प्रशस्तक्षेत्रे–इक्षुक्षेत्रादौ, उक्तं च–"उच्छुवणे सालिवणे पउमसरे कुसुमिते व वणसंडे। गंभीरसाणुणादे पयाहिणजले य जिणघरे वा ॥ १ ॥ दिज्ज न उ भग्ग झामिय, सुसाणसुन्नामणुन्नगेहेसु। छारंगारकयारामिज्झादीदव्वदुट्ठे वा ॥ २ ॥ (विशे. ३४०४–३४०५) तथा अभिगृह्य–अङ्गीकृत्य द्वे दिशौ पूर्वां वा उत्तरां वा, दीयते इति वर्त्तते, तथा चरन्ती नाम यस्यां दिशि तीर्थंकरकेवलिमनःपर्यायज्ञानावधिज्ञानिचतुर्दशपूर्वधरादयो यावत् युगप्रधाना विहरन्ति, 'यथाक्रमं' इति गुणापेक्षं यथाक्रमेण दिक्ष्वेतासु दीयते, उक्तं च–"पुव्वाभिमुहो उत्तरमुहो व देज्जाऽहवा पडिच्छेज्जा। जाए जिणादयो वा दिसाए जिणचेइयाइं व ॥ १ ॥" त्ति, गतं द्वारत्रयम्। अधुना कालादित्रयमेकगाथयैवाभिधित्सुराह—

पडिकुट्ठदिणे वज्जिअ रिक्खेसु अ मिगसिराइ भणिएसु। पियधम्माईगुणसंपयासु तं होइ दायव्वं ॥१८१॥ (भा.)

'प्रतिकुष्टानि' प्रतिषिद्धानि यानि चतुर्दश्यादीनि तानि दिनानि वर्जयित्वा, अप्रतिकुष्टेष्वेव पञ्चम्यादिषु दातव्यमिति योगः, उक्तं च–"चाउद्दसिं पन्नरसिं वज्जिज्जा अट्ठमिं च नवमिं च। छट्ठिं च चउत्थिं बारसिं च दुण्हंपि पक्खाणं ॥ १ ॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

(विशे. ३४०७) तेष्वपि दिनेषु प्रशस्तेषु मुहूर्त्तेषु दीयते, न अप्रशस्तेषु, तथा ऋक्षेषु च मृगशिरःप्रभृतिषु ग्रन्थान्तरादिहितेषु, नतु प्रतिषिद्धेषु, उक्तं च–"मिगसिर अद्दा पुस्सो तिण्णि पुवा य मूलमस्सेसा । हत्थो चित्ता य तहा दस वुड्ढिकराइं नाणस्स ॥ १ ॥" (विशे. ३४०८) तथा–संझागयं रविगयं, विड्डेरं सग्गहं विलम्बं च । राहुहयं गहभिन्नं च वज्जए सत्त नक्खत्ते ॥ २ ॥ (विशे. ३४०९) सन्ध्यागतं नाम यत्र नक्षत्रे सूर्योऽनन्तरं स्थास्यति तत्सन्ध्यागतं, अपरे पुनराहुः-यत्र रविस्तिष्ठति तस्माच्चतुर्दशं पञ्चदशं वा नक्षत्रं सन्ध्यागतमिति, रविगतं यत्र रविस्तिष्ठति, पूर्वद्वारिकेषु नक्षत्रेषु पूर्वदिशा गंतव्येऽपरया दिशा गच्छतो विड्डेरं, सग्रहं च–ग्रहाधिष्ठितं विलम्बि–यत् सूर्येण परिभुज्य मुक्तं राहुहतं–यत्र ग्रहणमभूत् ग्रहभिन्नं–ग्रहविदारितं, तथा प्रियधर्मादिगुणसम्पत्सु सतीषु तत् सामायिकं भवति दातव्यं, उक्तं च–"पियधम्मो दढधम्मो संविग्गोऽवज्जभीरु असढो अ । खंतो दंतो गुत्तो थिरवय जिइंदिओ उज्जू ॥ १ ॥" (विशे. ३४१०) विनीतस्याप्येते गुणा अन्वेष्टव्याः इति गाथार्थः ॥ अधुना चरमं द्वारं व्याचिख्यासुराह—

अभिवाहारो कालिअसुअस्स सुत्तत्थतदुभएणंति । दव्वगुणपज्जवेहि अ दिट्ठीवायम्मि बोद्धव्वो ॥ १८२ ॥ (भा.)

'अभिव्याहरणं' शिष्याचार्ययोर्वचनप्रतिवचने अभिव्याहारः, स च 'कालिकश्रुते' आचारादौ 'सुत्तत्थतदुभएणं'ति सूत्रतोऽर्थतः तदुभयतश्च, इयमत्र भावना–शिष्येण इच्छाकारेणेदमङ्गाद्युद्दिशतेत्युक्ते सति इच्छापुरःसरमाचार्यवचनं–अहमस्य साधोरिदमङ्गमध्ययनमुद्देशं वा उद्दिशामि, वाचयामीत्यर्थः, आसोपदेशपारम्पर्यख्यापनार्थं क्षमाश्रमणानां हस्तेन, न स्वोत्प्रेक्षया, सूत्रतोऽर्थतस्तदुभयतोऽस्मिन् कालिकश्रुते अ(त)धोत्कालिके, दृष्टिवादे कथमित्यत आह–द्रव्यगुणपर्यायैश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

दृष्टिवादे–भूतवादे बोद्धव्योऽभिव्याहारः, एतदुक्तं भवति–शिष्यवचनानन्तरमाचार्यवचनमिदम्–उद्दिशामि सूत्रतोऽर्थतस्तदुभयतो द्रव्यगुणपर्यायैरनन्तगमसहितैरिति, एवं गुरुणा समादिष्टेऽभिव्याहारे शिष्याभिव्याहारः–शिष्यो ब्रवीति–उद्दिष्टमिदं मम, इच्छाम्यनुशासनं क्रियमाणं पूज्यैरिति, एवमभिव्याहारद्वारमष्टमं नीतिविशेषे नये इति ॥ व्याख्याता प्रतिद्वारगाथा, साम्प्रतमधिकृतमूलगाथायामेव करणं कतिविधमित्येतत् द्वारं व्याचिख्यासुराह—

उद्देससमुद्देसो वायणमणुजाणणं च आयरिए । सीसंमि उद्दिसिज्जंतमाइ एअं तु जं कइहा ॥ १८३ ॥ (भा.)

गुरुशिष्ययोः सामायिकक्रियाव्यापारणं करणं, तच्चतुर्द्धा, तद्यथा–उद्देसकरणं समुद्देसकरणं वाचनाकरणमनुज्ञाकरणं च, छन्दोभङ्गभयादिह वाचनाकरणमेवमुपन्यस्तं, यावता तत्त्वतः अमुना क्रमेण द्रष्टव्यं–उद्देशो वाचना समुद्देशोऽनुज्ञा चेति गुरोर्व्यापारः, 'आयरिए'त्ति गुराविदं करणं, गुरुविषयमित्यर्थः, 'सीसंमि उद्दिसिज्जंतमादि' शिष्ये–शिष्यविषयं उद्दिश्यमानकरणं वाच्यमानकरणं समुद्दिश्यमानकरणमनुज्ञायमानकरणं चेति, 'एयं तु जं कइह'त्ति एतदेव चतुर्विधं तत् यदुक्तं कतिविधमिति, आह–पूर्वमनेकविधं नामादिकरणमभिहितमेव इह पुनः किमिति प्रश्नः ?, उच्यते, तत् पूर्वगृहीतस्य करणमनेकविधमुक्तं, इदं पुनरस्मिन् गुरुशिष्यदानग्रहणकाले चतुर्विधं करणमिति, पूर्वं वा करणमविशेषेणोक्तं, इह तु गुरुशिष्यक्रियाविशेषाद्विशेषितमिति न पुनरुक्तता, अथवा अयमेव करणस्यावसरः, पूर्वत्र पुनरनेकान्तद्योतनार्थं विन्यासः कृत इति 'विचित्रा सूत्रस्य कृतिरिति, कृतं विस्तरेण ॥ द्वारम् ॥ सम्प्रति कथमिति द्वारं विवरीषुराह—

कह सामाइयलंभो ? तस्सवविघाई देसवाघाई । देसविघाईफड्डग अणंतवुड्ढीविसुद्धस्स ॥ १०४१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५७२॥

एवं ककारलंभो सेसाणवि एवमेव कमलंभो। एअं तु भावकरणं करणे य भए य जं भणिअं ॥ १०४२ ॥

'कथं' केन प्रकारेण सामायिकस्य लाभ इति प्रश्नः, अत्रोत्तरं–तस्य–सामायिकस्य द्विविधानि स्पर्द्धकानि भवन्ति, यतः सामायिकावरणं दर्शनावरणं मिथ्यात्वमोहनीयं च, अमीषां च द्विविधानि स्पर्द्धकानि भवन्ति–देशघातीनि सर्वघातीनि च, तत्र सर्वघातिषु स्पर्द्धकेषु सर्वेष्वप्युद्घातितेषु सत्सु देशघातिष्वपि स्पर्द्धकेष्वनन्तेषूद्घातितेषु अनन्तगुणवृद्ध्या प्रतिसमयं विशुद्ध्यमानः शुभशुभतरपरिणामो भावतः ककारं लभते, तदनन्तगुणवृद्ध्यैव प्रतिसमयं विशुद्ध्यमानः सन् रेफं, एवं शेषाण्यप्यक्षराणि, अत एवाह–देशविघातिस्पर्द्धकानन्तवृद्ध्या विशुद्धस्य सतः। (ततः) किं ? 'एवं' उक्तप्रकारेण लाभः शेषाणामपि रेफादीनामक्षराणाम्, एवमेव–उक्तप्रकारेण क्रमेण सूत्रगतपरिपाट्या लाभः, आह–उपक्रमद्वारेऽभिहितमेतत्–क्षयोपशमात् जायते, पुनरुपोद्घातेऽभिहितं–कथं लभ्यते इति, तत्रोक्तं, इह किमर्थं प्रश्न इति पुनरुक्तता ?, उच्यते, त्रयमप्येतदपुनरुक्तम्, यत उपक्रमे क्षयोपशमात् सामायिकं लभ्यते इत्युक्तं, उपोद्घाते स एव क्षयोपशमस्तत्कारणभूतः कथं लभ्यत इति प्रश्नः, इह केषां पुनः कर्म्मणां स क्षयोपशम इति प्रत्यासन्नतरकारणप्रश्न इत्यपुनरुक्तत्वमित्यलं प्रसङ्गेन, द्वारमेवोपसंहरन्नाह–एतदेवानन्तरोदितं यत्सामायिककरणं तद् भावकरणं, एवं च मूलद्वारगाथायां 'करणे भए य' इत्युल्लेखेन यत्करणमिति द्वारमुपन्यस्तं तद् व्याख्यातं, एतद्व्याख्यानाच्च सूत्रेऽपि करोमीत्यवयवो व्याख्यातः, अधुना भय इति द्वितीयद्वारव्याख्यानार्थमाह—

होइ भयंतो भवअंतगो य रयणा भयस्स छब्भेया। सव्वंमि वण्णिएऽणुक्कमेण अंतेऽवि छब्भेया ॥ १८४ ॥ (भा.)

भयान्त-निक्षेपाः ॥५७२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** 'भंते' शब्दस्य व्याख्या: क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

भवति भदन्त इति, 'भदुङ् कल्याणे सुखे च' अस्मादौणादिकोऽन्तप्रत्ययः, औणादिकत्वादेव नमो लोपः, भदन्तः–कल्याणः सुखश्चेत्यर्थः, प्राकृतत्वादामन्त्रणे 'भन्ते' इति भवति, अथवा प्राकृतशैल्या भवान्त इति द्रष्टव्यं, तत्र भवस्य–संसारस्यान्तस्तेनाचार्येण क्रियते इति भवान्तकरत्वाद् भवान्तः, अथवा भयान्त इति द्रष्टव्यं, तत्र भयं–त्रासः, तमाचार्यं प्राप्य भयस्यान्तो भवतीति भयांतभवनात् भयान्तो–गुरुः, यदिवा अन्तं करोतीत्यन्तकः भयस्यान्तको भयान्तकः तस्य सम्बोधनं, उभयत्रापि प्राकृतत्वात् भन्ते इति भवति, तत्र रचना–(नामादि)विन्यासलक्षणा भयस्य षड्भेदा–षट्प्रकारा, नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदभिन्ना, तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्यक्षेत्रकालभयान्यपि प्रतीतानि, द्रव्याङ्गयं द्रव्यभयमित्येवं सर्वत्र पञ्चमीतत्पुरुषसमाश्रयणात्, अन्यथा वा यथायोगं भावनीयं, भावभयं सप्तधा–इहलोकभयं परलोकभयं आदानभयमाकस्मिकभयं आजीविकाभयं अश्लोकभयं मरणभयं चेति, तत्र यत् स्वभवात्प्राप्यते यथा मनुष्यस्य मनुष्यात् तिरश्चः तिर्यग्भ्य इत्यादि तदिहलोकभयं, यत् परभवादेवाप्यते, यथा मनुष्यस्य तिरश्चः तिरश्चो मनुष्यात् तत्परलोकभयं, किञ्चन द्रव्यजातमादानं तस्य नाशहरणादिभ्यो भयं आदानभयं, यद् बाह्यनिमित्तमन्तरेणाहेतुकं भयमुपजायते तदकस्माद्भवतीत्याकस्मिकं, तथा 'श्लोकृङ् श्लाघायां' श्लोकः–प्रशंसा श्लाघा तद्विपर्ययोऽश्लोकः तस्माद्भयं अश्लोकभयं, आजीविका–आजीवनं तस्या उच्छेदेन भयमाजीविकाभयं, प्राणपरित्यागभयं मरणभयं, एवं अनुक्रमेणोक्तलक्षणेन सर्वस्मिन् वर्णितेऽन्तेऽपि षड् भेदा वर्णयितव्याः, तद्यथा–नामान्तः स्थापनान्तो द्रव्यान्तः क्षेत्रान्तः कालान्तो भावा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५७३॥

न्तश्च, तत्र नामस्थापने प्रतीते, द्रव्यान्तो घटाद्यन्तः, क्षेत्रान्त ऊर्ध्वलोकादिक्षेत्रान्तः, कालान्तः समयाद्यन्तो, भावान्तो औदयिकादिभावान्तः ॥

एवं सबंमिवि वन्नियंमि एत्थं तु होइ अहिगारो । सत्तभयविप्पमुक्के तहा भवंते भयंते य ॥ १८५ ॥ (भा.)

एवम्-उक्तेन प्रकारेण सर्वस्मिन्ननेकभेदभिन्ने भयादौ वर्णिते सति अत्र प्रकृते भवत्यधिकारः सप्तभयविप्रमुक्तो यस्तेन, तथा यो भवान्तो यश्च भदन्तस्ताभ्यामिति, पश्चानुपूर्व्या ग्रन्थ इत्यदोषः ॥ व्याख्यातं मूलद्वारगाथायां (भयान्तेति) द्वार-द्वयं, तद्व्याख्यानाच्च भदन्त भवान्त भयान्त इति गुर्वामन्त्रणार्थः सूत्रावयवः, अथ सामायिकस्यादावेव गुरोरामन्त्र-णवचः किमर्थं ?, उच्यते, गुरुकुलवासोपसंग्रहार्थं, यथा सर्वदैव हि शिष्यो गुणार्थी सन् गुरुकुलवासी भवेत्, गुरुकुल-वासे वसतां प्रतिक्षणं ज्ञानादिगुणोत्सर्पणात्, उक्तं च भाष्यकृता-आमंतेइ करेमी भंते ! सामाइयंति सीसो य । आहा-मंतणवयणं गुरुणो किं कारणमियंति ? ॥ १ ॥ भन्नइ गुरुकुलवासोवसंगहत्थं जहा गुणत्थी हि । निच्चं गुरुकुलवासी हवेज्ज सीसो जतोऽभिहियं ॥ २ ॥ नाणस्स होइ भागी थिरयरतो दंसणे चरित्ते य । धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ ३ ॥ (विशे. ३४५७-८-९) अन्यच्च-सामायिकस्यादौ गुर्वामन्त्रणवचनमभिदधान एवं ज्ञापयति-सर्वकालं प्रतिक्रमणं गुरुपादमूले कर्त्तव्यं, वसत्यन्तरेऽपि पृथक् कारणवशतः स वस्तुकामो गुरुपादमूले प्रतिक्रम्य वसति, तथा च कल्पाध्ययनोक्ता एवं सामाचारी-"यदि लघ्वी वसतिः ततोऽन्यत्र कतिपये साधवः संवस्तुकामा आचार्यसमीपे प्रतिक्रम्य प्रादोषिककालग्रहणोत्तरकालं सूत्रपौरुषीमर्थपौरुषीं च कृत्वा अन्यस्यां वसतौ गच्छन्ति, अथान्तरा श्वापदादिभयं

आमंत्रण-प्रयोजनं

॥५७३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

ततः अर्थपौरुषीं हापयन्ति, ततः सूत्रपौरुषीमपि, कालमपि, तथा चरमं कायोत्सर्गं द्वितीयमाद्यं यावत्तिष्ठत्यपि सहस्ररश्मौ तत्र यान्ती"ति, तथेदमपि ज्ञापयति–सर्वाणि कार्याणि गुरूनापृच्छ्य कर्त्तव्यानि, नान्यथा, सामायिकप्रतिपत्तेरपि गुर्वामन्त्रणपूर्वकत्वात्, उक्तं च–"आवस्सयंपि निच्चं गुरुपामूलंमि देसियं होइ। वीसुंपि संवसंता कारणतो जइवि सेज्जाए ॥ १ ॥ एवं चिय सव्वावस्सयाइं आपुच्छिऊण कज्जाइं। जाणावियमामंतणवयणातो जेण सव्वेसिं ॥ २ ॥ सामाइयमादि मयं भदंतसद्दो य जं तदादीए। तेणाणुवत्तइ ततो करेमि भन्तेत्ति सव्वेसु ॥ ३ ॥ (विशे. ३४६१–२–३) अथ किमिति गुरूनापृच्छ्यैव सर्वाणि कार्याणि कर्त्तव्यानीति चेत्, उच्यते, इह परमार्थतः कृत्यमकृत्यं वा गुरवो जानते, विनयप्रतिपत्तिश्च शिष्येण कृता भवति, भगवदाज्ञा चाराधिता स्यात्, तथाहि–भगवतामियमाज्ञा–उच्छ्वासादि प्रमुच्य शेषं गुर्वनापृच्छया न किमपि कर्त्तव्यमिति, उक्तं च–"किच्चाकिच्चं गुरवो विदंति विणयपडिवत्तिहेउंति । उस्सासाइ पमोत्तुं तदणापुच्छाए पडिसिद्धं ॥ १ ॥" (विशे. ३४६४) अथ यत्र गुरुर्न भवति तत्र कथं कर्त्तव्यमिति चेत्, प्रतिसमाहितमत्र भाष्यकारेण–"गुरुविरहंमि य ठवणा गुरूवएसोवदंसणत्थं च। जिणविरहंमिव जिणबिंब सेवणामंतणं सफलं ॥ १ ॥ रन्नो व परोक्खस्सवि जह सेवा मंतदेवयाए वा। तह चेव परोक्खस्सवि गुरुणो सेवा विणयहेउं ॥ २ ॥" (विशे. ३४६५–६) इति कृतं विस्तरेण ॥ सम्प्रति सामायिकं व्याख्येयं, अथ सामायिकमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते–समो रागद्वेषरहितः, अयनं गमनं, समस्यायः समायः, अयनग्रहणं शेषक्रियाणामुपलक्षणं, सर्वासामपि साधुक्रियाणां समस्य सतस्तत्त्वतो भावात्, समाय एव सामायिकं, अथवा समानि–ज्ञानदर्शनचारित्राणि तेष्वयनं समायः स एव सामायिकं, यदिवा सर्वजीवेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'सामायिक' शब्दस्य व्याख्या क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५७४ ॥

मैत्री साम, सान्न आयो–लाभः सामायः स एव सामायिकं, अथवा सम्यक्शब्दार्थः समशब्दः, सम्यगयनं–वर्त्तनं समयः, अथवा सम्यगायो–लाभः समायः, यदिवा समस्य भावः साम्यं, तस्यायः साम्यायः, सर्वत्र स्वार्थिक इकण् प्रत्ययः, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः, अथवा अन्यथा निरुक्तविधिः, तमुपदर्शयति—

सामं समं च सम्मं इगमिति सामाइअस्स एगट्ठा । नामं ठवणादविए भावम्मि य तस्स निक्खेवो ॥ १०४३ ॥

इह सामायिकशब्दः पदद्वयनिष्पन्नः, तत्र आद्यं पदं त्रिधा, तद्यथा–सामं समं च सम्यक्, इकमिति द्वितीयं पदं, तच्च देशीपदं क्वापि प्रवेशार्थं प्रवर्त्तते, अत्र पदयोजनां स्वयमेवाग्रे वक्ष्यति, तथा सामायिकस्य एकार्थिकानि वक्तव्यानि । सम्प्रति सामादिशब्दानां निक्षेपप्रदर्शनायाह–'**नामे**' त्यादि, तेषां सामप्रभृतीनां शब्दानां निक्षेपः कर्त्तव्यः, तद्यथा–'**नाम-स्थापने द्रव्ये भावे च**' इयमत्र भावना–चतुर्विधं साम, तद्यथा–नामसाम स्थापनासाम द्रव्यसाम भावसाम च, एवं सम-सम्यक्पदयोरपि भावनीयं ॥ तत्र नामस्थापने प्रतीते, द्रव्यसामप्रभृतीन् प्रतिपादयति—

महुरपरिणाम सामं समं तुला सम्म खीरखंडजुई । दोरे हारस्स चिई इगमेयाइं तु दव्वंमि ॥ १०४४ ॥

ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसाम मधुरपरिणामं शर्करादिद्रव्यं, द्रव्यसमं सद्भूतार्थालोचनया तुलाद्रव्यं, द्रव्यसम्यक् क्षीरखंडयुतिः–क्षीरखण्डयोजनं, इकमपि चतुर्द्धा, तद्यथा–नामेकं स्थापनेकं द्रव्येकं भावेकं च, तत्र नामस्थापने प्रतीते, द्रव्येकं दोरे इति सूत्रदवरके मौक्तिकान्यधिकृत्य भाविपर्यायापेक्षया हारस्य–मुक्ताफलकलापस्य चितिः–चयनं

सामादी-न्येकार्थि-कानि

॥ ५७४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

प्रवेशनं द्रव्येकं, अत एवाह–'एयाइं तु दव्वंमि' एतान्युदाहरणानि द्रव्ये–द्रव्यविषयाणि ॥ साम्प्रतं भावसामादिप्रतिपादनार्थमाह—

आयोवमाए परदुक्खमकरणं रागदोसमज्झत्थं। नाणाइतिगं तस्सायपोअणं भावसामाई ॥ १०४५ ॥

आत्मोपमानेन परदुःखाकरणं, मकारोऽलाक्षणिकः, भावसामेति गम्यते, किमुक्तं भवति ?–आत्मनीव परदुःखाकरणपरिणामो भावसाम, तथा रागद्वेषमाध्यस्थ्यं, अनासेवनया रागद्वेषमध्यवर्त्तित्वं, सर्वत्रात्मनस्तुल्यरूपेण वर्त्तनं भावसमं, तथा ज्ञानादित्रयं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमेकत्रावस्थितं भावसम्यक्, तथाहि–ज्ञानदर्शनचारित्रयोजनं भावसम्यगेव, मोक्षसाधकत्वात्, 'तस्ये'ति सामादि सम्बध्यते, तस्य सामादेरात्मप्रोतनं–आत्मनि प्रवेशनं भावे, क्रमत एवाह–भावसामादीनि प्रतिपत्तव्यानि। सम्प्रति निरुक्तिविधियोजना क्रियते, आत्मन्येव सान्न इकं–प्रवेशनं सामायिकं, यल्लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं नैरुक्तिनिपातनादवसेयं, तथाहि–सामन्शब्दनकारस्य आयआदेशः, तथा समस्य–रागद्वेषमध्यस्थस्यात्मनि इकं–प्रवेशनं सामायिकं, समशब्दात्परः अयागमः सकारस्य च दीर्घता, तथा सम्यगित्येतस्य सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रयोजनरूपस्यात्मनि इकं–प्रवेशनं सामायिकं यकारादेरायादेशनिपातनं सकारस्य च दीर्घता ॥ सम्प्रति सामायिकपर्यायशब्दान् प्रतिपादयति—

समया संमत्त पसत्थ संति सिव हिअ सुहं अणिंदं च। अदुगुंछिअमगरहियं अणवज्जमिमेऽवि एगट्ठा ॥१०४६॥

समता रागद्वेषमध्यवर्त्तिनस्तद्रूपत्वात्, सम्यक्त्वं ज्ञानदर्शनचारित्राणां परस्परं यत् प्रयोजनं तदात्मकत्वात्, प्रशस्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५७५ ॥

मोक्षसाधकत्वात्, शान्तिः मिथ्यात्वादिदावानलविध्यापनात्, शिवमुपद्रवकारित्वाभावात्, हितं परिणामसुखावहत्वात्, शुभं शुभाध्यवसायात्मकत्वात्, अजुगुप्सितं स्वरूपतः प्रशमरूपतया जुगुप्सनीयाभावात्, अगर्हितं परममुनिभिरपि महापुरुषैः सेवितत्वात्, अनवद्यं सावद्ययोगप्रत्याख्यानात्मकत्वात्, 'इमेऽवि एगट्ठे'ति इमे–अनन्तरोदिता अपि, अनन्तरोदितं 'सामाइय'मित्यादय इत्यपिशब्दार्थः, एकार्थिकाः पर्यायशब्दाः ॥ आह–ननु निरुक्तद्वार एव 'सामाइयं समइय'मित्यादयो यदि पर्यायशब्दा उक्ताः ततो भूयः किमर्थमेतेषामभिधानमिति ?, उच्यते, तत्र पर्यायशब्दमात्रता, इह तु वाक्यान्तरेणार्थनिरूपणमित्यदोषः, अथवा तत्रोक्तावप्यत्राभिधानमसम्मोहार्थमदुष्टमेव, अत एवोक्तं–'इमेऽवि एगट्ठा' इति, एतेऽपि तेऽपि इति ॥ सम्प्रति कण्ठतः स्वयमेव चालनां प्रतिपादयति—

को कारओ ? कारिंतो, किं कम्मं ?, जं तु कीरई तेण। किं कारय–करणाण य अन्नमणन्नं च? अक्खेवो ॥१०४७॥

इह 'करोमि भदन्त ! सामायिक'मित्यत्र कर्तृकर्म्मकरणव्यवस्था कर्त्तव्या, यथा 'करोमि राजन् ! घटक'मित्युक्ते कुलालः कर्त्ता घटः कर्म्म दण्डादि करणमिति, अत्र कः कारकः कुलालस्थानीयः ?, अत्राह–'कारिंतो'त्ति, तत् सामायिकं कुर्वन् आत्मैव कारकः, अथ किं कर्म्म घटस्थानीयं ?, अत्राह–यत्तु क्रियते–निर्वर्त्त्यते तेन कर्त्रा, तच्च तद्गुणरूपं सामायिकमेव, तुशब्दः करणप्रश्ननिर्वचनसङ्ग्रहणार्थः, तत्र किं करणं ? दण्डादिस्थानीयमिति प्रश्नः, निर्वचनमुद्देशादि चतुर्विधं, तद्यथा–उद्देशो वाचना समुद्देशः अनुज्ञा चेति, एवं व्यवस्थिते सत्याह–'किं कारगकरणाण य' इति किं कारककरणयोः चशब्दात् कर्म्मणश्च परस्परतः कुलालघटदण्डादीनामिवान्यत्वमाहोश्विदनन्यत्वं ?, किंचातः?, उभयथापि दोषः,

कृतादौ चालनाप्रत्यवस्थाने

॥ ५७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथाहि–अन्यत्वे सामायिकवतोऽपि तत्फलस्य मोक्षस्याभावः, तदन्यत्वात्, मिथ्यादृष्टेरिव, अनन्यत्वे तस्योत्पत्तिविनाशाभ्यामात्मनोऽप्युत्पत्तिविनाशप्रसङ्गः, अनिष्टं चैतत्, तस्यानादिमत्त्वाभ्युपगमात्, एष आक्षेपः–चालना। इत्थं चालनामभिधाय साम्प्रतं प्रत्यवस्थानमाह—

आया हु कारओ मे सामाइअ कम्म करणमाया य। परिणामे सइ आया सामाइअमेव उ पसिद्धी॥ १०४८॥

इह ममात्मैव कारको मतः, तस्य स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तेः, तथा सामायिकं कर्म्म, तद्गुणत्वात्, करणमपि चोदेशादिलक्षणं तद्रूपत्वादात्मैव, तथापि यथोक्तदोषाणामसम्भवः, कुत इत्याह–यस्मात् परिणामे सति आत्मा सामायिकं परिणमनं परिणामः–कथञ्चित् पूर्वरूपापरित्यागेनोत्तररूपापत्तिः, उक्तं च–"नार्थान्तरगमो यस्मात्, सर्वथैव न चागमः। परिणामः प्रमासिद्धः, इष्टश्च खलु पण्डितैः॥ १॥" तस्मिन् परिणामे सति आत्मा सामायिकमुपपद्यते, तथाहि–परिणामे सति तस्यात्मनो नित्यानित्याद्यनेकरूपता, अन्यथा परिणामित्वायोगात्, सा च नित्यानित्याद्यनेकरूपता द्रव्यगुणपर्यायाणां भेदाभेदसिद्धौ, अन्यथा सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात्, ततो नात्र कर्तृकर्मकरणानामेकान्तेन अन्यत्वं, तद्गुणत्वात्, न खलु गुणगुणिनोरेकान्तेन भेदः, तथा सति विप्रकृष्टगुणमात्रोपलब्धौ प्रतिनियतगुणिविषयसंशयायोगात्, तदन्येभ्योऽपि तस्य भेदाविशेषाद्, अथ च यदा कश्चिद्धरिततशाखाविसररन्ध्रोदरान्तरतः किमपि शुक्लं पश्यति तदा किमियं पताका किं वा बलाका ? इति दृश्यते प्रतिनियतगुणिविषयः संशयः, नाप्येकान्तेनानन्यत्वं, तद्गुणत्वादेव, नहि गुणगुणिनोरेकान्तेनानन्यत्वं, तद्गुणत्वादेव, नहि गुणगुणिनोरेकान्तेनाभेदोऽपि, तथा सति गुणग्रहणे सति गुणिविषयसंशयानुत्पत्तिरेव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥५७६॥

गुणग्रहण एव तस्यापि गृहीतत्वात्, किंतु जात्यन्तरात्मकमन्यत्वानन्यत्वं घटते, आत्मैव कारकः आत्मैव सामायिकं आत्मैव करणमिति प्रसिद्धिः-प्रत्यवस्थानं ॥ संप्रति परिणामपक्षे सत्यप्येकत्वेऽप्यनेकत्वेऽपि चाविरोधेन कर्तृकर्म्मकरण-व्यवस्था घटते इति दर्शयन्नाह—

एगत्ते जह मुट्ठिं करेइ अत्थंतरे घडाईणि। दव्वत्थंतरभावे गुणस्स किं केण सम्बद्धं ?॥ १०४९॥

एकत्वे-कर्तृकरणानामभेदे दृष्टः कर्तृकरणभावो, यथा मुष्टिं करोति, अत्र हि देवदत्तः कर्त्ता, तस्य हस्तः कर्म, तस्यैव प्रयत्नविशेषः करणमिति। तथाऽर्थान्तरे-कर्तृकरणानां भेदे दृष्टः कर्तृकर्म्मकरणभावो, यथा घटादीनि करोति, अत्र हि कुलालः कर्ता घटादिकं कर्म्म दण्डादिकं करणमिति, इह सामायिकमात्मनो गुणो वर्त्तते, स च गुणिनः कथञ्चिदेव भिन्नः, अत्रैव विपक्षे बाधामुपदर्शयति-द्रव्यात् सकाशाद् गुणिन इत्यर्थः, एकान्तेनैवार्थान्तरभावे-भेदे सति गुणस्य किं केन सम्बद्धं ?, न किञ्चित् केनचित्सम्बद्धमिति भावः, तथा च सति ज्ञानादीनामपि गुणत्वात् तेषामपि चात्मादि-गुणिभ्य एकान्तभिन्नत्वात् संवेदनाभावतः सर्वव्यवस्थानुपपत्तिः, एवमेकान्तेनानर्थान्तरभावेऽपि दोषा अभ्यूह्या इति, गुणगुणिनोरर्थान्तरत्वात् सर्वं सुस्थमिति। तदेवमुक्ते कण्ठतश्चालनाप्रत्यवस्थाने, सम्प्रति 'सर्वं सावद्यं योग'मित्यत्र यः सर्वशब्दस्तन्निरूपणायाह—

नामंठवणादविए आएसे निरवसेसए चेव। तह सव्वधत्तसव्वं च भावसव्वं च सत्तमयं ॥ १०५०॥

म्रियते इति सर्वः, तस्य सप्तधा निक्षेपस्तद्यथा-नामसर्वं स्थापनासर्वं द्रव्यसर्वं आदेशसर्वं निरवशेषसर्वं सर्वधत्तसर्वं

कृतादौ चालनाप्रत्यवस्थाने

॥५७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'सव्वं सावज्जं' पदयो: व्याख्यायेते

भावसर्वं च सप्तमं, एष गाथासमासार्थः, व्यासार्थं तु भाष्यकारः स्वयमेव वक्ष्यति, तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य शेषभेदव्याख्यानार्थमाह—

दविए चउरो भंगा सवमसवे य दवदेसे य। आएस सवगामे नीसेसे सवगं दुविहं ॥ १८६ ॥ (भा.)

द्रव्ये—द्रव्यसर्वे चत्वारो भङ्गाः, तानेव सूचयति—'सवमसवे य दवदेसे य'त्ति इह अङ्गुल्यादिद्रव्यं यदा सर्वैरपि निजावयवैः परिपूर्णं विवक्ष्यते तदा सर्वमुच्यते, एवं तस्यैवाङ्गुल्यादिद्रव्यस्य कश्चित् स्वावयवो देशो निजावयवपरिपूर्णतया यदा सकलो विवक्ष्यते तदा सोऽपि देशः सर्व एव, उभयस्मिन्—द्रव्ये तदेशे च सर्वत्वं, एतदेवाङ्गुल्यादिद्रव्यं तदेशो वा यथास्वमपरिपूर्णतया विवक्ष्यते तदा प्रत्येकमसर्वत्वं, ततो द्रव्ये देशे चैवं विवक्षिते चत्वारो भङ्गाः, तद्यथा—द्रव्यं सर्वं देशोऽपि सर्वः १, द्रव्यं सर्वं देशोऽसर्वः २, देशः सर्वो द्रव्यमसर्वं ३, देशोऽसर्वो द्रव्यमप्यसर्वं ४, अत्र यथाक्रममुदाहरणम्—अंगुलिद्रव्यं संपूर्णं विवक्षितं द्रव्यसर्वं, तदेव देशोनं विवक्षितं द्रव्यासर्वं, पर्व पुनः सम्पूर्णं विवक्षितं देशसर्वं, पर्वैकदेशस्तु देशासर्वं, तथा आदेश—उपचारः, स च बहुतरे प्रधाने वा देशेऽपि आदिश्येत, तत्र बहुतरे यथा विवक्षितं घृतमभिवीक्ष्य बहुतरे भुक्ते श्लोकेऽवशेषे सर्वशब्दोपचारः क्रियते—सर्वं घृतं भुक्तमिति, प्रधानेऽप्युपचारो यथा ग्रामप्रधानेषु नरेषु गतेषु सर्वो ग्रामो गतः, उक्तं च—"आदेसो उवयारो बहुतरगे वा पहाणतरगे वा। देसेऽवि जहा सबं भुत्तं सबो गतो गामो ॥ १ ॥" (विशे. ३४८८) इति, तत्र प्रधानपक्षमधिकृत्याह—'आदेस सवगामो' इति, आदेशसर्व सर्वो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

ग्रामो गत इति आयात इति वा क्रिया। उक्तमादेशसर्वमथ निरवशेषसर्वमाह–'निस्सेसे सव्वगं दुविहं'ति निरवशेषसर्वं द्विविधं–द्विप्रकारं, तद्यथा–सर्वापरिशेषसर्वं तदेशापरिशेषसर्वं च, तत्र—

अणिमिसिणो सव्वसुरा सव्वापरिसेससव्वगं एअं। तदेसापरिसेसं सव्वे काला जहा असुरा ॥ १८७ ॥ (भा.)

अनिमेषिणः अनिमेषनयनाः सर्वसुराः, एतत्सर्वापरिशेषसर्वं, न कश्चित् देवानां मध्येऽनिमिषत्वं व्यभिचरतीति, तदेशापरिशेषसर्वं यथा सर्वे काला असुरा इति, इयमत्र भावना–तेषामेव देवानां देश एको निकायोऽसुरः, ते च सर्व एवासितवर्णा इति। सर्वधत्तासर्वप्रतिपादनायाह—

सा हवइ सव्वधत्ता दुपडोआरा जिया य अजिया य। दव्वे सव्वघडाई सव्वधत्ता पुणो कसिणं ॥ १८८ ॥ (भा.)

सा भवति 'सर्वधत्ते'ति सर्वं जीवाजीवाख्यं वस्तु धत्तं–निहितं यस्यां विवक्षायां सा सर्वधत्ता, ननु ददातेर्हिशब्ददेशात् हितमिति भवितव्यं, कथं धत्तमिति ?, उच्यते, पृषोदरादितया शब्दान्तरत्वेनाविरोधाददोषः, अथवा धत्त इति डित्थवत् अव्युत्पन्न एव, यथा शब्दः, यदिवा–सर्वं दधातीति सर्वधं, एतन्निरवशेषवचनं, सर्वधमात्तं–निगृहीतं यस्यां विवक्षायां सा सर्वधात्ता, अत्र निष्ठांतस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, अथवा सर्वधमात्ता सर्वधात्ता तया यत् सर्वं तत्सर्वधात्तासर्वं, सा भवति सर्वधात्ता, यथा द्विप्रत्यवताराः सर्वे पदार्थास्तद्यथा–जीवाश्च अजीवाश्च, तथाहि–यत्किञ्चनेह लोके समस्ति तत्सर्वं जीवाश्च अजीवाश्च, नैतद्व्यतिरिक्तमस्ति, अत्राह–ननु द्रव्यसर्वस्य सर्वधात्तासर्वस्य च कः प्रतिविशेषः ?, अयमत्राभिप्रायः–द्रव्यसर्वमपि विवक्षया अशेषद्रव्यविषयं भवतीति, तत आह–'दव्वे सव्वघडादी' इह द्रव्यसर्वे घटादयो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

गृह्यंते, आदिशब्दादङ्गुल्यादिपरिग्रहः, सर्वधत्ता पुनः समस्तवस्तुजातं व्याप्य व्यवस्थितेति विशेषः ॥ अथ भावसर्वमाह—

भावे सव्वोदइओदयलक्खणओ जहेव तह सेसा । इत्थ उ खओवसमिए अहिगारोऽसेससव्वे य ॥१८९॥ (भा.)

भावे इति द्वारपरामर्शः, सर्वः शुभाशुभभेदेन द्विप्रकारोऽपि उदयलक्षणः—कर्मोदयनिष्पन्नत्वरूप औदयिकः, यथाऽयमुक्तः तथा शेषा अपि, स्वलक्षणतो वाच्या इति वाक्यशेषः, तद्यथा—मोहनीयकर्मोपशमस्वभावः शुभः सर्व एवौपशमिको भावः, कर्मक्षयस्वभावः पुनः शुभः सर्वः क्षायिकः, कर्मक्षयोपशमनिष्पन्नः शुभाशुभः सर्वक्षायोपशमिकः, द्रव्यपरिणतिस्वभावः सर्वः परिणामः, एवं शिष्यमतिव्युत्पादनार्थं प्ररूपणां कृत्वा प्रकृतयोजनामुपदर्शयति—'एत्थ तु' इत्यादि, अत्र क्षायोपशमिकभावसर्वेऽधिकारः—अवतारः उपयोगोऽशेषसर्वे च—निरवशेषसर्वे च ॥ व्याख्यातः सौत्रः सर्वावयवः, साम्प्रतं सावद्यावयवव्याख्यानार्थमाह—

कम्ममवज्जं जं गरहिअंति कोहाइणो व चत्तारि । सह तेण जो उ जोगो पच्चक्खाणं हवइ तस्स ॥ १०५१ ॥

कर्म्म अनुष्ठानमवद्यं भण्यते, किमविशेषेण ?, नेत्याह—यद् गर्हितं—निंद्यं, अथवा क्रोधादयश्चत्वारोऽवद्यं, तेषां सर्वावद्यहेतुतया कारणे कार्योपचारात् , सह तेनावद्येन यो योगो—व्यापारस्तस्य सावद्ययोगस्य प्रत्याख्यानं—निषेधलक्षणं भवति, पाठान्तरं 'कम्मं वज्जं जं गरहियं'ति, तत्र 'वृजी वर्जने' वृज्यते इति वर्ज्यं, वर्ज्यं वर्जनीयं, त्यजनीयमित्यर्थः, शेषं पूर्ववत्, नवरं सह वर्ज्येन सवर्ज्यः, प्राकृतत्वात् सकारस्य दीर्घत्वे सावद्येति भवति । अधुना योगोऽभिधातव्यः, स च द्विधा—द्रव्ययोगो भावयोगश्च, तथा चाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र 'योग' शब्दस्य व्याख्या क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

दव्वे मणवइकाए जोगा दवा दुहा उ भावंमि । जोगो सम्मत्ताई पसत्थ इयरो य विवरीओ ॥ १०५२ ॥

द्रव्य इति द्वारपरामर्शः 'मणवइकाए जोग्गा दवा' इति मनोवाक्काययोग्यानि द्रव्याणि द्रव्ययोगः, इयमत्र भावना-जीवेनागृहीतानि गृहीतानि वा स्वव्यापाराप्रवृत्तानि द्रव्ययोग इति, द्रव्याणां वा हरीतक्यादीनां योगो द्रव्ययोगः, 'दुहा उ भावंमि'त्ति द्विधैव तुशब्दस्य एवकारार्थत्यात् द्विप्रकार एव, भावे भावविषयो योगः, तद्यथा–प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च, तत्र प्रशस्तः सम्यक्त्वादिः, आदिशब्दात् ज्ञानचरणपरिग्रहः, प्रशस्तता चास्य युज्यते अनेनात्माऽपवर्गेणेत्यन्वर्थबलात्, इतरो–मिथ्यात्वादियोगो विपरीतः–अप्रशस्तः, युज्यतेऽनेनात्मा अष्टविधेन कर्म्मणेति व्युत्पत्तिभावात् । तदेवं सावद्ययोगमिति सूत्रावयवौ व्यख्यातौ । सम्प्रति प्रत्याख्यामीत्यवयवप्रस्तावात् प्रत्याख्यानं निरूपणीयं, 'पच्चक्खामी'त्यस्य संस्कारः प्रत्याख्यामि प्रत्याचक्षे इति वा, तत्र प्रत्याख्यामीति कोऽर्थः ?, प्रतीपमभिमुखं ख्यापनं सावद्ययोगस्य करोमि, तथा प्रत्याचक्षे इति कोऽर्थः ?, प्रतिषेधस्यादरेणाभिधानं करोमि प्रत्याख्यानं, प्रतिषेधस्याख्यानं प्रत्याख्यानं निवृत्तिरित्यर्थः, तन्निक्षेपप्ररूपणार्थमाह—

नामंठवणादविए खित्तमइच्छा अ भावओ तं च । नामाभिहाणमुत्तं ठवणाऽऽगारक्खनिक्खेवो [१] ॥ १ ॥

तच्च प्रत्याख्यानं षोढा, तद्यथा–नामप्रत्याख्यानं स्थापनाप्रत्याख्यानं द्रव्यप्रत्याख्यानं क्षेत्रप्रत्याख्यानं अदित्साप्रत्या-

१ गाथेयं क्वचित् हारिभद्रीयादर्शेऽपि, मूलस्थानं तु प्रत्याख्याननिर्युक्तौ, न श्रीहरिभद्रसूरिभिर्मतेयमत्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

ख्यानं भावप्रत्याख्यानं च, तत्र नामप्रत्याख्यानं प्रत्याख्यानमित्यभिधानमुक्तं, यदिवा यस्य प्रत्याख्यानमिति नाम स नाम-नामवतोरभेदोपचात् नामप्रत्याख्यानं, स्थापनाप्रत्याख्यानम् आगारकखनिक्खेवो इति, आकारोऽनिक्षेपश्च, अक्षग्रहण-मन्येषामपि निराकाराणामुपलक्षणं, इयमत्र भावना–चित्रकर्म्मादौ प्रत्याख्यानं कुर्वतो या स्थापना सा प्रत्याख्यानप्रत्या-ख्यानवतोरभेदोपचारात् स्थापनाप्रत्याख्यानं आकारवत्, अक्षवराटकादौ स्थापना निराकारं स्थापनाप्रत्याख्यानं ॥ सम्प्र-ति द्रव्यप्रत्याख्यानादिप्रतिपादनार्थमाह—

दव्वम्मि निण्हगाई निव्विसयाई अ हुंति खित्तम्मि । भिक्खाईणमदाणे अइच्छ भावे पुणो दुविहं ॥ १०५३ ॥

द्रव्ये द्रव्यविषयं प्रत्याख्यानं निह्नवः, आदिशब्दात् द्रव्यस्य द्रव्ययोर्द्रव्याणां द्रव्यभूतस्य द्रव्यहेतोर्वा प्रत्याख्यानं, 'निव्विसयाई य होन्ति खित्तम्मि' निर्विषयादि भवति प्रत्याख्यानं क्षेत्रे, तत्र यो निर्विषय आदिष्टस्तस्य क्षेत्रप्रत्या-ख्यानं, आदिशब्दान्नगरादिप्रतिषिद्धपरिग्रहः, तथा भिक्षादीनां भिक्षणं भिक्षा–प्राभृतिका, आदिशब्दाद्वस्त्रादिपरिग्रहः, तेषामदाने अतिगच्छेति अदित्सेति वा वचनं, अतिगच्छप्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं वा, भावे भावविषयं पुनर्द्विविधं प्रत्याख्यानं, भावप्रत्याख्यानमित्यत्र चैवं व्युत्पत्तिः, भावस्य–सावद्ययोगस्य प्रत्याख्यानं भावप्रत्याख्यानं, भावतो वा शुभात् परिणामात् प्रत्याख्यानं भाव एव वा सावद्ययोगविरतिलक्षणः प्रत्याख्यानं भावप्रत्याख्यानं ॥ सम्प्रति द्वैविध्यमेवोपदर्शयति—

सुअ–नोसुअ सुअ दुविहं पुव्वमपुव्वं तु होइ नायव्वं । नोसुअपच्चक्खाणं मूले तह उत्तरगुणे य ॥ १०५४ ॥

द्विविधं भावप्रत्याख्यानं–श्रुतप्रत्याख्यानं नोश्रुतप्रत्याख्यानं च, 'सुय दुविहं'ति श्रुतप्रत्याख्यानं द्विविधं भवति ज्ञातव्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

तद्यथा–पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानमपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं च, तत्र पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं प्रत्याख्यानसंज्ञितं पूर्वं, अपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं त्वातुरप्रत्याख्यानादि, तथा नोश्रुतप्रत्याख्यानं श्रुतप्रत्याख्यानादन्यत्, तच्च द्विधा 'मूले तह उत्तरगुणे य' मूलगुणप्रत्याख्यानं उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च, मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विभेदं, तद्यथा–देशप्रत्याख्यानं सर्वप्रत्याख्यानं च, देशप्रत्याख्यानं श्रावकाणां, सर्वप्रत्याख्यानं संयतानां, सर्वप्रत्याख्यानेन चेहाधिकारः, सामायिकानन्तरं सर्वं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामीत्युपादानात्, इह वृद्धसम्प्रदायः–पच्चक्खाणे उदाहरणं, रायधूयाए पच्चक्खायं वरिसं जाव मंसं न खइयवं, पारणगे अणेगाणं जीवाणं घातो कतो, साहू विहरंता आगया, मंसं न पडिग्गहियं, तीए भणियं–किं तुज्झं अज्जवि वरिसं न पुज्जइ ?, साहूहिं भणियं–जावज्जीवमम्हं मंसपच्चक्खाणं, एत्थ धम्मकहा, सा संबुद्धा, पव्वइया, पुव्वं दव्वपच्चक्खाणं, पच्छा भावपच्चक्खाणं ॥ तदेवं व्याख्यातः प्रत्याख्यानमिति सूत्रावयवः, अधुना 'यावज्जीवये'ति व्याख्यायते, तत्रादौ भावार्थमभिधित्सुराह—

जावदवधारणम्मि जीवणमवि पाणधारणे भणिअं। आ पाणधारणाओ पावनिवत्ती इहं अत्थो ॥ १०५५ ॥

यावदित्ययं शब्दोऽवधारणे वर्त्तते, जीवनमपि प्राणधारणे भणितं, 'जीव प्राणधारण'इति वचनात्, ततो यावज्जीवया प्रत्याख्यामीति, कोऽर्थः ?–आ प्राणधारणात्–प्राणधारणं यावत् पापनिवृत्तिरिति, परतस्तु न विधिर्नापि प्रतिषेधः, विधावाशंसादोषप्रसङ्गात्, प्रतिषेधे तु सुरादिषूत्पन्नस्य भङ्गप्रसङ्गात्, इह च जीवनं जीव इति क्रियाशब्दो, न जीवतीति जीवः–आत्मा पदार्थः, जीवनं च प्राणधारणं, जीवनं जीवितं चेत्येकार्थं, तत्र जीवितं दशधा, तथा चाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

नामं १ ठवणा २ दविए ३ ओहे ४ भव ५ तब्भवे ६ य भोगे ७ य।
संजम ८ जस ९ कित्ती १० जीवियं च तं भण्णई दसहा ॥ १०५६ ॥

तज्जीवितं दशधा भण्यते, तद्यथा–नामजीवितं स्थापनाजीवितं द्रव्यजीवितमोघजीवितं भवजीवितं तद्भवजीवितं भोग-जीवितं संयमजीवितं यशोजीवितं कीर्त्तिजीवितं च, एष गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थं तु भाष्यकारः स्वयमेव वक्ष्यति, तत्र नामस्थापने श्रुण्णत्वादनादृत्य शेषभेदव्याख्यानार्थमाह—

दवे सचित्ताई आउयसद्दवया भवे ओहे। नेरइयाईण भवे तब्भव तत्थेव उप्पत्ती ॥ १९० ॥ (भा.)

द्रव्ये–द्रव्यविषयं जीवितं, द्रव्यजीवितमित्यर्थः, सचित्तादि सचित्तमचित्तं मिश्रं वा, इह कारणे कार्योपचारात् येन द्रव्येण सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन पुत्रहिरण्योभयरूपेण यस्य यथा जीवितमायत्तं तस्य तथा तद् द्रव्यजीवितमुच्यते, उक्तं द्रव्यजीवितं, 'आउयसद्दवया भवे ओहे' ओघजीवितं–सामान्यजीवितं आयुस्सद्रव्यता–आयुःप्रदेशकर्म्म तस्य द्रव्यैः सह-(वर्त्त)मानता आयुःसद्रव्यता, आयुःकर्मद्रव्यसहचारिता जीवस्येत्यर्थः, इदं च सामान्यजीवितं सकलसंसारिणामविशेषेण सर्वदा भावि, तत इदमङ्गीकृत्य यदि परं सिद्धा एव मृता, न पुनरन्ये केचन, उक्तमोघजीवितं, नैरयिकादीनां नैरयिकतिर्य-ङ्नरामराणां भव इति स्वस्वभवे स्थितिर्भवजीवितं, उक्तं भवजीवितं, 'तब्भव तत्थेव उववत्ती' तस्मिन् भवे भूयो जीवितं तद्भवजीवितं, किं तदित्याह–तत्रैवोत्पत्तिः तत्र–तस्मिन् अधिकृते तिर्यग्भवे मनुष्यभवे वा स्वकायस्थित्यनुसारेण भूयो भूय उत्पत्तिः, इदं चौदारिकशरीरिणामेवावसातव्यं, अन्यत्र निरन्तरं भूयो भूयस्तत्रैवोत्पत्त्यभावात् । उक्तं तद्भवजीवितं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'जीवित' शब्द व्याख्यायते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥५८०॥

भोगम्मि चक्किमाइ संजमजीवं तु संजयजणस्स। जस कित्ती य भगवओ संजमनरजीवअहिगारो॥१९१॥ (भा.)

'भोगे' भोगजीवितं चक्रवर्त्त्यादीनाम्, आदिशब्दाद्बलदेववासुदेवादिपरिग्रहः, उक्तं भोगजीवितं, संयमजीवितं 'संयतजनस्य' साधुलोकस्य, उक्तं संयमजीवितं, यश कीर्त्तिः (श्च) भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः, ततो यशोजीवितं कीर्त्तिजीवितं च भगवतः प्रतिपत्तव्यं, यशकीर्त्त्योश्चायं विशेषः, "दानपुण्यफला कीर्त्तिः, पराक्रमकृतं यशः" अन्ये त्विदमेकमेवाभिदधति–केवलं संयमप्रतिपक्षभावतो दशममसंयमजीवितमविरतिगतं प्रतिभणन्ति, 'संजमनरजीव अहिगारो'त्ति संयमजीवितेन नरभवजीवितेन चेहाधिकारः, 'यावज्जीवाए' इत्यत्र यावज्जीवतयेत्यपि संस्कारः, तत्र यावत् जीवो–जीवनं–प्राणधरणं यावज्जीवं, 'यावदवधारणे' इत्यव्ययीभावः समासः, यावज्जीवं भावो यावज्जीवता तया यावज्जीवतया, तत्र प्राकृते तकारस्यालाक्षणिको लोप इति यावज्जीवाए इति सिद्धं, अथवा प्रत्याख्यानक्रिया अन्यपदार्थः, यावज्जीवो यस्यां सा यावज्जीवा तया यावज्जीवयेति, कृतं प्रसङ्गेन। तथा तिस्रो विधा यस्य स त्रिविधः सावद्ययोगः, स च प्रत्याख्येय इति कर्म, कर्मणि च द्वितीया विभक्तिः, तं त्रिविधं योगं, त्रिविधेन करणेन, अस्यैव विवरणमाह–मनसा वाचा कायेन, तस्य च करणस्य कर्म्म प्रत्याख्येयो योगः, तमपि सूत्रेण एव विवृणोति, न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि–नानुमन्ये। आह–किं पुनः कारणमुद्देशक्रममभिलङ्घ्य व्यत्यासेन निर्देशः कृतः ?, उच्यते, योगस्य करणतन्त्रतोपदर्शनार्थं, तथाहि–योगः करणवश एव, करणानां भावे योगस्यापि भावाद् अभावे चाभावात्, करणानामेव तथाक्रियारूपेण प्रवृत्तेः, अपरस्त्वाह–न करोमि न कारयामि कुर्वन्तं न समनुजानामि इत्येतावता ग्रन्थेन गतेऽन्यमपीत्यतिरिच्यते,

सामायिकसूत्रार्थः

॥५८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न चातिरिक्तेन सूत्रेण चार्थः, उच्यते, साभिप्रायमिदमनुक्तस्याप्यर्थस्य सङ्ग्रहार्थं, तथाहि–सम्भावनेऽयमपिशब्दः, स चोभयमध्यस्थः एतत्सम्भावयति, यथा कुर्वन्तं नानुजानामि एवं कारयन्तमप्यन्यं अनुज्ञापयंतमप्यन्यं नानुजानामीति, यथा वर्त्तमानकाले कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि, एवमपिशब्दादतीते काले कृतवन्तमपि कारितवंतमपि अनुज्ञापितवंतमपि, तथाऽनागते काले करिष्यन्तमपि कारयिष्यन्तमपि अनुज्ञापयिष्यन्तमपीति त्रिकालमपि सङ्ग्रहो वेदितव्यः, इह न क्रियाक्रियावतोरेकान्तेनाभेद एव, ततो न केवला क्रिया सम्भवति इति ख्यापनार्थमन्यग्रहणं, अत्र बहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते, मा भूद् मुग्धमतिविनेयसम्मोह इति । किञ्चित्तु सूत्रस्पर्शनिर्युक्तौ वक्ष्यामः । तदेवमिदमेतावत्सूत्रस्य व्याख्यातम्, इह तु 'सर्वं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामी'त्यत्र प्रत्याख्यानं गृहस्थान् साधूनपि प्रतीत्य भेदपरिणामतो निरूपयति, गुरवस्तु व्याचक्षते–तदिदमेतावत् सूत्रस्य व्याख्यातं, सम्प्रति 'त्रिविधं त्रिविधेने'त्येतदेव व्याचष्टे, तत्र त्रिविधं सावद्ययोगं प्रत्याख्येयं कृतकारितानुमतिभेदभिन्नं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेनेति करणेन प्रत्याख्याति, ततस्तद्भेदोपदर्शनार्थमाह—

सीआलं भंगसयं तिविहं तिविहेण समिईगुत्तीहिं । सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिवित्थरत्थो गओ एवं ॥ १०५७ ॥

तत्राह–यद्येवमिह सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानाधिकारात् सप्तचत्वारिंशदधिकशतं प्रत्याख्यानभेदानां गृहस्थप्रत्याख्यानभेदत्वात् अयुक्तमेतदिति, अत्रोच्यते, प्रत्याख्यानसामान्यतो गृहस्थप्रत्याख्यानभेदाभिधानेऽप्यदोषात्, तत्र सप्तचत्वारिंशदधिकं भेदशतं भाव्यते–सीयालं भंगसयं गिहिपच्चक्खाणभेयपरिमाणं । तं च विहिणा इमेणं भावेयव्वं पयत्तेणं ॥ १ ॥ इह योगविषये त्रयस्त्रिकाःत्रयो द्विकाः त्रय एककाः, करणानि पुनर्योगेष्वथ एवं–त्रिद्व्येकं त्रिद्व्येकं त्रिद्व्येकं चेति, "तिन्नि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'प्रत्याख्यान'स्य भंगा: उच्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५८१॥

तिया तिन्नि दुया तिन्निक्काक्का य होंति जोगेसु। तिदुएक्कं तिदुइक्कं तिदुएक्कं चेव करणाइं॥१॥" आगतफलं तु क्रमेणैवम्–एक एककस्त्रयस्त्रिका द्वौ नवकौ एकस्त्रिको द्वौ नवकाविति, स्थापना ३३३२२२१११ का पुनरत्र भावना–न करेइ न कारवेइ करंतंपि अन्नं न समणुजाणइ मणेणं वायाए काएणं एस एक्को ३२१३२१३२१ भेदो, नन्वेष भङ्गो देशविर- १३३३९९३९९ तस्य कथमुपपद्यते?, अनुमतेस्तस्य प्रतिबन्धासम्भवात्, नैष दोषः, स्वविषयाद्बहिरनुमतेरपि प्रतिषेधसंभवात्, यथा स्वयं-भूरमणसमुद्रमत्स्यादिघाते, उक्तं च–"न करेईच्चाइ तिगं गिहिणो कह होइ देसविरयस्स ?। भन्नइ विसयस्स बहिं पडि-सेहो अणुमतीएऽवि ॥ १ ॥" अत्रैवाक्षेपपरिहारौ भाष्यकृदाह–"केई भणंति गिहिणो तिविहं तिविहेण नत्थि संवरणं। तं न जतो निद्दिट्ठं पन्नत्तीए विसेसेउं ॥ १ ॥ तो कह निज्जुत्तीएऽणुमइनिसेहोत्ति ? सो सविसयंमि। सामन्नेणं नत्थि उ तिविहं तिविहेण को दोसो ? ॥ २ ॥ पुत्ताइसंततिनिमित्तमेत्तमेक्कादसिं पवन्नस्स। जंपंति केइ गिहिणो दिक्खाभिमुह-स्स तिविहंपि ॥ ३ ॥ (विशे. ३५४२–३–४) एतास्तिस्रोऽपि गाथा भावार्थमङ्गीकृत्योपोद्घातनिर्युक्तौ भाविता इति न भूयः प्रतन्यन्ते। आह कहं पुण मणसा करणं कारावणं अणुमती य ?। जह वइतणुजोगेहिं करणाई तह भवे मणसा ॥ १ ॥ तयहीणत्ता वइतणुकरणाईणमहव मणकरणं। सावज्जजोगमनणं पन्नत्तं वीयरागेहिं ॥ २ ॥ कारवणं पुण मणसा चिंतेइ करेउ एस सावज्जं। चिंतेती उ कए पुण सुट्ठु कयं अणुमती होइ ॥ ३ ॥ गाथात्रयमपीदं सुगमं, एष गतः प्रथमो भेदः, न करेइ न कारवेइ करंतंपि अन्नं न समणुजाणइ मणेणं वायाए एस एक्को १, मणेणं काएण य बिइओ २, वायाए काएण य तईओ ३, एस बिइओ मूलभेदो गतो। इदाणिं तइओ–न करेइ न कारवेइ करंतंपि अन्नं न समणुजाणइ

प्रत्याख्या-नभंगाः

॥५८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

मणेणं एक्को १ वायाए बिइओ २ काएण तइओ ३, एस तइयो मूलभेदो गतो। इयाणिं चउत्थो–न करेइ न कारवेमि मणेणं वायाए काएणं एक्को १ न करेइ करंतं नाणुजाणइ बिइओ २, न कारवेइ करंतं नाणुजाणइ तईओ ३। एस चउत्थो मूलभेदो गतो। इदाणिं पंचमो–न करेइ न कारवेमि मणेणं वायाए एस एक्को १ न करेइ करेंतं नाणुजाणइ एस बितिओ २, न कारवेइ करंतं नाणुजाणइ एस तइओ ३, एए तिन्नि भंगा मणेणं वायाए य लद्धा, अण्णेऽवि तिण्णि मणेण काएण य एवमेव लब्भंति, तहा अवरेऽवि तिन्नि वायाए काएण य लब्भंति, एवमेते सव्वे नव, एवं पंचमोऽप्युक्तो मूलभेदः। इयाणिं छट्ठो–न करेइ न कारवेइ मणेणं एस एक्को १ तह य न करेइ करंतं नाणुजाणइ मणेणं एस बिइओ २, न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणेणं एस तईओ, एवं वायाएवि तिण्णि, काएण तिण्णि लब्भंति, उक्तः षष्ठो मूलभेदः। अधुना सप्तमः–न करेइ मणेणं वायाए काएण य एक्को, न कारवेइ मणमाईहिं एस बितिओ, करेंतं नाणुजाणइ एस तइओ, सप्तमोऽप्युक्तो मूलभेदः। इदानीमष्टमः–न करेइ मणेण वायाए एक्को, तहा मणेण काएण य एस बिइओ, तहा वायाए काएण य एस तइओ, एवं न कारवेइ, एत्थवि तिण्णि भंगा, करेंतं नाणुजाणइ, एत्थवि तिण्णि, उक्तोऽष्टमो मूलभेदः। सम्प्रति नवमः–न करेइ मणेणं एक्को, न कारवेइ बितिओ, करेंतं नाणुजाणइ एस तइओ, एवं वायाए तिन्नि, काएण य तिन्नि, उक्तो नवमः। इह प्रथमभङ्गे एक एव भङ्गः द्वितीयभङ्गे त्रयः तृतीयभङ्गे त्रयः, चतुर्थभङ्गे त्रयः पञ्चमे भङ्गे नव षष्ठभङ्गे नव सप्तमभङ्गे त्रयः अष्टमभङ्गे नव नवमभङ्गेऽपि नवेति, सर्वसङ्ख्यया एकोनपञ्चाशद्भङ्गाः, तत्रातीतात् सावद्ययोगात् प्रतिक्रमणं प्रत्युत्पन्नस्य संवरणं अनागतस्य प्रत्याख्यानमिति कालत्रयेण एकोनपञ्चाशद् गुणिताः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५८२॥

सप्तचत्वारिंशदधिकं भङ्गशतं भवति, उक्तं च–"लद्धकलमाणनेयं भंगा उ भवंति अउणपन्नासं। तीयाणागयसंपइगुणियं कालेण होइ इमं ॥ १ ॥ सीयालं भंगसयं कह ? कालतिएण होइ गुणगाओ। तीयस्स पडिक्कमणं पच्चुप्पण्णस्स संवरणं ॥ २ ॥ पच्चक्खाणस्स तहा होइ एसस्स एव गुणणाओ। कालतिएणं भणियं जिणगणहरवायगेहिं च ॥ ३ ॥ एवं तावत् गृहस्थप्रत्याख्यानभेदाः प्रतिपादिताः, सम्प्रति साधुप्रत्याख्यानभेदान् सूचयति–'तिविहेणं'ति, अयमत्र भावार्थः–त्रिविधं त्रिविधेनेत्यनेन सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानादर्थतः सप्तविंशतिभेदानाह, ते चैवं भवति–इह सावद्ययोगः प्रसिद्ध एव हिंसादिः, तं स्वयं न करोति न कारयति कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानाति, एकैकं करणत्रिकेण मनसा वाचा कायेनेति नवभेदाः, अतीतानागतवर्त्तमानकालत्रयसम्बन्धाच्च सप्तविंशतिरिति, इदं च प्रत्याख्यानभेदजालं 'समितेगुत्तीहिं'ति समितिगुप्तिभिर्निष्पद्यते, तत्र ईर्यासमितिप्रमुखाः प्रवीचाररूपाः पञ्च समितयः, गुप्तयस्तु प्रवीचाराप्रवीचाररूपा मनोगुप्त्यादयस्तिस्रः, अन्ये व्याचक्षते–किलैता अष्टौ प्रवचनमातरः सामायिकसूत्रेण गृहीताः, तत्र 'करेमि भंते ! सामाइयं'ति पञ्च समितयो गृहीताः, 'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामी'ति तिस्रः गुप्तयः, अत्र समितयः क्रियायाः प्रवर्त्तने निग्रहे गुप्तयः, एताः खल्वष्टौ प्रवचनस्य मातर इव मातरः, सामायिकसूत्रस्य चतुर्दशपूर्वाणां चात्रैव परिसमाप्तत्वात्, उक्तं च–"एआओ अट्ठ पवयणमायाओ जासु सामाइयं चउद्दस पुव्वाणि अ मायाणि, माउगातोत्ति मूलं भणियं होइ ॥" इहैव प्रायः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिवक्तव्यताया उक्तत्वात् मध्यग्रहणे च तुलादण्डन्यायेनाद्यन्तयोरप्यालेपात् इदमाह–'सुत्तप्फा-

सामायिके कालत्रयं

॥५८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

सियनिज्जुत्तिवित्थरत्थो गतो एवं'ति, सूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिविस्तरार्थो गत एवमुक्तेनेति ॥ सम्प्रति सूत्र एवातीतादित्रिविधकालग्रहणमुक्तमिति दर्शयन्नाह—

सामाइयं करेमि पच्चक्खामी पडिक्कमामित्ति । पच्चुप्पन्नमणागयअईअकालाण गहणं तु ॥ १०५८ ॥

'सामायिकं करोमि', तथा 'प्रत्याख्यामि सावद्ययोग'मिति, तथा 'प्रतिक्रमामि प्राक्कृतात् सावद्ययोगात्', इदं हि यथासङ्ख्यमेव प्रत्युत्पन्नानागतातीतकालानां ग्रहणमिति, उक्तं च–"अतीतं निंदइ पडुप्पन्नं संवरेइ अणागयं पच्चक्खाति", इति ॥ सम्प्रति तस्य भदन्त ! प्रतिक्रमामीत्येतद् व्याख्यायते–'तस्से'त्यधिकृतो योगः सम्बध्यते, ननु च प्रतिक्रमामीत्यस्याः क्रियायाः सोऽधिकृतो योगः कर्म्म, कर्म्मणि च द्वितीया विभक्तिरतस्तमित्यभिधेये किमर्थं तस्येत्यभिधीयते ?, उच्यते, विशेषख्यापनार्थं, तथाहि–'तस्से'त्यत्रावयवावयविसम्बन्धे षष्ठी, ततोऽयमर्थः–योऽसौ योगस्त्रिकालविषयः तस्यातीतं सावद्यमंशं प्रतिक्रमामि, न शेषं वर्त्तमानमनागतं वा, केचित् पुनरविभागज्ञा अविशिष्टमेव सामान्येन योगं सम्बन्धयति, तन्न युक्तं, अविशिष्टस्य त्रिकालविषयस्य प्रतिक्रमणासम्भवात्, अतीतविषयस्यैव प्रतिक्रमणस्य तत्र तत्र सूत्रेऽभिधानात्, अथ मन्येथाः–अविशिष्टमपि योगं सम्बध्य पुनर्विशेष्येऽवस्थापनीयस्तच्छब्दस्ततो न कश्चिद्दोषः, तदप्यसमीचीनं, एवं सति प्रतिपत्तिगुरुताप्रसक्तेः, पूर्वं अविशेषेण योगस्य सम्बन्धः, तदनन्तरं पुनरेतच्छब्दस्य विशेषेऽवस्थापनमिति न ऋज्वी प्रतिपत्तिः, यद्येवं तर्हि 'अतीतं भंते ! पडिक्कमामि' इत्येतावदेव सुखप्रतिपत्तये कस्मान्न कृतं ?, उच्यते, पुनरुक्तत्वदोषप्रसङ्गात्, तथाहि–प्रतिक्रमणमेतत् प्रायश्चित्तमध्ये पठितं, तच्च प्रायश्चित्तमासेविते भवति, ततोऽर्थादतीतविष-

आ. सू. ९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** प्रत्याख्यानास्य अतीत आदि त्रिविध-कालग्रहणं दर्शयते

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

यमेवेत्यतीतग्रहणमतिरिच्यते, तस्मात् प्रतिक्रमामीति शब्दस्यावश्यं कर्म्मणा भवितव्यं, तच्च भूतं सावद्ययोगं मुक्त्वा नान्यत् कर्म भवितुमर्हतीत्यर्थात् तस्येत्यवयवावयविसम्बन्धलक्षणा षष्ठीति न कदाचिदर्थहानिः प्रतिपत्तिगुरुता चेति । आह–यदि पुनरुक्तादिभयादेवमभिधीयते तदा इदमपरमनर्थकं पदमिति दर्शयति—

तिविहेणं तु न जुत्तं पडिवयविहिणा समाहिअं जेण। अत्थविगप्पणयाए गुणभावणयत्ति को दोसो? ॥ १०५९॥

'त्रिविधं त्रिविधेने'त्यत्र त्रिविधेनेति न युक्तं, किमित्यत आह–प्रतिपदविधिना समाहितं येन, यस्मादस्यार्थः प्रतिपदमभिहित एव, तद्यथा–मनसा वाचा कायेनेति, अत्रोच्यते–अर्थविकल्पनया गुणभावनयेति को दोषः?, अर्थविकल्पना नामाभेदोपदर्शनं गुणभावना–गुणाभ्यासस्ताभ्यां हेतुभ्यामेवमभिधाने न कश्चिद्दोषः, इयमत्र भावना–एवं ह्युक्ते सामान्यविशेषरूपत्वं सर्वस्याप्यर्थस्योपदर्शितं भवति, तथाहि–तिविहं तिविहेणेति सामान्यरूपता दर्शिता, मणेणं वायाए इत्यादिना तु विशेषरूपतेति, तथा एवमभिहिते यः सामायिकलक्षणो गुणस्तस्य पुनः पुनरभिधानात्मिका भावना भवति, गुणभावना च कर्म्मनिर्जरणहेतुरित्यदोषः, अन्यच्च–मनसा वाचा कायेनेत्यभिहिते प्रतिपदं न करोमि न कारयामि नानुजानामीति 'यथासङ्ख्यमनुदेशः समाना'मिति न्यायतो यथासङ्ख्यमनिष्टं मा प्रापदिति त्रिविधेनैकक(नेत्येव)मुच्यते, एवं त्रिविधमित्यत्राप्याक्षेपपरिहारौ स्वयमनुगन्तव्यौ, प्रायः समानगमत्वादिति कृतं प्रसङ्गेन । तस्य भदन्त! प्रतिक्रमामीत्यत्र भदन्तेति पूर्ववत्, इदं चामन्त्रणमतिचारनिवृत्तिक्रियाभिमुखः सन् तद्विशुद्ध्यर्थं कुरुते, आह–ननु पूर्वमुक्तो यो भदन्तशब्दः स एवात्राप्यनुवर्त्तिष्यते, एवमर्थं ह्यादौ स प्रयुक्त इति, किमर्थमस्योपादानमिति?, उच्यते, अनु-

त्रिकालिकता पदचिन्ता च

॥५८३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

वर्त्तनार्थमेवायं पुनरनुस्मरणाय प्रयुक्तः, तथा च इयं पाणिनिप्रभृतीनां परिभाषा–अनुवर्त्तन्ते च नाम विधयो न चानुवर्त्तनादेव भवन्ति, किन्तर्हि ?, यत्नाद् भवन्ति, स चायं यत्नः पुनरुच्चारणमिति, अथवा सामायिकक्रियाप्रत्यर्पणवचनोऽयं भदन्तशब्दः, अनेन चैतत् ख्यापितं भवति–सर्वक्रियावसाने गुरोः प्रत्यर्पणं कार्यमिति, उक्तं च भाष्यकारेण–"सामाइयपच्चप्पणवयणो वाऽयं भदंतसद्दोत्ति । सव्वकिरियावसाणे भणियं पच्चप्पणमणेणं ॥ १ ॥"(विशे. ३५७१) प्रतिक्रमामीत्यत्र प्रतिक्रमणं मिथ्यादुष्कृतमभिधीयते, तच्च द्विधा–द्रव्यतो भावतश्च, तथा चाह निर्युक्तिकारः—

दव्वम्मि निण्हगाई कुलालमिच्छंति तत्थुदाहरणं । भावम्मि तदुवउत्तो मिगावई तत्थुदाहरणं ॥ १०६० ॥

द्रव्ये–द्रव्यप्रतिक्रमणं प्रतिक्रमणप्रतिक्रमणवतोरभेदोपचारात् निह्नवादिः, आदिशब्दादनुपयुक्तादिपरिग्रहः, तत्रोदाहरणं कुलालमित्यादुष्कृतं, तच्चेदं–एगस्स कुंभगारस्स कुडीए साहुणो ठिया, तत्थेगो चेल्लगो तस्स कुंभगारस्स भंडाणि अंगुलिधणुहएण कक्करेहिं विंधइ, कुंभगारेण पडिजग्गयंतेण दिट्ठो, भणिओ य–कीस मे भंडाणि काणेसि ?, खुड्डगो भणइ-मिच्छादुक्कडंति, एवं सो पुणो पुणो विंधिऊण मिच्छादुक्कडं देइ, पच्छा कुंभगारेण तस्स खुड्डगस्स कण्णामोडओ दिन्नो, सो भणइ–दुक्खाविज्जामि अहं, कुंभगारो भणइ–मिच्छामि दुक्कडं, एवं सो पुणो पुणो कण्णामोडयं दाऊण मिच्छादुक्कडं करेइ, पच्छा चेल्लगो भणइ–अहो सुंदरं मिच्छादुक्कडंति, कुंभगारो भणति–तुज्झवि एरिसं चेव मिच्छादुक्कडंति, पच्छा ठितो विंधियव्वयस्स, एवं द्रव्यपडिक्कमणं । भावप्रतिक्रमणं प्रतिपादयति–'भावंमी'त्यादि, भावे–भावप्रतिक्रमणं 'तदुपयुक्तः' तस्मिन्नधिकृते शुभव्यापारे उपयुक्तस्तदुपयुक्तो यत् करोति प्रतिक्रमणं भावप्रतिक्रमणं, तत्रोदाहरणं मृगावती, भयवं वद्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** प्रतिक्रमणस्य द्रव्य एवं भाव-भेद: उच्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

माणसामी कोसंबीए समोसरितो, तत्थ चंदसूरा भयवंतं वंदगा सविमाणा ओइण्णा, तत्थ मिगावती अज्जा उदयणमाया दिवसोत्तिकाउं चिरं ठिया, सेसाओ साहुणीओ तित्थयरं वंदिऊण पडिगया, सिग्घमेव वियालीभूयं, मिगावती संभंता गया अज्जचंदणासगासं, एयातो ताव पडिक्कंताओ, मियावती आलोएउं पवत्ता, अज्जचंदणाए भणिया-अज्जो! चिरं ठियासि, किं जुत्तं नाम तुज्झ उत्तमकुलप्पसूयाए एगागिणीए चिरं अच्छिउंति?, सा सब्भावेण मिच्छादुक्कडंति भणमाणी अज्जचंदणाए पाएसु पडिया, अज्जचंदणाएवि तीए वेलाए संथारगं गयाए निद्दा आगया, पसुत्ता, मिगावतीएवि तिव्वसंवेगमावन्नाए पायवडियाए चेव केवलनाणं समुप्पण्णं, सप्पो य तेणंतेणमुवागतो, अज्जचंदणाए य संथारगातो हत्थो लंबति, मिगावतीए मा खज्जिहित्ति सो हत्थो संथारगं चडावितो, सा विबुद्धा, भणइ-किमेयंति?, अज्जवि तुमं अच्छासित्ति मिच्छादुक्कडं, निद्दापमाएणं न उट्ठवियासि, मियावती भणति-एस सप्पो मा ते खाहितित्ति हत्थो चडावितो, सा भणइ-कहिं सो?, सा दाएइ, अज्जचंदणा अपेच्छमाणी भणइ-अज्जो! किं ते अतिसयो?, सा भणइ-आमं, तो किं छउमत्थो केवलिगो वा?, सा भणइ-केवलिगो, पच्छा अज्जचंदणा पाएसु पडिउं भणइ-मिच्छादुक्कडं, केवली आसाइतो, एवं भावपडिक्कमणं, एत्थ गाहा-जइ य पडिक्कमियव्वं, अवस्स काऊण पावयं कम्मं। तं चेव न कायव्वं, ता होइ पए पडिक्कंतो ॥ १ ॥ (आव. ६८३) इह च प्रतिक्रमामि, भूतात् सावद्ययोगान्निवर्त्तेऽहमित्युक्तं भवति, तस्माच्च निवृत्तिर्यत्तदनुमतिविरमणमिति, तथा निंदामि गर्हे इति, अत्र निन्दामि जुगुप्से इत्यर्थः, गर्हे इति च तदेवोक्तं भवति, यद्येवं तत एकार्थत्वे को भेदः?, उच्यते, सामान्यार्थाभेदेऽपि इष्टविशेषार्थो गर्हाशब्दः, यथा सामान्ये गमनार्थे गच्छतीति गौः सर्पतीति सर्पः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

तथापि गमनविशेषोऽवगम्यते शब्दार्थादेव, एवमिहापि निन्दागर्हयोरर्थविशेषोऽवसातव्यः, तमेवार्थविशेषं दर्शयति—

सच्चरित्तपच्छयावो निंदा तीए चउक्कनिक्खेवो । दव्वे चित्तगरसुआ भावे सुबहू उदाहरणा ॥ १०६१ ॥

सचरित्रस्य सत्त्वस्य पश्चात्तापः स्वप्रत्यक्षं जुगुप्सा निन्दा, उक्तं च–'आत्मसाक्षिकी निन्दे'ति, तस्याश्च निन्दाया नामादिभेदश्चतुष्को निक्षेपः, तत्र नामस्थापने प्रतीते, द्रव्यनिन्दायां चित्रकरसुता उदाहरणम्–सा जहा रण्णा परिणीया, अप्पाणं निंदियाइया तहा कहेयवा, हेट्ठा कहाणगं कहियंति पुणो न भन्नइ, भावनिंदायां सुबहून्युदाहरणानि योगसङ्ग्रहे वक्ष्यंते, लक्षणं पुनरिदम्–हा दुट्ठु कयं हा दुट्ठु कारिअं हा दुट्ठु अणुमयं हत्ति । अंतो अंतो डज्झइ, पच्छातावेण वेवंतो ॥ १ ॥

गरिहावि तहाजाइयमेव नवरं परप्पगासणया । दव्वंमि य मरुणायं भावे सुबहू उदाहरणा ॥ १०६२ ॥

गर्हापि तथाजातीयैव–निन्दाजातीयैव, नवरं–एतावान् विशेषः, परप्रकाशनया गर्हा भवति, किमुक्तं भवति ?–या गुरोः प्रत्यक्षं जुगुप्सा गर्हेति, 'परसाक्षिकी गर्हे'ति वचनात्, सापि नामादिभेदाच्चतुर्विधा, तत्र नामस्थापने अनादृत्याह–द्रव्ये द्रव्यगर्हायां मरुकोदाहरणं, तच्चेदम्–आणंदपुरे मरुओ णहुसाए समं संवासं काऊण उवज्झायस्स कहेइ, जहा सुमिणए णहुसाए समं संवासं गतोमित्ति। भावगर्हायां साधोरुदाहरणं,–गंतूण गुरुसमीवं काऊण य अंजलिं विणयमूलं । जह अप्पणो तह परे जाणावण एस गरिहा उ ॥ १ ॥ (ओघ. १५८)त्ति । किं निंदामि गर्हे इत्यत आह–'आत्मानं' अतीतसावद्ययोगकारिणमश्लाघ्यं, अथवा अत्राणं–त्राणविरहितं अतीतसावद्ययोगं निंदामि गर्हे, सामायिकेनाधुना त्राणमिति, अथवा 'अत सातत्यगमने' अतनं–सततभवनप्रवृत्तं अतीतं सावद्यं योगं निन्दामि गर्हे, निवर्त्तयामीति तात्पर्यार्थः, 'व्युत्सृज्ञामी'ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ निंदा, गर्हा, व्युत्सर्जन पदानां व्याख्या: उच्यते

विविधार्थो विशेषणार्थो वा विशब्दः उच्छब्दो भृशार्थे सृजामि–त्यजामि, विविधं विशेषेण वा भृशं त्यजामि अतीतसावद्ययोगमिति भावः, ननु करोमि भदन्त ! सामायिकमिति सावद्ययोगविनिवृत्तिरित्युच्यते, तस्य व्युत्सृजामीति शब्दप्रयोगे वैपरीत्यमापद्यते, तन्न, यस्मात् मांसादिविरमणक्रियानन्तरं व्युत्सृजामीति प्रयोगे तद्विपक्षत्यागो मांसभक्षणनिवृत्तिरभिधीयते, एवमिहापि सामायिकानन्तरं व्युत्सृजामीति प्रयोगे तद्विपक्षत्यागः सावद्ययोगनिवृत्तिरवगम्यते इति, स च व्युत्सर्गो नामादिभेदाच्चतुष्प्रकारः, तत्र नामस्थापने अनादृत्याह—

दव्वविउस्सग्गे खलु पसन्नचंदो भवे उदाहरणं । पडियागयसंवेगो भावम्मिवि होइ सो चेव ॥ १०६३ ॥

द्रव्यव्युत्सर्गो–गणोपधिशरीरान्नपानादिव्युत्सर्गः, अथवा द्रव्यव्युत्सर्गो नाम आर्त्तध्यानादिध्यायिनः कायोत्सर्गः, अत एवाह–द्रव्यव्युत्सर्गे खलु प्रसन्नचंद्रो राजर्षिर्भवत्युदाहरणं, भावव्युत्सर्गस्त्वज्ञानादिपरित्यागः, अथवा धर्म्मशुक्लध्यायिनः कायोत्सर्गः, तथा चाह–प्रत्यागतसंवेगो भावव्युत्सर्गेऽपि स एव–प्रसन्नचन्द्रो राजर्षिरुदाहरणमिति गाथाक्षरार्थः, भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्–पोयणपुरे नगरे पसन्नचंदो राया, तत्थ भयवं महावीरो समोसड्ढो, ततो राया धम्मं सोऊण संजायसंवेगो पव्वइतो, गीयत्थो जाओ, अन्नया जिणकप्पं पडिवज्जिउकामो सत्तभावणाए अप्पाणं भावेति, तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे मसाणपडिमं पडिवन्नो, भयवंपि महावीरो तत्थेव रायगिहे समोसड्ढे, लोगो पवंदओ नीति, दुवे य वाणियगा पोयणपुरातो तत्थेव आगया, तत्थेगो पसन्नचंदं पासिऊण भणइ–एस अम्हाण सामी रायसिरिं परिच्चइऊण तवसिरिं पडिवन्नो, अहो एयस्स धण्णया, बिइओ भणइ–कत्तो एयस्स धन्नया ? जो य असंजायबलं पुत्तं रज्जे ठवेऊण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पव्वइतो, सो तवस्सी पच्चंतनिवेहिं मंतीहि य परिहविज्जइ, नगरं च उत्तमखयं पवन्नं, अंतेउरंपि कमपि अवत्थं गयं न जाणिज्जइ, ता एवमणेण बहू लोगो दुक्खे ठवितोत्ति अदट्ठव्वो एस, तं सोऊण तस्स कोवो जातो, चिंतियं चऽणेण–को मम पुत्तस्स अवकरेइ ?, नूणममुगो, ता किं तेण ?, एयावत्थगतोवि विणिवाएमि, माणससंगामेण रोद्दज्झाणं पवन्नो, हत्थिणा हत्थिं वावाएइ, आसेण आसं, इच्चाइ विभासा, एत्थंतरे सेणिओ भयवं वंदतो जाइ, तेण दिट्ठो, वंदितो, णेण ईसिंपि नो निज्झाइतो, सेणिएण चिंतियं–सुक्कज्झाणोवगतो एस भयवं, एरिसंमि झाणे कालगयस्स का गई हवइत्ति भयवं पुच्छिस्सं, ततो गतो, वंदिऊण पुच्छितो णेण भयवं, जंमि ठाणे ठितो वंदितो मए पसन्नचंदो तंमि मयस्स कहिं उववातो भवति ?, भयवया भणियं–अहेसत्तमाए पुढवीए, ततो सेणिएणं चिंतियं–हा किमेयं ?, पुणो पुच्छिस्सं, एत्थंतरंमि पसन्नचंदस्स माणसे संगामे पहाणनायगेण सहावडियस्स असिसत्तिचक्ककप्पणिपमुहाणि पहरणाणि खयं गयाणि, ततोऽणेण सिरत्ताणेणं वावाएमित्ति परामुसियमुत्तमंगं जाव लोअं कडं पासइ, ततो संवेगमावन्नो महया विसुज्झमाणपरिणामेणं अत्ताणं निंदिउं पवत्तो, समाहियं पुणरवि अणेण सुक्कज्झाणं, एत्थंतरंमि पुणरवि पुच्छितो सेणिएणं भयवं–जारिसे झाणे संपइ पसन्नचंदो वट्टइ तारिसे मयस्स कहिं उववातो ?, भगवया भणियं–अणुत्तरेसु, ततो सेणिएण भणियं–पुव्वं किमन्नहा परूवियं ? उयाहु मया अन्नहा अवगच्छियं ?, भयवया भणियं–न अन्नहा परूवियं, सेणिएण भणियं–कहमेयंति ?, भयवया सव्वो वुत्तंतो कहितो, एत्थंतरे पसन्नचंदसमीवे दिव्वो देवदुंदुभिसणाहो महंतो कलयलो उद्धाइतो, ततो सेणिएण भणियं–भयवं ! किमेयंति ?, भयवया भणितं–तस्सेव विसुज्झमाणपरिणामस्स केवलनाणं समुप्पण्णं, ततो से देवा महिमं करेंति, एस एव दव्वविउस्सग्ग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

भावविउस्सग्गेसु उदाहरणं ॥ साम्प्रतं समाप्तौ यथाभूतोऽस्य सामायिकस्य कर्त्ता भवति तथाभूतं सङ्क्षेपतोऽभिधित्सुराह—

सावज्जजोगविरओ तिविहं तिविहेण वोसरिअ पावो । सामाइअमाईए एसोऽणुगमो परिसमत्तो ॥ १०६४ ॥

सावद्ययोगविरतः, कथमित्याह–त्रिविधंत्रिविधेन व्युत्सृज्य–परित्यज्य पापं, पाठांतरं सावद्ययोगविरतः सन् त्रिविधं त्रिविधेन व्युत्सृजति–परित्यजति पापमेष्यत् सामायिकादौ–सामायिकारम्भसमये । एषोऽनुगमः परिसमाप्तः, अथवा सामायिकादौ सूत्रे, आदिशब्दात् सर्वसावद्यं योगं प्रत्याख्यामीत्याद्यवयवपरिग्रहः, उक्तोऽनुगमः, साम्प्रतं नयास्ते च नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतभेदभिन्नाः खल्वोघतः सप्त भवन्ति, स्वरूपं चैतेषामधो न्यक्षेण प्रदर्शितमिति नेह प्रतन्यते, केवलमत्र स्थानाशून्यार्थमेते ज्ञानक्रियाद्वयान्तर्भावेन समासतः प्रोच्यन्ते, तथा चाह—

विज्जाचरणनएसुं सेससमोआरणं तु कायव्वं । सामाइअनिज्जुत्ती सुभासिअत्था परिसमत्ता ॥ १०६५ ॥

विद्याचरणनययोः, ज्ञानक्रियानययोरित्यर्थः, 'सेससमोयारणं तु कायव्व'मिति शेषनयसमवतारः कर्त्तव्यः, तुशब्दो विशेषणार्थः, स चैतद्विशिनष्टि–तौ च ज्ञाननयक्रियानयौ वक्तव्यौ, एवं सामायिकनिर्युक्तिः सुभाषितार्था परिसमाप्ता ॥

सम्प्रति स्वद्वार एव शेषनयान्तर्भावेनाविष्कृतनामानावनन्तरोपन्यस्तगाथागततुशब्देन चावश्यवक्तव्यतयाऽभिहितौ ज्ञानचरणनयावुच्येते, तत्र ज्ञाननयदर्शनमिदं–ज्ञानमेवैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं प्रधानं, युक्तियुक्तत्वात्, तथा चाह—

नायम्मि गिण्हियव्वे अगिण्हिअव्वम्मि चेव अत्थम्मि । जइअव्वमेव इय जो उवएसो सो णओ नाम ॥ १०६६ ॥

'नायंमि' ज्ञाते सम्यक्परिच्छिन्ने 'ग्रहीतव्ये' उपादेये, 'अगिण्हियव्वंमि'त्ति अग्रहीतव्ये–अनुपादेये, हेये इति भावः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

चशब्दः खलूभयोर्ग्रहीतव्याग्रहीतव्ययोर्ज्ञातत्वानुकर्षणार्थः उक्षेपणीयवस्तुसमुच्चयार्थो वा, एवकारस्त्ववधारणार्थः, तस्य चैवं व्यवहितं प्रयोगो द्रष्टव्यः–ज्ञात एव ग्रहीतव्ये, तथा अग्रहीतव्ये उपेक्षणीये च ज्ञात एव, नाज्ञातेऽर्थे ऐहिकामुष्मिके, तत्र ऐहिको ग्रहीतव्यः स्रक्चन्दनादिः अग्रहीतव्यो विषशस्त्रकण्टकादिः उपेक्षणीयस्तृणादिः, आमुष्मिको ग्रहीतव्यः सम्यग्दर्शनादिः अग्रहीतव्यो मिथ्यात्वादिः उपेक्षणीयो विवक्षया अभ्युदयादिः, तस्मिन्नर्थे यतितव्यमेव, अनुस्वारलोपात् यतितव्यं, एवमनेन क्रमेण ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना सत्त्वेन प्रवृत्त्यादिलक्षणो यत्नः कार्य इत्यर्थः, इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, सम्यक् अज्ञाते प्रवर्त्तमानस्य फलविसंवाददर्शनात्, तथा चोक्तमन्यैरपि–"विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता। मिथ्याज्ञानात् प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनात्॥ १॥" तथा आमुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिनाऽपि ज्ञान एव यतितव्यं, तथा चागमोऽप्येवमेव व्यवस्थितः, यत उक्तम्–"पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए। अन्नाणी किं काहिति ? किंवा नाही छेयपावगं ? ॥ १॥" इतश्चैतदेवमङ्गीकर्त्तव्यं, यस्मात् तीर्थकरगणधरैरगीतार्थानां केवलानां विहारक्रियापि निषिद्धा, तथा चागमः–"गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसितो भणितो। एत्तो तइयविहारो नाणुन्नातो जिणवरेहिं॥ १॥" न खल्वन्धेनान्धः समाकृष्यमाणः सम्यक्पन्थानं प्रतिपद्यते इत्यभिप्रायः, एवं तावत् क्षायोपशमिकं ज्ञानमधिकृत्योक्तं, क्षायिकमप्यङ्गीकृत्य विशिष्टफलसाधकत्वं तस्यैव वेदितव्यं, यस्मादर्हतोऽपि भवाम्भोधितटस्थस्य दीक्षाप्रतिपन्नस्य उत्कृष्टतपश्चरणवतोऽपि न तावदपवर्गप्राप्तिरुपजायते यावज्जीवाजीवाद्यखिलवस्तुपरिच्छेदरूपं केवलज्ञानं नोत्पन्नमिति, तस्माद् ज्ञानमेव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणमिति स्थितं, 'इह जो उवदेसो सो नओ नामं'ति एवमुक्तन्यायेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य उपदेशो ज्ञानप्राधान्यख्यापनपरः स नयो नाम, ज्ञाननय इत्यर्थः, अयं च चतुर्विधे सम्यक्त्वादिसामायिके सम्यक्त्व-सामायिकं श्रुतसामायिकं चेच्छति, अस्य ज्ञानात्मकत्वात्, देशविरतिसामायिकं सर्वविरतिसामायिकं तु नेच्छति, तयोस्तत्कार्यत्वात्, गुणभूते वेच्छति, उक्तो ज्ञाननयः, सम्प्रति क्रियानयावसरः, तद्दर्शनं चेदं–क्रियैव ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं प्रधानं, युक्तियुक्तत्वात्, तथा चायमप्युक्तलक्षणामेव स्वपक्षसिद्धये गाथामाह–'नायंमि गिण्हियव्वे' इत्यादि, अस्य क्रियानयदर्शनानुसारेण व्याख्या–ज्ञाते ग्रहीतव्याग्रहीतव्ये चैव अर्थे ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना यतितव्यमेव, न यस्मात् प्रवृत्त्यादिलक्षणप्रयत्नव्यतिरेकेण ज्ञानवतोऽप्यभिलषितार्थावाप्तिरुपलभ्यते, तथा चोक्तमन्यैरपि–"क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् । यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥" तथाऽऽमुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिनापि क्रियैव कर्त्तव्या, तथा च भगवद्वचनमप्येवमेव व्यवस्थितं, यत उक्तम्–"चेइयकुलगणसंघे आयरियाणं च पवयण सुए य । सब्बेसुवि तेण कयं तवसंजममुज्जमंतेणं ॥ १ ॥" इतश्चैतदेवमङ्गीकरणीयं, यस्मात्तीर्थकरगणधरैः क्रियाविकलानां ज्ञानमपि विफलमेवोक्तं, तथा चागमः–सुबहुंपि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स ? । अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥ १ ॥" दृशिक्रियाविकलत्वात् तस्येत्यभिप्रायः, एवं तावत् क्षायोपशमिकं चारित्रमङ्गीकृत्योक्तं, चारित्रं क्रियेत्यनर्थान्तरं, क्षायिकमप्यङ्गीकृत्य विशिष्टफलसाधकत्वं तस्यैव विज्ञेयं, यस्मादर्हतोऽपि भगवतः समुत्पन्नकेवलज्ञानस्यापि न तावत् मुक्त्यवाप्तिः सम्भवति यावदखिलकर्मेन्धनानलभूता पञ्चह्रस्वाक्षरोद्गिरणकालमात्रावस्थायिनी सर्वसंवररूपा चारित्रक्रिया नावाप्यते, ततः क्रियैव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणमिति स्थितं, 'इइ जो उवदेसो सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

नयो नामं'ति एवमुक्तेन न्यायेन य उपदेशः क्रियायाः प्राधान्यख्यापनपरः स नयो नाम, क्रियानय इत्यर्थः, अयं चतुर्विधे सामायिके देशविरतिसर्वविरतिरूपं सामायिकद्वयमेवेच्छति, क्रियाप्रधानत्वादस्य, सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिके तु तदर्थमुपादीयमानत्वेनाप्रधानत्वान्नेच्छति, गुणभूते वा इच्छतीति, उक्तः क्रियानयः, इत्थं ज्ञाननयक्रियानयस्वरूपं श्रुत्वाऽविदिततदभिप्रायो विधेयः संशयापन्नः सन्नाह–किमत्र तत्त्वं ?, पक्षद्वयेऽपि युक्तिसम्भवात्, आचार्यः पुनराह—

सव्वेसिंपि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ १०६७ ॥

अथवा ज्ञानक्रियानयमतं प्रत्येकमभिधायाधुना स्थितपक्षमुपदर्शयति–'सव्वेसिंपि नयाण'मित्यादि, सर्वेषामपि–मूलनयानां, अपिशब्दात् तद्भेदानां द्रव्यास्तिकादीनां बहुविधवक्तव्यतां–सामान्यमेव विशेषा एव उभयमेव परस्परमनपेक्षमित्यादिरूपं, अथवा नामादिनयानां मध्ये को नयः कं साधुमिच्छतीत्यादिरूपां निशम्य–श्रुत्वा तत् सर्वनयविशुद्धं–सर्वनयसम्मतं वचनं यच्चरणगुणस्थितः साधुः, यस्मात्सर्वे नयास्तत्त्वतो भावनिक्षेपमिच्छंतीति ॥

इति श्रीमलयगिरिविरचितायामावश्यकटीकायां सामायिकाध्ययनं समाप्तम् ॥

सामायिकस्य विवृतिं कृत्वा यदवाप्तमिह मया कुशलम् । तेन खलु सर्वलोको लभतां सामायिकं परमम् ॥ १ ॥
यस्माज्जगाद भगवान् सामायिकमेव निरुपमोपायम् । शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥ २ ॥ ग्रन्थाग्रं २२०००

इति श्रीमलयगिरिविरचितायामावश्यकबृहद्वृत्तौ सामायिकाध्ययनं समाप्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र अध्ययनं १ 'सामायिक' परिसमाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

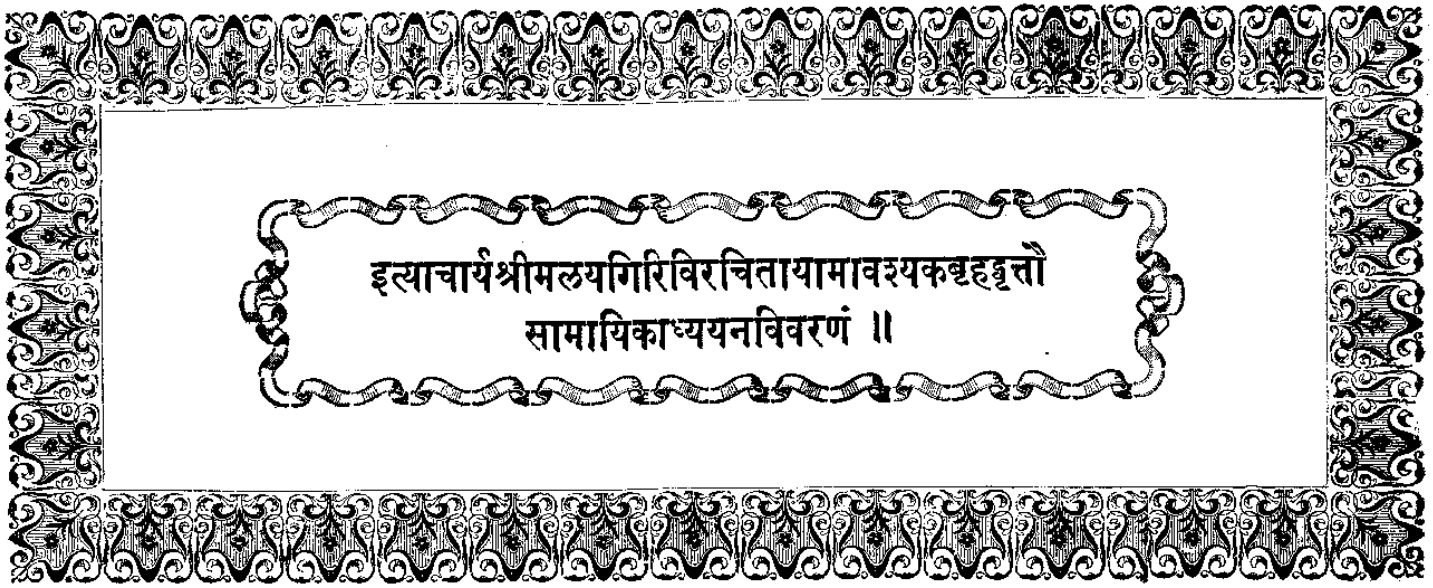

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

आ. सू. ९९

अथ चतुर्विंशतिस्तवाख्यं द्वितीयमध्ययनं ॥

तदेवमुक्तं सामायिकाध्ययनम्, अधुना चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनं प्रारभ्यते—

तत्राध्ययनोद्देशसूत्रारम्भेषु सर्वेष्वेव कारणाभिसम्बन्धौ वक्तव्यावित्येष वृद्धप्रवादः, ततः प्रथमतः कारणमुच्यते, तच्चेदं—जात्यादिगुणसम्पत्समन्वितेभ्यो विनेयेभ्यो गुरुणा सूत्रतोऽर्थतश्चावश्यकश्रुतस्कन्धः प्रदातव्यः, स चाध्ययनसमुदायरूपः, तथा चोक्तम्—'एत्तो एक्केकं पुण अज्झयणं कित्तइस्सामि'त्ति, प्रथमं चाध्ययनं सामायिकं, तच्चोपदर्शितम्, इदानीं द्वितीयं चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनमारभ्यते, द्वितीयता चास्य द्वितीयावयवत्वात्, द्वितीयावयवत्वमप्यस्य सिद्धमाचार्योपदर्शिताधिकारगाथाप्रामाण्यात्, सा चेयम्—"सावज्जजोगविरई उक्कित्तण गुणवतो य पडिवत्ती । खलियस्स निंदणा वणतिगिच्छ गुणधारणा चेव ॥ १ ॥" इयमत्र भावना—यथा किल युगपदशक्योपलम्भस्य पुरुषस्य दिदृक्षोः क्रमेणांगान्युपदर्श्यन्ते, एवमत्राप्यावश्यकश्रुतस्कन्धस्य क्रमेण सामायिकादीन्यङ्गान्युपदर्श्यन्ते इति, इदमेव कारणमुद्देशसूत्रेष्वपि योजनीयं, एतदेव च सर्वाध्ययनेषु, न पुनर्भेदेन वक्ष्यामः, सम्प्रति सम्बन्ध उच्यते—इहानन्तराध्ययने सावद्ययोगविरतिलक्षणं सामायिकमुपदिष्टं, इह तु तदुपदेष्टृणामर्हतामुत्कीर्त्तनं प्रतिपाद्यते, अथवा सामायिकाध्ययने तदासेवनात् कर्म्मक्षय उक्तः, यत उक्तं निरुक्तिद्वारे—"सम्मद्दिट्ठी अमोहो सोही सब्भाव दंसणं बोही । अविवज्जओ सुदिट्ठित्ति एवमाई निरुत्ताइं ॥१॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र अध्ययनं २ 'चतुर्विंशति:' आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५८९॥

शोधिः कर्म्मक्षय इत्यनर्थांतरं, इहापि चतुर्विंशतिस्तवाध्ययने भगवदर्हद्गुणोत्कीर्त्तनरूपाया भक्तेस्तत्त्वतोऽसावेव कर्म्मक्षयः प्रतिपाद्यते, तथा च वक्ष्यति–"भत्तीऐं जिणवराणं खिज्जंती पुवसंचिया कम्मा' इत्यादि, एवमनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्रपञ्चतो वक्तव्यानि, तत्र नामनिष्पन्ने निक्षेपे चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनमिति नाम, ततश्चतुर्विंशतिस्तवाध्ययनशब्दाः प्ररूपणीयाः, तथाचाह—

चउवीसगत्थयस्स उ निक्खेवो होइ नामनिप्फन्नो। चउवीसगस्स छक्को थयस्स उ चउक्कओ होइ ॥ १०६८ ॥

चतुर्विंशतिस्तवस्य निक्षेपो नामनिष्पन्नो भवति, स चान्यस्याश्रुतत्वादयमेव यदुत चतुर्विंशतिस्तव इति, तुशब्दो वाक्यभेदोपदर्शनार्थः, वाक्यभेदश्च अध्ययनान्तरवक्तव्यताया उपक्षेपादिति, तत्र चतुर्विंशतिशब्दस्य निक्षेपः षड्विधः, स्तवशब्दस्य चतुर्विधः, तुशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादध्ययनस्य च, एष गाथासमासार्थः। अवयवार्थं तु भाष्यकार एव वक्ष्यति, तत्राद्यमवयवमधिकृत्य निक्षेपोपदर्शनार्थमाह—

नामंठवणादविए खित्ते काले तहेव भावे य। चउवीसगस्स एसो निक्खेवो छव्विहो होइ ॥ १९२ ॥ (भा.)

'नामं'ति नामचतुर्विंशतिः स्थापनाचतुर्विंशतिर्द्रव्यचतुर्विंशतिः क्षेत्रचतुर्विंशतिः कालचतुर्विंशतिस्तथैव भावचतुर्विंशतिः, चतुर्विंशतिशब्दस्य एषोऽनन्तरोदितो निक्षेपः षड्विधो भवति। तत्र नामचतुर्विंशतिः जीवस्य अजीवस्य वा यस्य चतुर्विंशतिरिति नाम क्रियते, चतुर्विंशत्यक्षरावली वा, स्थापनाचतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतेः केषांचित्स्थापना, द्रव्यचतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्द्रव्याणि, सचित्ताचित्तमिश्रभेदभिन्नानि, तत्र सचित्तानि द्विपदचतुष्पदापदभेदभिन्नानि, अचित्तानि

चतुर्विंशत्यादेर्निक्षेपः

॥५८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

कार्षापणादीनि, मिश्राणि द्विपदादीन्येव कटकाद्यलङ्कृतानि, क्षेत्रचतुर्विंशतिर्विवक्षया चतुर्विंशतिः क्षेत्राणि भरतादीनि, क्षेत्रप्रदेशा वा चतुर्विंशतिः क्षेत्रचतुर्विंशतिः, चतुर्विंशतिप्रदेशावगाढं वा द्रव्यं क्षेत्रचतुर्विंशतिः, कालश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिः समयादयः, एतत्कालस्थिति वा द्रव्यं कालचतुर्विंशतिः, भावचतुर्विंशतिः चतुर्विंशतिर्भावसंयोगाः, चतुर्विंशतिगुणकृष्णादिद्रव्यं वा भावचतुर्विंशतिः, इह सचित्तद्विपदमनुष्यचतुर्विंशत्याऽधिकार इति गाथार्थः ॥ उक्ता चतुर्विंशतिः, अधुना स्तवनिक्षेपप्रतिपादनार्थमाह—

नामंठवणादविए भावे य थयस्स होइ निक्खेवो । दव्वत्थओ पुप्फाई संतगुणकित्तणा भावे ॥ १९३ ॥ (भा.)

'नामं'ति नामस्तवः स्थापनास्तवः द्रव्यविषयो द्रव्यस्तवः 'भावे ये'ति भावविषयो भावस्तवः, इत्थं स्तवस्य निक्षेपोन्यासो भवति चतुष्प्रकार इति शेषः, तत्र क्षुण्णत्वान्नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यस्तवभावस्तवस्वरूपमाह—द्रव्यस्तवः पुष्पादिः, आदिशब्दात् गन्धधूपादिपरिग्रहः, कारणे कार्योपचाराच्चैवमाह, अन्यथा द्रव्यस्तवः पुष्पादिभिः समभ्यर्चनमिति द्रष्टव्यं, तथा सद्गुणोत्कीर्त्तना भाव इति, सन्तश्च ते गुणाश्च सद्गुणाः, अनेनासत्सु गुणेषूत्कीर्त्तनानिषेधमाह, करणे मृषावाददोषप्रसङ्गात्, सद्गुणानामुत्कीर्त्तना उत्—प्राबल्येन परया भक्त्या कीर्त्तना—संशब्दना यथा—'प्रकाशितं यथैकेन, त्वया सम्यक् जगत्त्रयम् । समग्रैरपि नो नाथ !, परतीर्थाधिपैस्तथा ॥ १ ॥ विद्योतयति वा लोकं, यथैकोऽपि निशाकरः । समुद्गतः समग्रोऽपि, किं तथा तारकागणः ? ॥ २ ॥" इत्यादिलक्षणो भावे इति द्वारपरामर्शो, भावस्तव इत्यर्थः ॥ इह चालितप्रतिष्ठितोऽर्थः सम्यग्ज्ञानाय प्रभवतीति चालनां कदाचिद् विनेयः करोति, कदाचित्स्वयमेव गुरु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५९०॥

रपि, तथा चोक्तम्–"कत्थइ पुच्छइ सीसो कहिंचऽपुट्ठा कहिंति आयरिया ॥" इत्यादि, तत्र वित्तपरित्यागादिना द्रव्य-स्तव एव ज्यायानित्यल्पबुद्धीनामाशङ्कासम्भवः, तद्व्युदासार्थं तदनुवादपुरस्सरमाह—

दव्वत्थओ भावत्थओ दवथओ बहुगुणत्ति बुद्धि सिआ ।
अनिउणमइवयणमिणं छज्जीवहिअं जिणा बिंति ॥ १९४ ॥ (भा.)
छज्जीवकायसंजम दवथए सो विरुज्झई कसिणो । तो कसिणसंजमविऊ पुप्फाईअं न इच्छंति ॥ १९५ ॥ (भा.)

द्रव्यस्तवो भावस्तव इत्यनयोर्मध्ये द्रव्यस्तवो बहुगुणः–प्रभूतगुण इत्येवं बुद्धिः स्याद्, एवं चेन्मन्यसे इति भावः, तथाहि–किलास्मिन् क्रियमाणे वित्तपरित्यागाच्छुभ एवाध्यवसायः तीर्थस्य चोन्नतिकरणं, दृष्ट्वा च तं क्रियमाणमन्येऽपि प्रतिबुद्ध्यन्ते इति स्वपरानुग्रहः, सर्वमिदं सम्प्रतिपक्षं चेतसि निधाय द्रव्यस्तवो बहुगुण इत्यस्यासारतारव्यापनायाह–अ-निपुणमतिवचनमिदमिति, अनिपुणमतेर्वचनमिदं यत् द्रव्यस्तवो बहुगुण इति, किमित्यत आह–'षड्जीवहितं' षण्णां–पृथिवीकायिकादीनां जीवानां हितं जिनाः–तीर्थकृतो ब्रुवते ॥ किं षड्जीवहितमित्यत आह—षण्णां जीवनि-कायानां–पृथिव्यादिलक्षणानां संयमः–सङ्घट्टनापरित्यागः षड्जीवकायसंयमः असौ हितं, यदि नामैवं ततः किमि-त्यत आह–'द्रव्यस्तवे' पुष्पादिसमभ्यर्चनलक्षणे 'सः' षड्जीवकायसंयमः 'कृत्स्नः' सम्पूर्णो 'विरुध्यते' न सम्यक् सम्पद्यते, पुष्पादिसंलुञ्चनसङ्घट्टनादिना कृत्स्नसंयमव्याघातभावात्, यतश्चैवं 'तो'त्ति तस्मात् कृत्स्नसंयमं प्रधानं विद्वांसः, ते तत्त्वतः साधव उच्यन्ते, कृत्स्नसंयमग्रहणमकृत्स्नसंयमविदुषां श्रावकाणां व्यपोहार्थं, पुष्पादिकं द्रव्यस्तवं

स्तवनिक्षेपः भावस्तवा-धिक्यं च

॥५९०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

नेच्छन्ति–न बहु मन्यन्ते, यच्चोक्तं–'द्रव्यस्तवे क्रियमाणे वित्तपरित्यागात् शुभ एवाध्यवसाय' इत्यादि, तदपि यत्किञ्चित्, व्यभिचारात्, कस्यचिदल्पसत्त्वस्य अविवेकिनो वा शुभाध्यवसायानुपपत्तेः, दृश्यते यशःकीर्त्याद्यर्थमपि सत्त्वानां द्रव्यस्तवे प्रवृत्तिः, शुभाध्यवसायभावे तु स एव भावस्तवः, इतरस्तु तत्कारणत्वेनाप्रधानमिति, तथा भावस्तव एव सति तत्त्वतस्तीर्थस्योन्नतिकरणं, भावस्तववतः सम्यगमरादिभिरपि पूज्यत्वात्, तमेव च दृष्ट्वा क्रियमाणमन्ये सुतरां प्रतिबुध्यंते इति स्वपरानुग्रहोऽपीहैवेति गाथाद्वयभावार्थः ॥ आह–यद्येवं किमयं द्रव्यस्तव एकान्ततो हेय एव वर्त्तते ?, आहोश्विदुपादेयोऽपीति ?, उच्यते, साधूनां हेय एव, श्रावकाणामुपादेयोऽपि, तथा चाह—

अकसिणपवत्तगाणं विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसारपयणुकरणो दव्वथओ कूवदिट्ठंतो ॥ १९६ ॥ (भा.)

अकृत्स्नं, संयममिति सामर्थ्यात् गम्यते, प्रवर्त्तयन्तीत्यकृत्स्नप्रवर्त्तकास्तेषां, विरताविरतानां श्रावकाणामेष–द्रव्यस्तवः खलु युक्त एव, खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, किंकृदयमित्याह–संसारप्रतनुकरणः, संसारक्षयकारक इति भावः, आह–यः प्रकृत्यैवासुन्दरः स कथं श्रावकाणामपि युक्तः ?, उच्यते, अत्र कूपदृष्टान्तः, जहा नवनगराइसंनिवेसे केई पभूतजलाभावतो तण्हादिपरिगया तदपनोदार्थं कूपं खणंति, तेसिं च जइवि तण्हाइया वड्ढंति मट्टियाकद्दमादीहि य मलिणिज्जंति तहावि तदुब्भवेणं चेव पाणीएणं तेसिं ते तिण्हाइया सो य मलो पुव्वगो य फिट्टइ, सेसकालं च ते तदन्ने य लोगा सुहभागिणो य भवन्ति, एवं दव्वत्थए जइवि असंजमो तहावि ततो चेव सा परिणामवुड्ढी भवति जा असंजमोवज्जियं अन्नं च निरवसेसं खवेंति, तम्हा विरताविरतेहिं एस दव्वत्थओ कायव्वो, सुभाणुबंधी पभूयतरनिज्जराफलो यत्ति, उक्तः स्तवः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५९१॥

अत्रान्तरेऽध्ययनशब्दार्थो निरूपणीयः, स चानुयोगद्वारचिन्तायां न्यक्षेण निरूपित एवेति नेह प्रतन्यते। सम्प्रति सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपावसरः, स च सूत्रे भवति, सूत्रं चानुगमे, स चानुगमो द्विधा–सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः, तद्यथा–निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शकनिर्युक्त्यनुगमश्च, तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगतो वक्ष्यते च, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्त्वाभ्यां द्वारगाथाभ्यां समवगन्तव्यः, तद्यथा–'उद्देसे निद्देसे य निग्गमे' इत्यादि, 'किं कइविहं कस्स कहि'मित्यादि, सूत्रस्पर्शकनिक्षेपनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगमे, स चावसरप्राप्त एव, युगपच्च सूत्रादयो व्रजंति, तथा चोक्तम्–"सुत्तं सुत्ताणुगमो सुत्तालावयकतो अ निक्खेवो। सुत्तप्फासियनिज्जुत्ति नया य समगं तु वच्चंति (विशे. २८०९) विषयविभागः पुनरयममीषां वेदितव्यो–"होइ कयत्थो वोत्तुं सपयच्छेयं सुयं सुयाणुगमो। सुत्तालावगनासो नामाइन्नासविणियोगं ॥ १ ॥ सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिनियोगो सेसओ पयत्थादी। पायं सो च्चिय नेगमनयाइमयगोयरो भणितो ॥ २ ॥" (विशे. १००९–१०) अत्राक्षेपपरिहारा न्यक्षेण सामायिकाध्ययने एव निरूपिता इति नेह वितन्यन्ते, तत्र सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयम्, तच्चेदम्–

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥ १ ॥ (सूत्रं)

अस्य व्याख्या, तल्लक्षणं चेदं–"संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः। चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या सूत्रस्य षड्विधा ॥ १ ॥" तत्रास्खलितपदोच्चारणं संहिता, सा च प्रतीता, अधुना पदानि–लोकस्य उद्योतकरान् धर्मतीर्थकरान् जिनान् अर्हतः कीर्तयिष्यामि चतुर्विंशतिमपि केवलिन इति। अधुना पदार्थः–लोक्यते–प्रमाणेन दृश्यते इति लोकः,

द्रव्यस्तवे कूपदृष्टान्तः ॥५९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'चतुर्विंशति' अध्ययनस्य गाथा- १ आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

अयं चेह तावत् पञ्चास्तिकायात्मको गृह्यते, तस्य लोकस्य उद्योतकरणशीला उद्योतकरास्तान्, केवलालोकेन तत्पूर्वक-वचनदीपेन वा सर्वलोकप्रकाशकरणशीलानित्यर्थः, तथा दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धारयतीति धर्म्मः, उक्तं च-"दुर्गतिप्रसु-तान् जन्तून्, यस्माद् धारयते ततः। धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म्म इति स्मृतः ॥१॥" तीर्यते संसारसागरोऽनेनेति तीर्थं, धर्म्म एव धर्म्मप्रधानं वा तीर्थं धर्म्मतीर्थं तत्करणशीला धर्म्मतीर्थकरास्तान्, तथा रागद्वेषकषायेन्द्रियपरीषहोप-सर्गाष्टप्रकारकर्म्मजेतृत्वाज्जिनास्तान्, अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हंतीत्यर्हन्तस्तान् अर्हतः, कीर्त्तयिष्यामि-स्वनामभिः स्तोष्ये, चतुर्विंशतिः सङ्ख्या, अपिशब्दो भावतस्तदन्यसमुच्चयार्थः, केवलं ज्ञानमेषां विद्यत इति केवलिनः तान् केवलिनः, इति पदार्थः, पदविग्रहोऽपि यानि समासभाञ्जि पदानि तेषु दर्शित एव। सम्प्रति चालनावसरः-तत्र सा तावत् तिष्ठतु, सूत्रस्पर्शनिर्युक्तिरेवोच्यते, स्वस्थानत्वात्, उक्तं च-"अक्खलियसंहियाई वक्खाणचउक्कए दरिसियंमि। सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिवित्थरत्थो इमो होइ ॥ १ ॥" चालनामपि चात्रैव वक्ष्यामः, तत्र 'लोकस्योद्योतकरा'निति यदुक्तं तत्र लोकनिरूपणायाह—

नामंठवणादविए खित्ते काले भवे य भावे य। पज्जवलोगे य तहा अट्ठविहो लोगनिक्खेवो ॥ १०६९ ॥

नामलोकः स्थापनालोकः द्रव्यलोकः क्षेत्रलोकः काललोकः भवलोकः भावलोकः पर्यायलोकश्च, एवमष्टविधो लोकनिक्षेप इति गाथासमासार्थः, व्यासार्थन्तु भाष्यकार एव वक्ष्यति, तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यलोकमभिधित्सुराह—

जीवमजीवे रूवमरूवी सपएसमप्पएसे य। जाणाहि दव्वलोगं निच्चमनिच्चं च जं दव्वं ॥ १९७ ॥ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'लोक' शब्दस्य 'नाम' आदि निक्षेपा: वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥ ५९२ ॥

जीवाजीवावित्यत्रानुस्वारः प्राकृतत्वादलाक्षणिकः, तत्र सुखदुःखज्ञानोपयोगलक्षणो जीवः, विपरीतस्त्वजीवः, एतौ च द्वौ भेदौ प्रत्येकं रूप्यरूपिभेदौ, तथा चाह–'रूप्यरूपिण'इति, तत्रानादिकर्म्मसन्तानपरिगता रूपिणः, अरूपिणस्तु कर्म्मरहिताः सिद्धाः, अजीवास्तेऽरूपिणो धर्म्माधर्म्माकाशास्तिकायाः, रूपिणः परमाण्वादयः, एतौ च जीवाजीवावोघतः सप्रदेशाप्रदेशावगन्तव्यौ, तथा चाह–'सप्रदेशाप्रदेशा'विति, तत्र परमाणुव्यतिरेकेण सर्वेऽप्यस्तिकायाः सप्रदेशाः, परमाणवस्त्वप्रदेशाः, अथवा पुद्गलास्तिकायो द्रव्याद्यपेक्षया चिन्तनीयः, तद्यथा–द्रव्यतः परमाणुरप्रदेशः द्व्यणुकादयः सप्रदेशाः, क्षेत्रत एकप्रदेशावगाढोऽप्रदेशः द्व्यादिप्रदेशावगाढाः सप्रदेशाः, कालत एकसमयस्थितिकोऽप्रदेशो द्व्यादिसमयस्थितिकाः सप्रदेशाः, भावत एकगुणकृष्णादिकोऽप्रदेशः द्विगुणकृष्णादिकाः सप्रदेशाः, इदमेव जीवाजीवव्रातं जानीहि द्रव्यलोकं, द्रव्यमेव लोको द्रव्यलोकस्तं, अस्यैव शेषधर्म्मोपदर्शनायाह–नित्यानित्यं यद्द्रव्यं, चशब्दादभिलाप्यानभिलाप्यादिसमुच्चयः ॥ साम्प्रतं जीवाजीवयोर्नित्यतानित्यतामेवोपदर्शयति—

गइ १ सिद्धा २ भविआया ३ अभविअ ४ पुग्गल १ अणागयद्धा २ य ।
तीअद्ध ३ तिन्नि काया ४ जीवाजीवट्ठिई चउहा ॥ १९८ ॥ (भा.)

अस्या सामायिकाध्ययन इव व्याख्या कर्त्तव्या ॥ अधुना क्षेत्रलोकः प्रतिपाद्यते—

आगासस्स पएसा उड्ढे य अहे अ तिरिअलोए अ। जाणाहि खित्तलोगं अणंत जिणदेसियं सम्मं ॥१९९॥ (भा.)

प्रकृष्टाः देशाः प्रदेशाः आकाशस्य प्रदेशान् ऊर्ध्वं चेति ऊर्ध्वलोके अधश्चेति अधोलोके तिर्यग्लोके च जा-

लोकनिक्षेपः

॥ ५९२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

नीहि क्षेत्रलोकं क्षेत्रमेव लोकः क्षेत्रलोकः तं, ऊर्ध्वादिविभागस्तु प्रतीतः, अनन्तं–अंतरहितमलोकाकाशस्यापरिमितत्वात्, अत्र सूत्रेऽनुस्वारलोपः प्राकृतत्वादवसेयः, जिनदेशितं सर्वज्ञकथितं सम्यक् शोभनेन विधिना ॥ साम्प्रतं काललोकप्रतिपादनार्थमाह—

समयावलिअमुहुत्ता दिवसमहोरत्त पक्ख मासा य ।
संवच्छर जुग पलिआ सागर ओसप्पि परियट्टा ॥ २०० ॥ (भा.)

परमनिकृष्टः कालः समयः, असङ्ख्येयसमयात्मिका आवलिका, द्विघटिको मुहूर्त्तः, द्वादशादिमुहूर्त्तो दिवसः, त्रिंशन्मुहूर्त्तोऽहोरात्रः, पञ्चदश अहोरात्राणि पक्षः, द्वौ पक्षौ मासः, द्वादश मासा संवत्सरः, पञ्चसंवत्सरं युगं, पल्योपमं उद्धारादिभेदात् त्रिविधं, पल्योपमानां दशकोटीकोट्यः सागरोपमं, दशसागरोपमकोटीकोटीपरिमाणा उत्सर्पिणी, एवमवसर्पिण्यपि द्रष्टव्या, परावर्त्तः पुद्गलपरावर्त्तः, स चानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमाणः, ते अनन्ता अतीतः कालः, अनन्ता एवानागतः कालः ॥ उक्तः काललोकः, काल एव लोकः काललोकः ॥ अधुना भवलोकमभिधित्सुराह—

नेरइयदेवमणुआ तिरिक्खजोणी गया य जे सत्ता । तम्मि भवे वट्टंता भवलोगं तं वियाणाहि ॥ २०१ ॥ (भा.)

नैरयिकदेवमनुष्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये सत्त्वाः–प्राणिनस्तस्मिन् भवे वर्त्तमाना यदनुभावमनुभवन्ति तं भवलोकं जानीहि, भव एव लोको भवलोक इति व्युत्पत्तेः ॥ साम्प्रतं भावलोकमुपदर्शयति—

ओदइए उवसमिए खइए अ तहा खओवसमिए अ। परिणामि सन्निवाए छविहो भावलोगो य ॥२०२॥ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अत्र 'समय' आदि काल-गणित वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

॥५९३॥

कर्म्मण उदयेन निर्वृत्तः औदयिकः, तथा उपशमेन, कर्म्मण इति गम्यते, निर्वृत्त औपशमिकः, क्षयेण निर्वृत्तः क्षायिकः; तथा उदितकर्मांशस्य क्षयेण अनुदितस्योपशमेन निर्वृत्तः क्षायोपशमिकः, परिणाम एव पारिणामिकः, सन्निपातो-द्वित्रिभावानां संयोगः, सन्निपाते भवः सान्निपातिकः, स च ओघतोऽनेकभेदोऽवसेयः, अविरुद्धास्तु पञ्चदश भेदाः, उक्तं च–"ओदइयखतोवसमे परिणामेकेक्क गतिचउक्केवि । खयजोगेणवि चउरो तदभावे उवसमेणंपि ॥ १ ॥ उवसमसेढी एक्को केवलिणोऽवि य तहेव सिद्धस्स । अविरुद्धसन्निवाइय भेदा एमेव पन्नरस ॥ २ ॥" एवमनेन प्रकारेण षड्विधः–षट्प्रकारो भावलोकः, भाव एव लोको भावलोकः ॥

तिव्वो रागो य दोसो य, उइन्नो जस्स जंतुणो । जाणाहि भावलोगं अणंतजिणदेसिअं सम्मं ॥ २०३ ॥ (भा.)

तीव्रः–उत्कटो रागः–अभिष्वङ्गलक्षणो द्वेषः–अप्रीतिलक्षणो यस्य जन्तोः प्राणिन उदीर्णस्तं प्राणिनं तेन भावेन लोक्यत्वात् जानीहि भावलोकमनन्तजिनदेशितं एकवाक्यतया अनन्तजिनकथितं सम्यक्–अवैपरीत्येन ॥ सम्प्रति पर्यायलोको वक्तव्यः, तत्रौघतः पर्याया धर्मा उच्यन्ते, इह पुनर्नैगमनयदर्शनं मूढनयदर्शनं चाधिकृत्य पर्यायलोकमाह—

दव्वगुणखित्तपज्जवभवाणुभावे अ भावपरिणामे । जाण चउव्विहमेअं पज्जवलोअं समासेण ॥ २०४ ॥ (भा.)

द्रव्यस्य गुणा–रूपादयः तथा क्षेत्रस्य पर्याया–अगुरुलघवः, भरतादिभेदा इत्यन्ये, भवस्य–नरकादेरनुभावाः–तीव्रत-मदुःखादिरूपाः, तथो चोक्तम्–"अच्छिनिमीलियमेत्तं नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं । नरए नेरइयाणं अहोनिसं पच्चमा-णाणं ॥ १ ॥ असुभा उविय्णिज्जा सद्दरसा रूवगंधफासा य । नरए नेरइयाणं दुक्कयकम्मोवलित्ताणं ॥ २ ॥" इत्यादि,

भवभाव र्यवलोव

॥५९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं शेषभवानुभावा अपि वाच्याः, तथा भावस्य–जीवाजीवादिसम्बन्धिनः परिणामाः–तेन तेन अज्ञानात् ज्ञानं नीला-लोहितमित्यादिप्रकारेण भवनानि भावपरिणामाः, एवमेनं चतुर्विधमोघतः पर्यायलोकं समासेन सङ्क्षेपेण जानीहि अव-बुध्यस्व ॥ तत्र यदुक्तं द्रव्यगुणा इत्यादि तदुपदर्शनेन निगमयन्नाह—

वन्नरसगंधसंठाण–फासठाणगइवन्नभेए य। परिणामे य बहुविहे पज्जवलोगं विआणाहि (समासेणं)॥२०५॥(भा.)

वर्णरसगन्धसंस्थानस्पर्शस्थानगतिवर्णभेदान्, चशब्दात् रसगन्धसंस्थानादिभेदांश्च, इयमत्र भावना–वर्णादयः सप्रभेदा ग्रहीतव्याः, तत्र वर्णस्य भेदाः कृष्णादयः पञ्च, रसस्यापि तिक्तादयः पञ्च, गन्धस्य सुरभीतररूपौ द्वौ भेदौ, संस्थानं परिमण्डलादिभेदात् पञ्चधा, स्पर्शः कठिनादिभेदादष्टधा, स्थानमवगाहनालक्षणं, तद् आश्रयप्रदेशभेदादनेकधा, गतिर्द्विधा-स्पृशद्गतिरस्पृशद्गतिश्च, अथवा चशब्दः कृष्णादिवर्णादीनां स्वभेदापेक्षया एकगुणकृष्णाद्यनेकभेदोपसङ्ग्रहार्थः, अनेन किल द्रव्यगुणा इत्येतद् व्याख्यातं, परिणामांश्च बहुविधानित्यनेन तु चरमद्वारम्, शेषद्वारद्वयं पुनः स्वयमेव भावनीयं, परिणामांश्च बहुविधानिति जीवाजीवभावगोचरान्, किमित्यत आह– पर्यायलोकं जानीहि, पर्याय एव लोकः पर्याय-लोक इति व्युत्पत्तेः ॥ सम्प्रति लोकपर्यायशब्दान् निरूपयति—

आलुक्कई पलुक्कइ लुक्कइ संलुक्कई य एगट्ठा। लोगो अट्ठविहो खलु तेणेसो वुच्चई लोगो ॥ १०७० ॥

आलोक्यते इत्यालोकः, प्रलोक्यते इति प्रलोकः, लोक्यते इति लोकः, संलोक्यते इति संलोकः, एते चत्वारोऽपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥ ५९४ ॥

शब्दा एकार्थिकाः, यत एवं लोकशब्दस्य व्युत्पत्तिः–लोक्यते इति लोकः, आलोकादयश्च पर्यायाः, तेन कारणेन अष्टविधः खलु लोको लोक उच्यते ॥ व्याख्यातो लोकः, साम्प्रतं उद्योत उच्यते, अत्राह—

दुविहो खलु उज्जोओ नायव्वो दव्वभावसंजुत्तो । अग्गी दव्वुज्जोओ चंदो सूरो मणी विज्जू ॥ १०७१ ॥

'द्विविधो' द्विप्रकारः, खलुशब्दो मूलभेदापेक्षया न व्यक्त्यपेक्षयेतिविशेषणार्थः, उद्योत्यते–प्रकाश्यतेऽनेनेति उद्योतो ज्ञातव्यो विज्ञेयो द्रव्यभावसंयुक्तः, द्रव्योद्योतो भावोद्योतश्चेति भावः, तत्र द्रव्योद्योतोऽग्निश्चन्द्रः सूर्यो मणिः–चन्द्रकान्तादिलक्षणो विद्युत् प्रतीता, एते द्रव्योद्योतः, एतैर्घटादीनामुद्योतेऽपि तद्गतायाः सम्यक्प्रतिपत्तेरभावात् सकलवस्तुधर्म्मानुद्योतनाच्च, न ह्यग्न्यादिभिः सदसन्नित्यानित्याद्यनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः सर्व एव धर्म्माः धर्म्मास्तिकायादयो वा द्योत्यन्ते, तस्मादग्न्यादयो द्रव्योद्योत इति ॥ अधुना भावोद्योतमाह—

नाणं भावुज्जोओ जह भणियं सव्वभावदंसीहिं । तस्स उवओगकरणे भावुज्जोअं विआणाहि ॥ १०७२ ॥

ज्ञायते यथावस्थितं वस्त्वनेनेति ज्ञानं, ततो भावोद्योतः, तेन घटादीनामुद्योतने तद्गतायाः सम्यक्प्रतिपत्तेर्निश्चयप्रतिपत्तेश्च भावात्, तस्य तदात्मकत्वात्, एतावता चाविशेषेणैव ज्ञानं भावोद्योत इति प्राप्तमत आह–यथा भणितं यथावस्थितं सर्वभावदर्शिभिः, तथा यत् ज्ञानं, सम्यग्ज्ञानमिति भावः, तदपि नाविशेषेणोद्योतः, किन्तु ?, तस्य ज्ञानस्योपयोगे करणे सति भावोद्योतं विजानीहि, नान्यदा, तदैव तस्य वस्तुनो ज्ञातत्वसिद्धेः इति गाथार्थः ॥ इत्थमुद्योतस्वरूपमभिधाय साम्प्रतं येनोद्योतेन लोकस्योद्योतकरा जिना भवन्ति तेनैव युक्तानुपदर्शयन्नाह—

उद्योत-निक्षेपः

॥ ५९४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'उद्योत' शब्दस्य निक्षेपा: क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

लोगस्सुज्जोअगरा दव्वुज्जोएण न हु जिणा हुंति । भावुज्जोअगरा पुण हुंति जिणवरा चउवीसं ॥ १०७३ ॥

लोकस्योद्योतकरा द्रव्योद्योतेन नैव जिना भवन्ति, किन्तु तीर्थंकरनामकर्म्मोदयतो अतुलसत्त्वार्थसम्पादनेन भावोद्योतकराः पुनर्भवन्ति जिनवराश्चतुर्विंशतिरिति, अत्र पुनःशब्दो विशेषणार्थः, स चैतद् विशिनष्टि–आत्मानमधिकृत्य केवलज्ञानेनोद्योतकराः, लोकप्रकाशकवचनप्रदीपापेक्षया तु शेषकतिपयभव्यविशेषानधिकृत्योद्योतकराः अत एवोक्तं भवति, कोऽर्थः ?, न न भवन्ति, ननु भवन्त्येव, कांश्चन प्राणिनोऽधिकृत्योद्योतकरत्वस्यासम्भवात्, चतुर्विंशतिग्रहणमधिकृतावसर्पिणीगततीर्थंकरसङ्ख्याप्रतिपादनार्थं ॥ उद्योताधिकारे एव द्रव्योद्योतभावोद्योतयोर्विशेषप्रतिपादनार्थमाह—

दव्वुज्जोओज्जोओ पगासई परिमिअम्मि खित्तम्मि । भावुज्जोओज्जोओ लोगालोगं पयासेइ ॥ १०७४ ॥

द्रव्योद्योतोद्योतो–द्रव्योद्योतप्रकाशः पुद्गलात्मकत्वात् तथाविधपरिणामयुक्तत्वाच्च प्रकाशयते, पाठान्तरं प्रभासते, परिमिते क्षेत्रे, अत्र यदा प्रकाशयति तदा प्रकाश्यं वस्तु अध्याहियते, यदा तु प्रभासते तदा स एव दीप्यते इति गृह्यते, भावोद्योतोद्योतो लोकालोकं प्रकाशयति प्रकटार्थं ॥ उक्त उद्योतः, सम्प्रति करमवसरप्राप्तमपि धर्म्मतीर्थकरानित्यत्र वक्ष्यमाणत्वाद्विहाय धर्म्मं प्रतिपिपादयिषुराह—

दुह दव्वभावधम्मो दव्वे सवस्स दव्वमेवऽहवा । तित्ताइसहावो वा गम्माइत्थी कुलिंगो वा ॥ १०७५ ॥

धर्म्मो द्विविधः, तद्यथा–द्रव्यधर्मो भावधर्म्मश्च, तत्र द्रव्ये इति द्वारपरामर्शः, द्रव्यविषयो धर्म्म उच्यते–द्रव्यस्य–अनुपयुक्तस्य धर्म्मो मूलोत्तरगुणानुष्ठानं द्रव्यधर्म्मः, इहानुपयुक्तो द्रव्यं 'अनुपयोगो द्रव्य'मिति वचनात्, द्रव्यमेव वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'धर्म' शब्द व्याख्यायते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥५९५॥

धर्मनिक्षेप

धर्मो द्रव्यधर्मः-धर्मास्तिकायः 'तित्ताइसहावो वा' इति तिक्तादिर्वा द्रव्यस्य स्वभावो द्रव्यधर्मः 'गम्माइत्थी कुलिंगो व'त्ति गम्यादिर्धर्मः स्त्रीविषयो द्रव्यधर्मः, तत्र केषाञ्चित् मातुलदुहिता गम्या केषांचिदगम्येत्यादिः तथा कुलिङ्गो वा-कुतीर्थिकधर्मो द्रव्यधर्मः, पाठान्तरं 'दुविहो य होइ धम्मो दव्वधम्मो य भावधम्मो य। धम्मत्थिकाउ दवे दवस्स व जो भवे भावो ॥ १ ॥' सुगमं। भावधर्म्मप्रतिपादनार्थमाह—

दुह होइ भावधम्मो सुअ चरणे वा सुअम्मि सज्झाओ। चरणम्मि समणधम्मो खंतीमाई भवे दसहा १०७६

द्विविधो भवति भावधर्मः, तद्यथा-श्रुते चरणे च, श्रुतधर्मश्चरणधर्म्मश्चेत्यर्थः, तत्र श्रुते श्रुतविषयो धर्म्मः स्वाध्यायो-वाचनादिः, चरणे चरणविषयो धर्म्मः श्रमणधर्म्मो, दशधा दशप्रकारः क्षान्त्यादिः, पाठान्तरं वा 'भावंमि होइ दुविहो सुयधम्मो खलु चरित्तधम्मो य। सुयधम्मो सज्झातो चरित्तधम्मो समणधम्मो ॥ १ ॥' सुगमं। संप्रति तीर्थनिरूपणायाह—

नामं ठवणातित्थं दव्वतित्थं च भावतित्थं च। इक्किक्कंपि अ इत्तो णेगविहं होइ नायव्वं ॥ १०७७ ॥

'नामं'ति नामतीर्थं स्थापनातीर्थं द्रव्यतीर्थं भावतीर्थं च, 'एत्तो'त्ति नामादिनिक्षेपमात्रकरणादनन्तरमेकैकं नामतीर्थादि अनेकविधं भवति ज्ञातव्यं ॥ तत्र नामतीर्थमनेकविधं जीवाजीवविषयादिभेदात्, स्थापनातीर्थं साकारानाकारभेदात्, द्रव्यतीर्थं आगमनोआगमादिभेदात्, तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरद्रव्यतीर्थप्रतिपादनार्थमाह—

दाहोवसमं तण्हाइ छेअणं मलपवाहणं चेव। तीहिं अत्थेहिं निउत्तं तम्हा तं दव्वओ तित्थं ॥ १०७८ ॥

॥५९५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'तीर्थ' शब्द व्याख्यायते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

इह ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं नोआगमतो द्रव्यतीर्थं मागधवरदामादि परिगृह्यते, बाह्यदाहादेरेव तत उपशमसद्भावात्, तथा चाह–दाहोपशममिति, दाहो–बाह्यः सन्तापः तस्योपशमो यस्मिन् तद्दाहोपशमं 'तण्हावुच्छे(इच्छे)यणं'ति तृषः–पिपासायाः छेदनं जलसङ्घातेन तदपनयनात्, तथा मलो बाह्यः अङ्गसमुत्थस्तस्य प्रवाहणं, प्रवाह्यतेऽनेनेति प्रवाहणं, जलेन तस्य प्रक्षालनात्, एवं त्रिभिरर्थैः कारणगतैर्निर्युक्तं निश्चयेन युक्तं निर्युक्तं–प्ररूपितं, यदिवा प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे तृतीया, त्रिषु अर्थेषु नियोजितं, यस्मादेवं बाह्यदाहादिविषयमेव तस्मात् मागधादि द्रव्यतीर्थं, मोक्षसाधकत्वाभावात् ॥ सम्प्रति भावतीर्थमधिकृत्याह—

कोहम्मि उ निग्गहिए दाहस्सोवसमणं हवइ तत्थं । लोहम्मि उ निग्गहिए तण्हावुच्छेअणं होइ ॥ १०७९ ॥

अट्ठविहं कम्मरयं बहुएहिं भवेहिं संचिअं जम्हा । तव–संजमेण धोवइ तम्हा तं भावओ तित्थं ॥ १०८० ॥

इह भावतीर्थमपि आगमनोआगमभेदतोऽनेकप्रकारं, तत्र नोआगमतो भावतीर्थं क्रोधादिनिग्रहसमर्थं प्रवचनमेव गृह्यते, तथा चाह–क्रोधे एव निगृहीते दाहस्य द्वेषानलजातस्यान्तः प्रशमनं भवति तथ्यं–निरुपचरितं, नान्यथा, तथा लोभ एव निगृहीते 'तण्हावुच्छेयणं होति'त्ति तृषः–अभिष्वंगलक्षणायाः छेदनं–व्यपगमो भवति, तथा अष्टविधं अष्टप्रकारं कर्म्मैव जीवानुरंजनात् कर्म्मरजः बहुभिर्भवैः सञ्चितं तपःसंयमेन धाव्यते–शोध्यते यस्मात् तस्मात् प्रवचनं भावतीर्थम् ॥

दंसणनाणचरित्तेसु निउत्तं जिणवरेहिं सव्वेहिं । एएण होइ तित्थं एसो अन्नोऽवि पज्जाओ ॥ १०८१ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रेषु नियुक्तं–नियोजितं सर्वैः ऋषभादिभिर्जिनवरैः–तीर्थकृद्भिः, यस्मादित्थंभूतेषु नियुक्तं तस्मात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥५९६॥

तीर्थकर-योनिक्षेपः

प्रवचनं भावतीर्थं, अथवा येन कारणेनेत्थंभूतेषु त्रिष्वर्थेषु नियुक्तमेतेन कारणेन प्रवचनं भावतस्त्रिस्थं, एष त्रिस्थलक्षणः तीर्थशब्दापेक्षया अन्यः पर्यायः ॥ उक्तं तीर्थं, अधुना कर उच्यते—

नामकरो ठवणकरो दव्वकरो खित्त-काल-भावकरो । एसो खलु करगस्स उ निक्खेवो छव्विहो होइ ॥१०८२॥

नामकरः स्थापनाकरः द्रव्यकरः 'क्षेत्रकालभावकरो' इति करशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते क्षेत्रकरः कालकरो भावकरश्च, एष खलु कर एव करकस्तस्य निक्षेपः षड्विधो भवति॥ तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यकरमभिधित्सुराह—

गो-महिसु-ट्टि-पसूणं छगलीणंपि अ करा मुणेअव्वा । तत्तो अ तणपलाले भुसकट्ठंगारकरमेव ॥१०८३॥

सीउंबरजंघाए बलिवद्दकरे घडे अ चम्मे य । चुल्लगकरे अ भणिए अट्ठारसमा करुप्पत्ती ॥१०८४॥

गोमहिषोष्ट्रपशूनां छगलीनामपि च करा ज्ञातव्याः, तत्र गोकरो गोयाचनं, यथा एतावतीषु विक्रीतास्वेका गौर्दातव्येति, यदिवा गोविक्रयस्य रूपकयाचनं गोकरः १ एवं महिषकर, २ उष्ट्रकरः ३ पशुकरः ४ छगली-उरभ्रा तत्करः छगलीकरः ५ ततस्तृणविषयः करः तृणकरः ६ पलालकरः ७ तथा बुसकरः ८ काष्ठकरः ९ अङ्गारकरः १० शीता-लाङ्गलपद्धतिस्तामाश्रित्य करो-भागो धान्ययाचनं शीताकरः ११ उम्बरो-देहली तद्विषयः करो रूपकयाचनं उम्बरकरः १२, एवं जङ्घाकरः १३ बलीवर्दकरः १४ घटकरः १५ चर्म्मकरः १६ चुल्लगो-भोजनं तदेव करः चुल्लगकरः, स चायं ग्रामेषु पञ्चकुलादीनधिकृत्य प्रसिद्ध एव १७ अष्टादशा करस्योत्पत्तिः स्वकल्पनाशिल्पिनिर्म्मिता, पूर्वोक्तसप्तदशकरव्यतिरिक्तः स्वेच्छया कल्पितोऽष्टादशः करः, स त्वौत्पत्तिक इति प्रसिद्धः ॥ उक्तो द्रव्यकरः, सम्प्रति क्षेत्रकरादीनभिधित्सुराह—

॥५९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

खित्तम्मि जंमि खित्ते काले जो जम्मि होइ कालम्मि। दुविहो उ होइ भावे अपसत्थो तह पसत्थो अ ॥१०८५॥

यो यस्मिन् क्षेत्रे शुल्कादिरूपो विचित्रः करः स क्षेत्रे–क्षेत्रविषयः करः, तथा यो यस्मिन् काले भवति कुटिकादानादिरूपः करः स काले कालकरः, द्विविधश्च भवति भावे भावकरः, द्वैविध्यमेव दर्शयति–प्रशस्तः तथा अप्रशस्तश्च, तत्राप्रशस्तपरित्यागात् (प्रशस्तो भद्रतीति) प्रशस्तमेवाभिधित्सुराह—

कलहकरो डमरकरो असमाहिकरो अनिव्वुइकरो अ। एसो अ अप्पसत्थो एवमाई मुणेअव्वो ॥ १०८६ ॥

आह–उक्तप्रयोजनसद्भावात् तदुद्देशेऽप्ययमेवादावप्रशस्तः कस्मान्नोपन्यस्तः ?, उच्यते, इह मुमुक्षुणा प्रशस्त एव भाव आसेवनीयो, नेतर इति ख्यापनार्थमादौ प्रशस्त उक्त इत्यदोषः, तत्र कलहो–वाचिकं भण्डनं तत्करणशीलोऽप्रशस्तक्रोधाद्यौदयिकभाववशतः कलहकरः, कायवाङ्मनोभिर्विचित्रं ताडनं डमरं तत्करणशीलो डमरकरः, तथा समाधानं समाधिः–स्वास्थ्यं न समाधिरसमाधिः–अस्वास्थ्यनिबन्धना सा सा कायादिचेष्टा तत्करणशीलोऽसमाधिकरः, निर्वृत्तिः–सुखं अनिर्वृत्तिः–पीडा तत्करणशीलोऽनिर्वृत्तिकरः, एष तुशब्दस्यावधारणार्थत्वादेष एव जात्यपेक्षया, न व्यक्त्यपेक्षया, एवमादिर्व्यक्त्यपेक्षया, अप्रशस्तो भावकरो ज्ञातव्यः ॥ सम्प्रति प्रशस्तं भावकरमभिधित्सुराह—

अत्थकरो हिअकरो कित्तिकरो गुणकरो जसकरो अ। अभयंकर निव्वुइकरो कुलगर तित्थंकरंतकरो ॥१०८७॥

इह अर्थो नाम विद्याऽपूर्वं धनार्जनं शुभमर्थ इति ततः प्रशस्तविचित्रकर्मक्षयोपशमादिभावतस्तत्करणशीलोऽर्थकरः, एवं हितादिष्वपि भावनीयं, नवरं हितं–परिणामपथ्यं यत्किञ्चित्कुशलानुबन्धि, कीर्त्तिः–दानपुण्यफला गुणा–ज्ञानादयः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥ ५९७ ॥

यशः–पराक्रमकृतं, पराक्रमसमुत्थः साधुवाद इति भावः, अभयादयः प्रकटार्थाः, नवरमन्तकर इत्यत्रान्तः कर्म्मणां तत्फलभूतस्य वा संसारस्य परिगृह्यते ॥ उक्तो भावकरः, अधुना जिनादिप्रतिपादनार्थमाह—

जिअकोह–माण–माया जिअलोभा तेण ते जिणा हुंति। अरिणो हन्ता रयं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥१०८८॥

जितक्रोधमानमाया जितलोभा येन कारणेन भगवन्तस्तेन कारणेन जिना भवन्ति, 'अरिणो हंता' इत्यादि गाथादलं यथा नमस्कारनिर्युक्तौ व्याख्यातं तथैव द्रष्टव्यं ॥ साम्प्रतं 'कीर्त्तयिष्यामि' इत्यादि व्याचिख्यासुरिदमाह—

कित्तेमि कित्तणिज्जे सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स। दंसणनाणचरित्ते तवविणयो दंसिओ जेहिं ॥ १०८९ ॥

'कित्तेमि'त्ति प्राकृतत्वात् कीर्त्तयिष्यामि, नामभिर्गुणैश्च, किंभूतान् ?–कीर्त्तनीयान्, स्तवार्हानित्यर्थः, कस्येत्यत्राह–'सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य त्रैलोक्यस्येति भावः, गुणानुपदर्शयति–दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षकारणानि, सूत्रे चैकवचनं समाहारत्वात्, तथा तपोविनयोऽत्र दर्शितः यैः, तत्र तप एव कर्म्मविनयात् तपोविनयः ॥

चउवीसंति अ संखा उसभाईआ उ भण्णमाणा उ। अविसद्दग्गहणा पुण एरवयमहाविदेहेसु ॥ १०९० ॥

चतुर्विंशतिरिति संख्या, ते तु ऋषभादिका भण्यमाना एव, तुशब्द एवकारार्थः, अपिशब्दग्रहणात् पुनः ऐरवतमहाविदेहेषु ये भगवन्तस्तद्ग्रहोऽपि वेदितव्यः, इह सूत्रे 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इति न्यायादैरावतमहाविदेहाश्चेत्युक्तम् ॥

कसिणं केवलकप्पं लोगं जाणंति तह य पासंति। केवलचरित्तनाणी तम्हा ते केवली हुंति ॥ १०९१ ॥

'कृत्स्नं' सम्पूर्णं 'केवलकल्पं' केवलोपमं, इह कल्पशब्द औपम्ये गृह्यते, उक्तं च–"सामर्थ्ये वर्णनायां च, छेदने

जिनादि-स्वरूपं

॥ ५९७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ 'जिन' एवं अरिहंत' शब्द व्याख्यायेते

करणे तथा । औपम्ये चाधिवासे च, कल्पशब्दं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥" लोकं पञ्चास्तिकायात्मकं जानन्ति विशेषरूपतया, तथैव सम्पूर्णमेव, चशब्दस्यावधारणार्थत्वात्, पश्यन्ति सामान्यरूपतया, इह ज्ञानदर्शनयोः सम्पूर्णलोकविषयत्वे बहु वक्तव्यं, तत्तु नोच्यते, ग्रन्थविस्तरभयात्, केवलं 'निर्विशेषं विशेषाणां, ग्रहो दर्शनमुच्यते । विशिष्टग्रहणं ज्ञानमेवं सर्वत्रगं द्वय ॥१॥'-मित्यनया दिशा स्वयमेवाभ्यूह्यं, धर्म्मसङ्ग्रहणीटीका च परिभावनीया, यतश्चैवं केवलचारित्रिणः केवलज्ञानिनश्च तस्मात्ते केवलिनो भवन्ति, केवलमेषां विद्यते इति केवलिनः इति व्युत्पत्तेः, अहोऽत्राकाण्ड एव केवलचारित्रिण इति किमर्थ-मुक्तं ?, उच्यते, केवलचारित्रप्राप्तिपूर्विका नियमतः केवलज्ञानावाप्तिरिति न्यायदर्शनार्थमित्यदोषः । तदेवं व्याख्यातो लोकस्येत्यादिरूपः सूत्रप्रथमश्लोकः ॥

साम्प्रतमत्रैव चालनाप्रत्यवस्थाने विशेषतो निदर्श्येते, तत्र लोकस्योद्योतकरानित्युक्तं, अत्राह—अशोभनमिदं यदुक्तं—लोकस्येति, लोको हि चतुर्दशरज्ज्वात्मकत्वेन परिमितः, केवलोद्योतश्चापरिमितो, लोकालोकव्यापकत्वात्, यद्वक्ष्यति—'केव-लियनाणलंभो लोगालोगं पगासेइ' ततः सामान्यतः उद्योतकरान् यदिवा लोकालोकयोरुद्योतकरानिति वाच्यं, नतु लोक-स्येति, तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह लोकशब्देन पञ्चास्तिकाया एव गृह्यन्ते, ततः आकाशास्तिकायभेद एव लोक इति न पृथगुक्तः, न चेतदनार्षं, यत उक्तम्—"पंचत्थिकायमइओ लोगो' इत्यादि । अपरस्त्वाह—लोकस्योद्योतकरानित्येतावदेव साधु, धर्म्मतीर्थकरानिति न वक्तव्यं, गतार्थत्वात्, तथाहि—ये लोकस्योद्योतकरास्ते धर्म्मतीर्थकरा एवेति, उच्यते, इह लोकै-कदेशे ग्रामैकदेशे ग्रामशब्दवत् लोकशब्दप्रवृत्तिदर्शनात् मा भूत्तदुद्योतकरेष्ववधिविभङ्गज्ञानिष्वर्कचन्द्रादिषु वा सम्प्रत्यय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥१॥

दीप अनुक्रम [३]

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका

॥ ५९८ ॥

इति तद्व्यवच्छेदार्थं धर्म्मतीर्थकरानित्युक्तं । आह–यद्येवं धर्म्मतीर्थकरानित्येतावदेवास्तु, लोकस्योद्योतकरानिति न वाच्यं, उच्यते, इह लोके येऽपि नद्यादिविषमस्थानेषु मुधिकया धर्म्मार्थमवतरणतीर्थकरणशीलास्तेऽपि धर्म्मतीर्थकरा भण्यन्ते, ततो मा भूदतिमुग्धबुद्धीनां तेषु सम्प्रत्यय इति तदपनोदाय लोकस्योद्योतकरानित्याह । अपरस्त्वाह–जिनानित्यतिरिच्यते, तथाहि–यथोक्तप्रकारा जिना एव भवन्तीति, उच्यते, इह केषांचिदिदं दर्शनं– "ज्ञानिनो धर्म्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् । गत्वाऽऽगच्छंति भूयोऽपि, भृशं (भवं) तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥" इत्यादि, ततस्तन्मतपरिकल्पितेषु यथोक्तप्रकारेषु मा भूत् सम्प्रत्यय इति तद्व्यवच्छेदार्थं जिनानित्याह, जिना नाम रागादिजेतारः, ते च कुनयपरिकल्पिता जिना न भवन्तीति, तीर्थनिकारतः पुनरिह भवाङ्कुरोत्पादनाद्, अन्यथा स न स्यात्, बीजाभावात्, तथा चोक्तमन्यैरपि–"अज्ञानपांशुपिहितं पुरातनं कर्म्मबीजमविनाशि । तृष्णाजलाभिषिक्तं मुञ्चति जन्माकुरं जन्तोः ॥ १ ॥ दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः । कर्म्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥ २ ॥" आह–यद्येवं जिनानित्येतावदेवास्तु, लोकस्योद्योतकरानित्याद्यतिरिच्यते, उच्यते, इह प्रवचने सामान्यतो विशिष्टश्रुतधरादयोऽपि जिना उच्यंते, तद्यथा–श्रुतजिना अवधिजिना मनःपर्यायज्ञानिजिनाश्छद्मस्थवीतरागाश्च, ततो मा भूत्तेषु सम्प्रत्यय इति तदपनोदाय लोकस्योद्योतकरानित्याद्यप्युदुष्टं । अपरस्त्वाह–अर्हत इति न वाच्यं, न खल्वनन्तरोदितस्वरूपा अर्हद्व्यतिरेकेणापरे सम्भवन्ति, उच्यते, अर्हतामेव विशेष्यत्वान्न दोषः, आह–यद्येवं तर्हि अर्हत इत्येतावदेवास्तु, लोकस्योद्योतकरानित्यादि पुनरपार्थकं, न, तस्य विशेषणत्वात्, विशेषणसाफल्यस्य च प्रतिपादितत्वादिति । अपरस्त्वाह–केवलिन इति न वाच्यं, यथोक्तस्वरूपाणामर्हतां केवलिस्वव्यभि-

जिनादि-स्वरूपं

॥ ५९८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥२-४॥

दीप अनुक्रम [४-६]

चाराभावात्, सति च व्यभिचारसम्भवे विशेषणोपादानं फलवत्, तथा चोक्तं–"सम्भवे व्यभिचारे च विशेषणमर्थवद् भवति', यथा नीलोत्पलमिति, व्यभिचाराभावे तु तदुपादीयमानमपि न कंचनार्थं पुष्णाति, यथा कृष्णो भ्रमरः शुक्ला बलाकेति, तस्मात् केवलिन इत्यतिरिच्यते, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा अर्हन्तो, नान्ये इति नियमार्थेन स्वरूपज्ञापनार्थमिदं विशेषणमित्यनवद्यं, न खल्वेकान्ततो व्यभिचारसम्भवे एव विशेषणोपादानं फलवत्, उभयपदव्यभिचारे एकपदव्यभिचारे स्वरूपपरिज्ञापने च शिष्टोक्तिषु तत्प्रयोगदर्शनात्, तत्र उभयपदव्यभिचारे यथा नीलोत्पलमिति, एकपदव्यभिचारे अब् द्रव्यं पृथिवी द्रव्यमिति, स्वरूपपरिज्ञापने यथा परमाणुरप्रदेश इत्यादि, तस्मात्केवलिन इत्यदुष्टं। आह–यद्येवं केवलिन इत्येव सुन्दरं, शेषं तु लोकस्योद्योतकरानित्यादि किमर्थमिति, उच्यते, इह श्रुतकेवलिप्रभृतयोऽपि केवलिनो विद्यन्ते, तन्मा भूत्तेषु सम्प्रत्यय इति तत्प्रतिक्षेपार्थं लोकस्योद्योतकरानित्याद्यप्युक्तं। एवं व्यादिसंयोगापेक्षया विचित्रनयमताभिज्ञेन स्वधिया विशेषणसाफल्यं वाच्यमिति कृतं प्रसङ्गेन, प्रयासस्य गमनिकामात्रफलत्वात्॥
सम्प्रति यदुक्तं 'कीर्त्तयिष्यामि' इति कीर्त्तनं कुर्वन्नाह सूत्रकृत्—

उसभमजिअं च वंदे संभवमभिनंदणं च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ २॥
सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च। वंदामि रिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४॥ (सूत्राणि)

एतासां तिसृणामपि सूत्रगाथानां व्याख्या–इह भगवतामर्हतां नामानि अन्वर्थमधिकृत्य सामान्यलक्षणतो विशेषल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** अथ तिर्थंकरस्य 'ऋषभ', अजित आदि नामानाम् व्याख्या: क्रियते

क्षणतश्च वाच्यानि, तत्र सामान्यलक्षणमिदम्–'वृष उद्वहने' एष आगमिको धातुः, समग्रसंयमभारोद्वहनात् वृषभः, सर्व एव भगवन्तो यथोक्तरूपा इति विशेषहेतुप्रतिपादनायाह—

ऊरूसु उसभलंछण उसभं सुमिणम्मि तेण उसभजिणो।

जेण भगवतो दोसुवि ऊरूसु उसभा उप्पराहुत्ता लंछणभूया, जेणं च मरुदेवाए भयवतीए चोद्दसण्हं महासुमिणाणं पढमं उसभो सुमिणे दिट्ठो तेण तस्स उसभत्ति नामं कयं, सेसतित्थयराणं मायरो पढमं गयं पासंति, तओ वसभो। अक्षरगमनिका त्वेवं–यतो भगवत ऊर्वोः वृषभावूर्ध्वमुखौ लाञ्छनं मरुदेवी च भगवती स्वप्ने प्रथमं ऋषभं दृष्टवती तेन भगवान् ऋषभजिनः। साम्प्रतमजितः, तस्य सामान्येनाभिधाननिबन्धनमिदं–परीषहोपसर्गादिभिर्न जितः अजितः, सर्व एव च भगवन्तो यथोक्तस्वरूपा इति विशेषनिबन्धनमभिधित्सुराह—

अक्खेसु जेण अजिआ जणणी अजितो जिणो तम्हा ॥ १०९२ ॥

अक्षेषु–अक्षविषयेषु येन कारणेन भगवतो जननी अजिता गर्भस्थे भगवत्यभूत् तस्मादजितो जिनः, अत्र वृद्धसम्प्रदायः-भयवतो अम्मापियरो जूयं रमंति, पढमं राया जिणियाइतो, जाहे भयवं आयातो ताहे देवी जिणाइ, नो राया, ततो अक्खेसु कुमारप्पभावा देवी अजियत्ति अजिओ नामं कयं ॥ तथा सम्भवन्ति–प्रकर्षेण भवंति चतुस्त्रिंशदतिशयगुणा यस्मिन् स सम्भवः, सर्व एव च भगवन्तो यथोक्तस्वरूपा इति विशेषनिबन्धनमभिधित्सुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिसंभूया सासत्ति संभवो तेण वुच्चई भयवं।

अभिसम्भूतानि–सम्यक् भवन्ति स्म सस्यानि तस्मिन् गर्भजाते तेन कारणेन भगवान् सम्भव इत्युच्यते, 'पुन्नाम्नी'त्यधिकरणे घप्रत्ययः, तथा च वृद्धसम्प्रदायः–गब्भगए जेण अहिगा सस्सनिप्फत्ती जाया तेण संभवो इति ॥ तथा अभिनन्द्यते देवेन्द्रादिभिरित्यभिनन्दनः, सर्व एव भगवन्तो यथोक्तस्वरूपा इत्यतो विशेषहेतुप्रतिपादनायाह—

अभिनंदेइ अभिक्खं सक्को अभिनंदणो तेण ॥ १०९३ ॥

शक्रो गर्भादारभ्याभिक्षणं–प्रतिक्षणं अभिनन्दितवानिति अभिनन्दनः, 'कृद्बहुल मिति वचनात् कर्म्मण्यनट्, तथा च वृद्धसम्प्रदायः–गब्भप्पभिई अभिक्खणं सक्केण अभिनंदियाइतो तेण से अभिणंदणोत्ति नामं कयं। इदानीं सुमतिः, तस्य सामान्याभिधाननिबन्धनमिदम्–शोभना मतिरस्येति सुमतिः, सर्व एव च भगवंतः सुमतय इति विशेषनिबन्धनप्रतिपादनार्थमाह—

जणणी सव्वत्थ विणिच्छएसु सुमइत्ति तेण सुमतिजिणो।

येन कारणेन गर्भगते भगवति सर्वेषु विनिश्चयेषु–कर्त्तव्येषु सुमतिः–अतीव मतिः सम्पन्ना जाता तेन कारणेन भगवान् सुमतिजिनः, जननीसुमतिहेतुत्वात् सुमतिरिति भावः, शोभना मतिरस्मादभूदिति व्युत्पत्तेः, तथा च वृद्धसम्प्रदायः–जणणी गब्भगए सव्वत्थ विणिच्छएसु अतीव मइसम्पन्ना जाया, दोण्हं सवत्तीणं मयपइयाणं ववहारो छिन्नो, जहा मम पुत्तो भविस्सइ, सो जोव्वणत्थो एयस्स असोगवरपायवस्स अहे ववहारं तुब्भं छिंदिहिति, ताव एगयाओ भवह, इयरी भणइ–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥२-४॥

दीप अनुक्रम [४-६]

एवं भवतु, पुत्तमाया नेच्छइ, भणइ–ववहारो छिज्जउ, ततो भावं नाऊण छिन्नो ववहारो, दिन्नो तीसे पुत्तो, एवमादी गब्भगुणेणं जणणीए सुमती जायत्ति सुमइनामं कयं । इदानीं पद्मप्रभः, तस्य सामान्यतोऽभिधानकारणमिदं–निष्पङ्कतया पद्मस्येव प्रभा यस्य स पद्मप्रभः, तत्र सर्व एव भगवन्तो यथोक्तस्वरूपाः ततो विशेषकारणमाह—

पउमसयणम्मि जणणीएँ डोहलो तेण पउमाभो ॥ १०९४ ॥

येन कारणेन तस्मिन् भगवति गर्भगते जनन्या देव्या पद्मशयनीये दौर्हृदमभूत्, तच्च देवतया सम्पादितं, भगवांश्च स्वरूपतः पद्मवर्णस्तेन कारणेन पद्मप्रभ इतिनामविषयीकृतः । सम्प्रति सुपार्श्वः, तस्यायमोघतो नामान्वर्थः, शोभनानि पार्श्वाणि यस्यासौ सुपार्श्वः, तत्र सर्व एव भगवन्त एवंभूतास्ततो विशिष्टं नामान्वर्थमभिधित्सुराह—

गब्भगए जं जणणी जाय सुपासा तओ सुपासजिणो ।

यतो गर्भगते भगवति तत्प्रभावतो जननी जाता सुपार्श्वा ततो जिनः सुपार्श्व इतिनामविषयीकृतः, एवं सामान्याभिधानं विशेषाभिधानं चाधिकृत्यान्वर्थाभिधानविस्तरो भावनीयः, इह पुनः सुज्ञानत्वात् ग्रन्थविस्तरभयाच्च नाभिधीयते । सम्प्रति चन्द्रप्रभः–चन्द्रस्येव प्रभा–ज्योत्स्ना सौम्यमस्येति चन्द्रप्रभः, तत्र सर्वेऽपि तीर्थकृतश्चन्द्रवत् सोमलेश्याकास्ततो विशेषमाह—

जणणीइ चंदपिअणम्मि डोहलो तेण चंदाभो ॥ १०९५ ॥

येन कारणेन भगवति गर्भगते जनन्याः चन्द्रपाने दौर्हृदमजायत चन्द्रसदृशवर्णश्च भगवान् तेन चन्द्राभः–चन्द्रप्रभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥२-४॥

दीप अनुक्रम [४-६]

इति विश्रुतः । सम्प्रति सुविधिः, शोभनो विधिरस्येति सुविधिः, विधिर्नाम सर्वत्र कौशलं, तत्र सर्व एव भगवन्त इदृशा इति विशेषकारणमाह—

सव्वविहीसु अ कुसला गब्भगए तेण होइ सुविहिजिणो ।

भगवति गर्भगते जननी सर्वविधिषु कुशलाऽभवत् तेन सुविधिजिन इति नाम कृतं ॥ सम्प्रति शीतलः, सकलसत्त्वसन्तापकरणविरहादाल्हादजननाच्च शीतलः, तत्र सर्वेऽपि भगवन्तः शत्रूणां मित्राणां चोपरि शीतगृहसमानास्ततो विशेषमाह—

पिउणो दाहोवसमो गब्भगए सीअलो तेण ॥ १०९६ ॥

भगवतः पितुः पूर्वोत्पन्नोऽसदृशः पित्तदाहोऽभवत्, स चौषधैर्नानाप्रकारैर्नोपशाम्यति, भगवति तु गर्भगते देव्या परामर्शे स दाह उपशान्तः, तेन शीतल इति नाम । इदानीं श्रेयान्, समस्तभुवनस्य हितकारित्वात् प्रशस्यतरः श्रेयान्, प्राकृतशैल्या छान्दसत्वात् सेयंस इत्युच्यते, तत्र सर्वेऽपि भगवन्तस्त्रैलोक्यस्यापि श्रेयांस इति विशेषमाह—

महरिहसिज्जारुहणम्मि डोहलो तेण होइ सिज्जंसो ।

तस्य राज्ञः पितृपरम्परागता देवतापरिगृहीता शय्या अर्च्यते, यस्तामाश्रयति तस्योपसर्गं देवता करोति, गर्भगते च भगवति देव्या दौर्हृदमजायत–शय्यामारोहामि, तत्रोपविष्टा, देवता समारसितुमपक्रान्ता, सा हि तीर्थकरनिमित्तं देवतया रक्षिता, एवं गर्भप्रभावतो देव्याः श्रेयो जातमिति श्रेयांस इति नाम कृतम् । साम्प्रतं वासुपूज्यः–वासवो–देवाः तेषां पूज्यः वासुपूज्यः, सर्व एव भगवन्त इदृशा इति विशेषमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीआव० मलयगि० वृत्तौ सूत्र-स्पर्शिका ॥ ६०१ ॥

गब्भगते तं वसूहिं पूएई तेण वसुपुज्जो ॥ १०९७ ॥

तस्मिन् भगवति गर्भगते वासवो–देवराजः अभीक्ष्णं जननीं पूजयति, तेन वासुपूज्य इति नाम, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः, अथवा वासवो नाम वैश्रमणः, स गर्भगते भगवति तत् राजकुलमभीक्ष्णं वसुभी–रत्नैः पूजयति पूरयति तेन कारणेन वासुपूज्यः । सम्प्रति विमलः, विगतो (मलो) विगतमलो विमलः, ज्ञानादियोगाद्वा मलः, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त एवंभूता अतो विशेषमाह—

विमलतणु–बुद्धि जणणी गब्भगए तेण होइ विमलजिणो ॥

गर्भगते भगवति जनन्यास्तनुः–शरीरं बुद्धिश्च विमला, तद्दौर्हृदं चेत्थमजायत, यथाऽहं विमला भवामि, तेन कारणेन नामतो भवति विमलजिनः । साम्प्रतमनन्तः, अनन्तकर्मांशजयाद् अनन्तानि वा ज्ञानादीन्यस्येत्यनन्तः, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त इदृशा अतो विशेषमाह—

रयणविचित्तमणंतं दामं सुमिणे तओऽणंतो ॥ १०९८ ॥

रत्नविचित्रं–रत्नखचितं अनन्तं–अतिमहाप्रमाणं दाम स्वप्ने जनन्या दृष्टं अतोऽनन्त इति । सम्प्रति धर्म्मः, दुर्गतौ प्रपतन्तं सत्त्वसङ्घातं धारयतीति धर्म्मः, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त इदृशाः ततो विशेषमाह—

गब्भगए जं जणणी जाय सुधम्मत्ति तेण धम्मजिणो ।

भगवति गर्भगते येन कारणेन विशेषतो जननी जाता सुधर्मा–दानदयादिरूपशोभनधर्म्मपरायणा तेन नामतो

ऋषभदीनां सामान्यविशेषार्थः ॥ ६०१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४०] मूलसूत्र [१] आवश्यकनिर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१..] गाथा ॥२-४॥

दीप अनुक्रम [४-६]

धर्म्मजिनः । इदानीं शान्तिः, शान्त्यात्मकत्वात् शान्तिः, तत्र सर्व एव तीर्थकृत एवंरूपा अतो विशेषमाह—

जाओ असिवोवसमो गब्भगए तेण संतिजिणो ॥ १०९९ ॥

पूर्वं महदशिवमासीत्, भगवति तु गर्भगते जातः अशिवोपशमः तेन कारणेन शान्तिजिनः। सम्प्रति कुन्थुः, कुः—पृथिवी तस्यां स्थितवान् कुन्थुः, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः, तत्र सर्वेऽपि भगवन्त एवंविधाः, ततो विशेषमाह—

थूभं रयणविचित्तं कुंथुं सुमिणम्मि तेण कुंथुजिणो ।

जननी स्वप्ने कुस्थं—मनोहरेऽभ्युन्नते महीप्रदेशे (स्थितं) स्तूपं रत्नविचित्रं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धवती तेन कारणेन भगवान् नामतः कुन्थुजिनः ॥ साम्प्रतमरः ॥

इति श्रीमन्मलयगिर्याचार्यविहिताया आवश्यकवृत्तेः भाग-४ समाप्तः ॥

इति श्रीमन्मलयगिर्याचार्यविरचिता आवश्यकवृत्तिः समाप्ता ॥

इति श्रेष्ठी-देवचन्द्र लालभ्रातृ-जैनपुस्तकोद्धारे ग्रथाङ्कः ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- मूलसूत्र- [४०/४] निर्युक्ति एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:

मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुनः संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com.,M.Ed.,Ph.D.,श्रुतमहर्षि]

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

भाग-6

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"आवश्यक-मूलसूत्र" [निर्युक्ति: एवं मलयगिरिसूरिजी-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"आवश्यक" निर्युक्ति: एवं वृत्ति:" नामेण परिसमाप्त:

'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2' श्रेणि, भाग-6

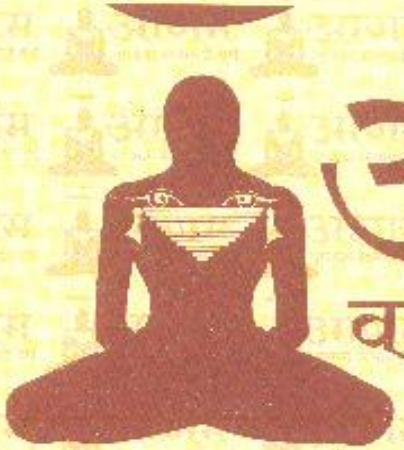

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक

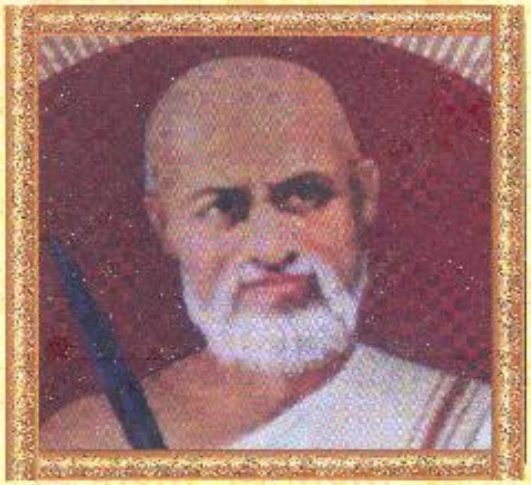

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

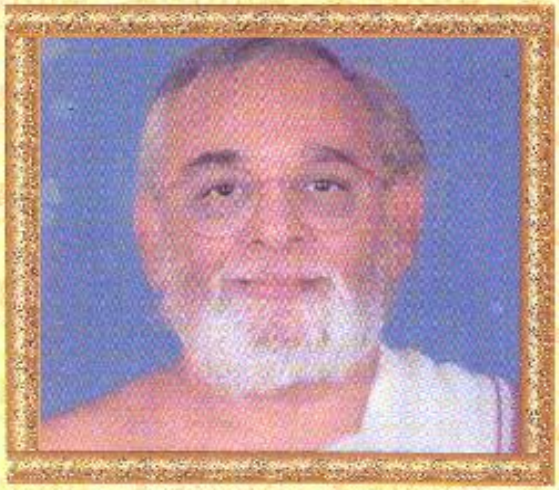

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्व र्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू -भगवंत एवं साध्वी -महाराज के लिए उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

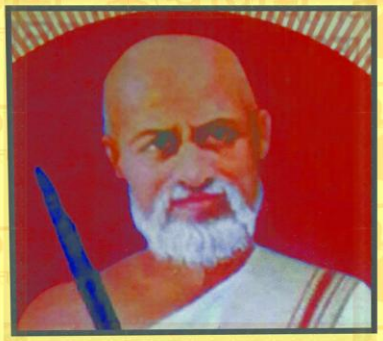

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम - ४०

"आवश्यक" निर्युक्तिः एवं वृत्तिः [४]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]